छत्तीसगढ़ का गौरवशाली इतिहास

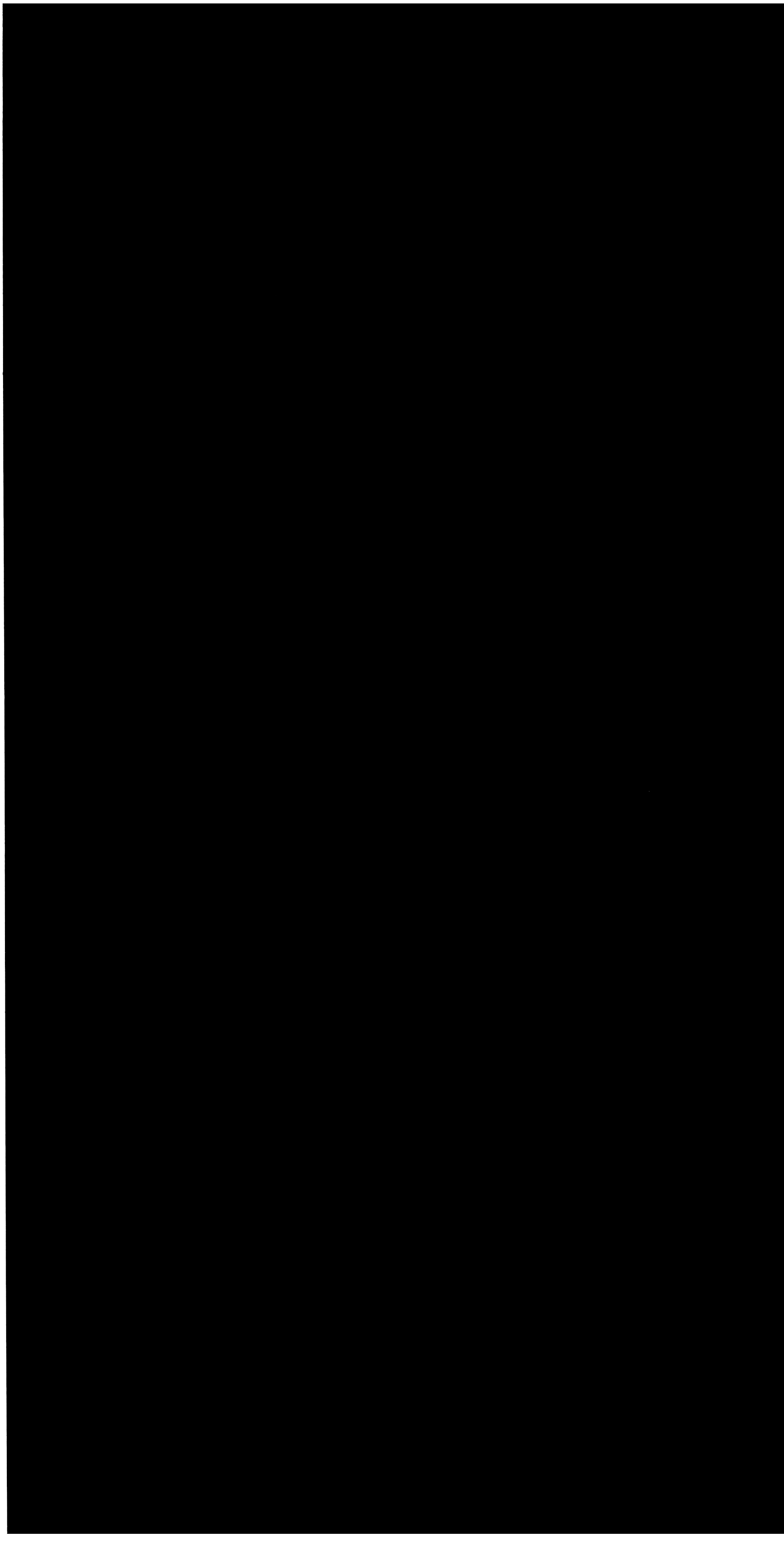
(प्रारंभिक काल से ब्रिटिश काल तक)

हेमू यदु

JBR Publication

डॉ० हेमू यदु छत्तीसगढ़ के जाने-माने पुरातत्वविद एवं इतिहासवेत्ता है। 8 अक्टूबर 1953 को रायपुर में इनका जन्म हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा रायपुर में हुई। इन्होंने पं० रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर से पुरातत्व विषय में एम०ए० एवं पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। पुरातत्व विशेषज्ञ के रूप में अपनी पहचान बना चुके डॉ० यदु अपनी विव्दवता तथा ज्ञान-रश्मियों से समाज तथा राष्ट्र को आलोकिक कर दिया है। डा० हेमू यदु अनेक पुरस्कारों-अलंकरणों से विभूषित किये जा चुके हैं। जिनमें छत्तीसगढ़ अस्मिता पुरस्कार भोपाल :1966: , शताब्दी रत्न सम्मान, जैमिनी अकादमी पानीपत : हरियाणा :2000, कलाश्री सम्मान अखिल भारतीय जैन समाज, दुर्ग :2001: नवरत्न सम्मान छत्तीसगढ़ :2002: राष्ट्रभाषा सम्मान पानीपत: 2003: उल्लेखनीय है।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं - दक्षिण कोसल की कला, नई दिल्ली 1990 : छत्तीसगढ़ का पुरातात्विक वैभव, नई दिल्ली : 2000 : इन्होंने ''ओम नमः शिवाय'' की सांकेतिक लिपि पर एकादश अक्षरों की नवीनतम आकृति की अन्तर्राष्ट्रीय खोज की है।



छत्तीसगढ़ का गौरवशाली

इतिहास

(प्रारंभिक काल से ब्रिटिश काल तक)

छत्तीसगढ़ का गौरवशाली
इतिहास

(प्रारंभिक काल से ब्रिटिश काल तक)

हेमू यदु

B. R. Publishing Corporation
[A Division of B.R.P.C. (India) Ltd.]
Delhi-110052

छत्तीसगढ़ का गौरवशाली इतिहास

(प्रारंभिक काल से ब्रिटिश काल तक)

हेमू यदु

First Published: 2006

ISBN 81-7646-467-8

Rs. 500.00

Printed & Published by :
B. R. Publishing Corporation
[A Division of BRPC (India) Ltd.]
425, Nimri Colony, Ashok Vihar, Phase-IV,
Delhi-110052
E-Mail : *brpcltd@del2.vsnl.net.in*

Printed In India

विषयानुक्रमणिका

खण्ड–4 आधुनिक इतिहास

भूमिका

छत्तीसगढ़ का इतिहास जितना प्राचीन है, उतना ही प्रशस्त है। छत्तीसगढ़ के ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर अब तक अलग—अलग काल खण्डों पर इतिहास लिखा गया है। छत्तीसगढ़ के समग्र इतिहास पर पुस्तकों का अभाव काफी समय से महसूस किया जा रहा था। इस कमी को ध्यान नें रखकर छत्तीसगढ़ का इतिहास, प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल ब्रिटिश काल तक, लिखने का सौभाग्य मुझे मिला। छत्तीसगढ़ के इतिहास को विभिन्न खण्डों में विभक्त कर उसे सरल, रोचक, एवं सुपाठ्य बनाने का मेरा विनम्र प्रयास है।

छत्तीसगढ़ का प्राचीन नाम दक्षिण कोसल है। यहाँ की शस्य—श्यामला पावन भूमि में अनेक राजवंशों एवं संस्कृतियों का प्रादुर्भाव हुआ। उनके उत्कर्ष, विकास, संघर्ष एवं पराभव का ऐतिहासिक दस्तावेज ही छत्तीसगढ़ का गौरवशाली इतिहास है। भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण छत्तीसगढ़ क्षेत्र, मेखला, सिहावा, रामगिरी एवं अमरकंटक जैसी विशाल पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ सुरम्य सघन वनों से आच्छादित प्रदेश है, जिसकी हृदय स्थली में महानदी, शिवनाथ, इन्द्रावती, हसदों, पैरी, खारून, अरपा, सोण्डुर, जैसी अनेक नदियाँ कलकल—कलरव कर पौराणिक ऋचाओं के गुँजायमान करती हुई प्रवाहित होती हैं। छत्तीसगढ़ की पावन भूमि में आर्य—अनार्य संघर्ष से लेकर रामायण काल से महाभारत काल तक की घटनाओं के ऐतिहासिक साक्ष्य, लोक साहित्य, लोक गीतों एवं जनश्रुतियों के माध्यम से प्राप्त हुये हैं। दण्डकारण्य जैसा विशाल वन्य क्षेत्र जो कभी गंगा से गोदावरी तक का बेल्ट हुआ करता था, इस अंचल का अभिन्न अंग है। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी की माता कौशल्या के इसी कोसल क्षेत्र से संबंधित होने के अकाट्य प्रमाण प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होते हैं। कुश से कोसल, कोसल से कौशल्या, होने की पुष्टि जनश्रुति से होती है। छत्तीसगढ़ में विभिन्न राजवंशों का गौरवशाली इतिहास मिलता है। छत्तीसगढ़ प्राचीन काल में सांस्कृतिक केन्द्र बिन्दु के साथ—साथ व्यापारिक केन्द्र के रूप में स्थापित था। यहाँ का रोम से व्यापारिक संबंध था इसकी पुष्टि प्राचीन नदी बंदरगाह के अवशेष पैरी नदी में मिलने से होती है। छत्तीसगढ़ धर्मक्षेत्र, पुण्यक्षेत्र, धन—धान्य, शान्तक्षेत्र एवं धर्म सहिष्णु क्षेत्र के रूप में विख्यात है। यहाँ शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन एवं बौद्ध धर्म की देव प्रतिमायें, उपासना गृह एवं प्राचीन कलाकृतियों की उपादेयता इस अंचल की सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

छत्तीसगढ़ में विभिन्न राजवंशों के कलावशेष, अभिलेख, सिक्के तथा धार्मिक केन्द्र, मंदिर, मठ एवं बौद्ध बिहार आदि की उपादेयता इस क्षेत्र की राजवंशों का गौरवशाली इतिहास होने का प्रमाण देती है। इस पुस्तक में प्रागैतिहासिक काल, वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल, मौर्यकाल, सातवाहन काल, गुप्त वंश, राजर्षि तुल्य वंश, नलवंश, शरभपुरीय, पाण्डुवंशीय, सोमवंशी, नागवंशी, माण्डलिक, एवं कलचुरि वंश, रतनपुर के कलचुरि एवं हैहयवंशी कलचुरि तथा मराठाकालीन भोंसले वंश, राजवंश से लेकर ब्रिटिशकाल तक का क्रमबद्ध इतिहास लिखाने का सतत् प्रयास है। इस पुस्तक में ब्रिटिशकाल को स्वतंत्रता के पूर्व तक रेखांकित किया गया है। अंतिम अध्याय के पश्चात् कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का संकलन प्रतियोगी परीक्षाओं को दृष्टिगत रखकर किया गया है। इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रेरणास्रोत श्री प्रवीण मित्तल,

बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली, एवं श्री बी. राजन, श्री शरद मोहता तथा सृष्टि एवं प्रकृति मेरे परिवार का अभूतपूर्व सहयोग रहा जिसके लिये मैं इन्हें धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। इस पुस्तक में प्राचीन काल. से लेकर आधुनिक काल तक का क्रमबद्ध छत्तीसगढ़ का गौरवशाली इतिहास लिखने का उद्देश्य विद्वान, जन सामान्य के साथ–साथ प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले छात्र–छात्राओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगा। ऐसी मेरी कामना है।

डॉ. हेमू यदु

अध्याय 1

छत्तीसगढ़ की भौगोलिक पृष्ठभूमि

किसी भी क्षेत्र के इतिहास, संस्कृति के अभिज्ञान के लिये उसकी भौगोलिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक है। भौगोलिक अर्थात् प्राकृतिक परिवेश ही मानवी प्रकृति (स्वभाव) बनाती है। मानव की भौगोलिक संरचना के अनुसार जीवन पद्धति ढ़लती है। मानव, इतिहास का सबसे बड़ा स्रोत है। मानव से इतिहास बनता है, अतएव छत्तीसगढ़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी के लिये क्षेत्र की भौगोलिक संरचना एवं उसके संसाधनों का अध्ययन आवश्यक है।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र एक आदर्श भौगोलिक प्रदेश है, प्राकृतिक एवं खनिज संपदा की दृष्टि से यह देश का सबसे समृद्ध भू.भाग है। मध्यप्रदेश के दक्षिण पूर्वी भू.भाग को छत्तीसगढ़ कहा जाता है। धान की विपुल पैदावार का क्षेत्र, विश्व में 12,500 धान की प्रजातियों में से 10,000 प्रजाति छत्तीसगढ़ में होने के कारण इसे 'धान का कटोरा' कहा जाता है। 1,35,194 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत यह क्षेत्र 18 अंश उत्तरी अक्षांश से 24 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 80 अंश पूर्वी देशांश से 84 अंश पूर्वी देशांश के मध्य स्थित हैं। सम-शीतोष्ण जलवायु वाला यह प्रदेश समुद्र तट से दूर होने के कारण समकारी प्रभाव से दूर है। कर्क रेखा पर स्थित होने के कारण गर्म प्रदेश है। यहाँ 1200 मिलीमीटर औसतन वार्षिक वर्षा होती है।

एक नवम्बर 2000 को नव-गठित इस राज्य की वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार 2,07,95,956 करोड़ जनसंख्या है। यह 16 जिलो में विभक्त है। आबाद गावों की संख्या 19,720 है। जिसमें 98 तहसील एवं 146 विकास खण्ड हैं। 9,129 ग्राम पंचायत, 20 नगर पालिका एवं 6 नगर निगम, 90 विधान सभा, 11 लोकसभा तथा 5 राज्य सभा के सदस्य हैं।

छत्तीसगढ़ को प्रकृति की देन कहा जाता है। वन संपदा से परिपूर्ण, देश के सम्पूर्ण वनों में से 12 प्रतिशत वन छत्तीसगढ़ में है। वनों का कुल क्षेत्रफल 69,772 वर्ग किलोमीटर कुल क्षेत्रफल में से 44 प्रतिशत क्षेत्र में वन है। यहाँ तीन राष्ट्रीय उद्यान एवं 11 अभ्यारण हैं। कुल वन क्षेत्र 6,97,772 वर्ग किलोमीटर में 36 प्रतिशत हिस्से में साल वृक्ष, दूसरे स्थान पर सागौन, इसके अतिरिक्त साजा, सरई, बीजा, हल्दु एवं बाँस के वनों की बहुतायत है। यहाँ का राजकीय वृक्ष साल है। देश के कुल तेन्दुपत्ता उत्पादन का 17 प्रतिशत छत्तीसगढ़ में होता है। लघु वनोपज लाख, महुआ, गोन्द, चिरोंजी, ईमली इत्यादि हैं। औषधियों की प्रचुरता के कारण नये राज्य को वनौषधि राज्य घोषित किया गया है। खनिज संसाधनों की दृष्टि से छत्तीसगढ़ देश का सबसे समृद्धशाली राज्य के रूप में गौरवान्वित है। यहाँ हीरा, सोना सहित 28 बहुमूल्य खनिजों का खजाना है। विश्व का सर्वश्रेष्ठ लौह-अयस्क भण्डार होने के कारण एशिया का सबसे बड़ा इस्पात का कारखाना भिलाई छत्तीसगढ़ राज्य में है। इसके अलावा देश का सम्पूर्ण टीन भण्डार, गारनेट, पन्ना, क्रिस्टल, बाक्साईड, डोलोमाईट, चूना पत्थर, कोयला, कोरण्डम, यूरेनियम, किम्बरलाईट आदि बहुमूल्य खनिजों का विपुल भण्डार है।

इस प्रदेश में कड़प्पा और शैल समूह मिलते हैं, जिनमें प्रमुख चट्टानें चूने का पत्थर, बालू का पत्थर है। सीमाओं की औसत ऊँचाई 300-400 किलोमीटर तक है। मध्य भाग में विस्तृत मैदान तीन सौ किलोमीटर के लगभग मिलते

है। यह तश्तरी के आकार का बेसिन है। जिसके पूर्व की ओर सकरा निकास है। छत्तीसगढ़ के मैदान की सीमायें सुस्पष्ट हैं। उत्तर में खण्ड के छोटे-छोटे पठारी समूह, पश्चिम में मैकल श्रेणी, दक्षिण में दण्डकारण्य का पठार तथा दक्षिण पूर्व के रायपुर की उच्चभूमि है। प्रकृति ने छत्तीसगढ़ को भरपूर देन दी है। मैकल पर्वत श्रेणियाँ इस क्षेत्र के पश्चिम और पूर्व में फैली हुई अर्थात् पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत हैं। महानदी इस क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी है, जिसका प्राचीन नाम चित्रोत्पला है। सोन नदी इसकी उत्तरी सीमा से प्रवाहित होती है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में शिवनाथ, पैरी, जोंक, हसदो, कुमारी, लीलागर, इन्द्रावती, गनियारी, रेण, खारुन, तेल नदी आदि नदियाँ इस पावन भूमि को सिंचित कर प्रवाहित होती हैं। इन नदियों के बाद भी इस क्षेत्र में जल समस्या रहती है इसलिये तालाब, कुएँ आदि की उचित व्यवस्था जल प्रबंध के लिये आवश्यक रही है। जल समस्या की ओर मध्ययुगीन राजवंशों ने जिन्होंने इस भू-भाग पर शासन किया उन्होंने विशेष ध्यान दिया तथा तालाब और कुएँ खुदवाये। इस क्षेत्र के सोमवंशी एवं कलचुरियों द्वारा जल आपूर्ति के लिये तालाब आदि का विशेष रूप से निर्माण करने के अभिलेखीय प्रमाण मिलते हैं। कुछ तालाब तो इतने बड़े थे, कि उनकी उपमा महासागर (महासमुन्द्र) से की गयी है। जैसे वल्लभसागर, महासमुन्द्र, बालसमुन्द्र इत्यादि का पृथ्वीदेव द्वितीय के रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत शिलालेख में वर्णन है।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियाँ निम्नानुसार हैं :- पुराणों में सोन, महानदी, नर्मदा तथा अन्य नदियों का उद्गम शृक्ष पर्वत को बताया जाता है। शृक्ष पर्वत विन्ध्य शैल शृंखला का भाग है जो नर्मदा के उत्तर में मालवा क्षेत्र से लेकर नर्मदा, सोन, महानदी के उत्तर तक विस्तृत है। पुराणों में इसे महानदी तथा चित्रोत्पला नाम से संबोधित किया जाता है इसका संगम राजिम में पैरी नदी एवं सोढुर नदी से होता है। महानदी के तट पर दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नगर स्थित हैं। जिनमें राजिम, आरंग, सिरपुर, शिवरीनारायण आदि हैं। ये नगर उन दिनों छत्तीसगढ़ के कला केन्द्र के रूप में विख्यात थे।

प्राचीन भारतीय प्रमुख व्यापारिक पथ जो उत्तर भारत को दक्षिण-पूर्वी समुद्र तट से जोड़ते थे, ये कौशाम्बी, भरहुत, शहडोल, बिलासपुर होते हुये उड़ीसा को जोड़ते थे। इस प्रकार छत्तीसगढ़ (दक्षिण-कोसल) का उड़ीसा कलिंग क्षेत्र से निकट का संबंध प्रारंभिक काल में था। इसमें महानदी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। जिसने नदी मार्ग से व्यापारिक संबंध स्थापित किया। हाल ही में महानदी की सहायक पैरी नदी गरियाबंद के पास सिरकट्टी नामक स्थान के समीप नदी बंदरगाह के अवशेष प्रकाश में आये हैं। समीप ही मालगाँव है, जो उन दिनों इस बंदरगाह से व्यापार होने की पुष्टि करते हैं। पाँचवीं शती ईस्वी के बाद छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल), उड़ीसा (कलिंग) क्षेत्र, समुद्री क्षेत्र से जुड़ा और दोनों राज्यों के सांस्कृतिक, राजनैतिक संबंध प्रगाढ़ हुये। छत्तीसगढ़ का आन्ध्र प्रदेश से भी गहरा संबंध था। सातवाहन इक्ष्वाकु शासनकाल में बौद्ध भिक्षुओं ने दक्षिण कोसल के सिरपुर नगर से लेकर सातवाहनों की राजधानी धान्य कटक (अमरावती) तक लम्बी यात्रायें की थीं। 6 ठीं शती ईस्वी में चीनी यात्री ह्वेनसांग बौद्धों की केन्द्र स्थली सिरपुर आये थे, जिसका विवरण 'यात्रा वृत्तान्त ह्वेनसांग, में मिलता है। इस प्रकार छत्तीसगढ़ क्षेत्र प्राचीन काल से उड़ीसा और आन्ध्रप्रदेश से जुड़ा था तथा उत्तर और दक्षिण को जोड़ने में छत्तीसगढ़ का यह भू-भाग महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करता है। छत्तीसगढ़ के उपरोक्त पर्वतों और नदियों के उल्लेख हमें प्राचीन साहित्य में विशेषकर पौराणिक विवरणों में प्राप्त होते हैं। इसके आधार पर छत्तीसगढ़ की भौगोलिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया जा सकता है एवं भौगोलिक परिवेश यहाँ की कला-संस्कृति एवं इतिहास को प्रभावित करता है।

भौगोलिक पृष्ठभूमि छत्तीसगढ़ के निवासियों की प्रकृति (स्वभाव) को प्रभावित करती है। यह क्षेत्र खुला और मैदानी भू-भाग होने के कारण यहाँ के निवासियों की खुली मानसिकता अथवा स्वतंत्र विचार एवं सरल प्रकृति को जन्म देती है। अपनी सहजता एवं सरलता के कारण छत्तीसगढ़ के निवासियों को भोला-भाला छत्तीसगढ़िया कहा जाता है।

अध्याय 2

छत्तीसगढ़ : नामकरण

छत्तीसगढ़ के नामकरण का इतिहास जितना प्राचीन है, उतना ही प्रशस्त है। छत्तीसगढ़ अर्थात् 36 गढ़ों (किलों) से इस क्षेत्र का नामकरण होने की सर्वमान्यता है। किन्तु छत्तीसगढ़ का नाम कब और कैसे पड़ा ? इसके लिये इस भू-भाग की प्राचीनता का अध्ययन अति आवश्यक है। इस क्षेत्र के प्रागैतिहासिक काल के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आदि मानव की विकास यात्रा इस क्षेत्र से प्रारंभ हुई थी इसका प्रमाण प्रागैतिहासिक काल के शैल चित्र जो आदि मानव द्वारा उकेरे गये हैं, उनमें रायगढ़ की कबरा-पहाड़, सिंधनपुर, ओंगना, बोतलटा, करमागढ तथा रामगढ़ एवं चितवाडोंगरी आदि प्रमुख हैं। जो आदिम मानव की विकास यात्रा के प्रतीक हैं। छत्तीसगढ़ शब्द का उल्लेख प्राचीन साहित्यों में, पुराणों में, रामायण में, महाभारत में कहीं नहीं मिलता है।

यदि इनमें छत्तीसगढ़ शब्द नहीं मिलता तो छत्तीसगढ़ का नाम क्या था? छत्तीसगढ़ के प्राचीन नामकरण पर प्रकाश डालना अति आवश्यक है। इस भू-भाग प्राचीन नामकरण का विवरण इस प्रकार है :-

छत्तीसगढ़ का रामायणकालीन नाम : कोसल (दक्षिण कोसल)

छत्तीसगढ़ को प्राचीन काल में कोसल अर्थात् दक्षिण कोसल कहा जाता था। कोसल का उल्लेख महाकाव्य रामायण में बार-बार आता है। कोसल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द कुशल से हुई है। जिसका अर्थ है, 'मुदित' अर्थात् प्रसन्नता से। यद्यपि इतिहासकार 'कोसल' शब्द की व्याख्या अयोध्यापति श्री राम की माता कौशल्या से 'कोसल' होने की पुष्टि करते हैं। दूसरे शब्दो में प्रभु राम जी की जननी माता कौशल्या का संबंध पुण्यभूमि कोसल से है। तो निश्चित ही प्रसन्नता की बात होगी अर्थात् कोसल नाम संस्कृत शब्द कुशल अर्थात् प्रसन्नता का पर्याय है। वाल्मीकि रामायण में उल्लेख आता है कि कोसल नरेश को अयोध्या में युवराज दशरथ के राज्याभिषेक के अवसर पर आमंत्रित किया गया था।

ततो कोसल राजा भानुन्तम समुद्रधृतम। (वाल्मीकि रामायण)

राजा भानुन्तम अर्थात् (भानुमंत) जो कोसल प्रदेश में अयोध्या नरेश दशरथ के समकालीन राजा थे। राजा भानुमंत की एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम भानुमति था। राजकुमारी भानुमति अपने पिता के साथ राज्याभिषेक के अवसर पर अयोध्या गई थी। जहाँ उन्हें देखकर युवराज दशरथ ने उनकी सुन्दरता से मोहित होकर उनसे विवाह करना निश्चित किंया था। राजा भानुमन्त ने राजा दशरथ को विवाह के समय 'कोसल' राज्य का कुल भाग दहेज के रूप में दिया था संभवत आगे चलकर यह भू-भाग उत्तर कोसल कहलाया। अवध का उत्तर कोसल नामकरण इसी से उद्धृत हुआ है। पत्नी को उनके मायके के नाम से पुकारने की प्रथा उन दिनों रही होगी। इसी प्रकार राजा दशरथ ने अपनी पत्नी भानुमति को कोसल प्रदेश की होने के कारण उसका नाम 'कौशल्या' रखा। जैसा कि रानी कैकेयी, कैकेय प्रदेश से होने के कारण कैकयी कहलायी एवं रानी सुमित्रा का संबंध सुमात्रा से होने अर्थात् विवाह के पश्चात् स्त्री का नाम परिवर्तन होने की परम्परा तत्कालीन युग में होने की जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार माता कौशल्या का संबंध 'कोसल' से होने की पुष्टि होती है।

दक्षिण कोसल की प्राचीन राजधानी : आरंग

रामायणकाल में कोसल दो भागों में विभक्त था। एक उत्तर कोसल एवं दूसरा दक्षिण कोसल। उत्तर कोसल अवध (अयोध्या) को कहा जाता था एवं छत्तीसगढ़ क्षेत्र का प्राचीन नाम दक्षिण कोसल है। उत्तर कोसल के राजा दशरथ थे एवं दक्षिण कोसल के राजा उसके समकालीन भानुमन्त थे। कोसल की राजकुमारी भानुमति से दशरथ का विवाह हुआ था जो बाद में कोसल की होने के कारण कौशल्या कहलायी। कोसल के नामकरण के संबंध में शोध से नये तथ्य आये हैं कि दक्षिण कोसल का अधिकांश भाग दण्डकारण्य क्षेत्र के अंतर्गत था जहाँ सघन वनों की प्रचुरता से इसे महाकान्तार क्षेत्र भी कहा जाता था। इस दण्डकारण्य में कुछ भाग भौगोलिकता के अनुरूप, महानदी के कछार का क्षेत्र मैदानी भू-भाग था जहाँ प्राचीन सांस्कृतिक नगर स्थापित थे उनमें राजिम, आरंग, सिरपुर, शिवरीनारायण, मल्हार आदि उल्लेखनीय हैं जो महानदी के पार्श्व में सांस्कृतिक नगरी के रूप में स्थापित हैं। इन नगरों में द्वापर युग में आरंग का नाम सर्वोपरि है। आरंग राजा मोरध्वज की नगरी होने के कारण एवं कृष्ण-अर्जुन द्वारा राजा की दान की परीक्षा की घटना से ज्यादा चर्चित थी। किन्तु इस नगर की त्रेतायुग में क्या भूमिका रही इस संबंध में इतिहास मौन है। इस संबंध में शोध करने पर ज्ञात हुआ कि महानदी के पार्श्व एवं कछार में विशेष प्रकार की डूब जिसे 'कुश' कहा जाता है जो पूजा अनुष्ठान के काम आती है ऐसी कुश से पूरिपूर्ण स्थान था, कुश से कुशल और कुशल से कोशल शब्द की उत्पत्ति हुई और कोसल क्षेत्र कहलाया। यह एक भू-वनस्पतीय प्रमाण है। संस्कृत में धास को 'दर्भ' कहा गया है और जिस स्थान में धास न हो उसे 'विदर्भ, कहा जाता है। दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) से लगा हुआ भू-भाग (सीमावर्ती क्षेत्र) विदर्भ है जो आज भी अपने भू-वनस्पतीय नामकरण से अभिज्ञात है अतः दक्षिण कोसल जो कुश से संवर्धित भू-भाग है वह 'आरंग' का क्षेत्र है जो उन दिनों दक्षिण कोसल की राजधानी हुआ करती थी। जिसकी पुष्टि भू-वनस्पतीय आधार पर कुश एवं विदर्भ नाम से होती है ! छठीं शती ईस्वी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने कोसल की यात्रा की थी जिन्होंने अपनी कृति 'यात्रा वृतान्त - युवानचांग में उल्लेख किया है कि प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन दक्षिण कोसल की राजधानी के समीप ही निवास करते थे। उन दिनों दक्षिण कोसल का राजा सातवाहनकालीन शासक था। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन सिरपुर में निवास करते थे एवं वहाँ अध्यापन का कार्य भी किया करते थे तथा सिरपुर से 24 कि.मी. की दूरी पर प्राचीन नगरी आरंग है। जो दक्षिण कोसल की राजधानी के रूप में स्थापित होने की पुष्टि करती है।

बिलासपुर जिले में स्थित मल्लार क्षेत्र के उत्खनन के समय द्वितीय शताब्दी का एक सिक्का प्राप्त हुआ जिसमें ब्राह्मी लिपि में 'मानस कोसलीय' लेखबद्ध हुआ है। इस सिक्के में कोसली शब्द उत्कीर्ण होना इस बात का संकेत है कि छत्तीसगढ़ का प्राचीन नाम 'कोसल' ही था। वाल्मीकि रामायण में दो कोसल का उल्लेख मिलता है, उत्तर कोसल एवं दक्षिण कोसल। एक कोसल महाजनपद था, जो कि सरयू नदी के तट पर स्थित था (बालकाण्ड में इसका विस्तृत विवरण मिलता है) मगध राज्य के समीप दूसरे कोसल का विवरण मिलता है। मगध राज्य से लगा हुआ भू-भाग दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) ही था।

पुराणों में कोसल

पुराणों में कोसल जनपद के लोगों का उल्लेख विन्ध्य पृष्ठ में मालव, कुरुषा, मेकल, उत्कल, उत्मार्ण, दर्शाण, भोज, किष्किन्धा, कोसल, तोसल, त्रिपुर, विदेह, निषाद, अनुष, टुण्डीकेर और अवन्तियों के साथ हुआ है। पुराणों में कोसल जनपद की स्थिति दक्षिण के मालव, मेकल, के साथ वर्णित है, जो अभिलेखीय प्रमाण हैं। महाभारत काल में अश्वमेघ पर्व में कोसल का वर्णन बंगों और पुण्डरों के साथ आया है। महाभारत सभापर्व में यह उल्लेख मिलता है कि पाण्डवों ने 'राजसूय' यज्ञ किया था तथा यज्ञ के अश्व के साथ राजा युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाई सहदेव को भेजा था। सहदेव नर्मदा नदी को पार करके विदर्भ के वेणातट (वेनगंगा नदी) को पार करके महाकान्तार (छत्तीसगढ़) क्षेत्र में पहुँचे थे और यहाँ के राजाओं को परास्त कर 'कोसल' राज्य पर विजय प्राप्त की थी। यहाँ से दक्षिण समुद्र से लौटकर माहिष्मत के हैहयवंशी राजा नीलध्वज को जीता था। इस प्रकार उस क्षेत्र का नाम रामायण एवं महाभारत काल में 'कोसल' नाम से उल्लिखित है।

इतिहासविद् ए. कनिंघम के अनुसार महाकोशल ही छत्तीसगढ़ है। महाकोशल में चेदिवंशी राजाओं के राज्य होने के कारण यह 'चेदिशगढ़' कहलाने लगा। जो कालान्तरस में बिगड़कर चेदिशगढ़ से 'छत्तीसगढ़' हो गया। रायबहादुर हीरालाल के अनुसार छत्तीसगढ़ के कलचुरि (हैहयवंशी) राजाओं के कुछ उत्कीर्ण लेखों में चेदि संवत या चेदिश्य संवत जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया था। बौद्ध काल के पूर्व महाजनपद काल में चेदि या चेति और वस्त की एक जोड़ी गिनी जाती है। दूसरी शती ईस्वी पूर्व में कलिंग राजा खारवेल, चेत या चेति (चेदि) वंश का था। अतः मूल चेदि देश से कलिंग तक चेदि लोग कोसल या छत्तीसगढ़ के द्वारा ही फैले होंगे। इस प्रदेश का नाम अधिष्टी था और अधिष्ठान पर्वतमाला इसके दक्षिण में है। इतिहासकार कनिंघम के अनुसार अधिष्टी का अधिष ही छत्तीस हो गया होगा। जे.डी. वेग्लर ने अनुसार छत्तीसगढ़ 'छत्तीस-घर' से पड़ा, जो बोलचाल में बिगड़ते- बिगड़ते छत्तीसगढ़ हो गया।

छत्तीसगढ़ शब्द का प्रथम प्रयोग सन 1493 में साहित्यिक प्रमाण के रूप में खैरागढ़ के चारण कवि दलराम राव की रचना में हुआ। अपने राजा लक्ष्मीनिधि राय की प्रशस्ति के अनुसार -

लक्ष्मीनिधि राय सुनो, चित्त दे, गढ़ छत्तीस में न गढ़ैया रही।
मरदुमी रही नहीं मरदन के, फेर हिम्मत से न लड़ैया रही।।

इस काव्य के उद्धरण से प्रमाणित हो जाता है कि छत्तीसगढ़ का नाम सर्वप्रथम सन 1493 में प्रकाश में आ गया था।

छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ के नामकरण के पीछे मूल रूप में इस क्षेत्र में पाए जाने वाले 36 गढ़ (किला) हैं। 18 किले शिवनाथ नदी के उत्तर में एवं 18 किले दक्षिण भाग में विद्यमान थे, जिनका विवरण इस प्रकार है-

शिवनाथ नदी

उत्तर दिशा में	दक्षिण दिशा में
1. रतनपुर	1. रायपुर
2. मारो	2. पाटन
3. विजयपुर	3. सिमगा
4. खरौद	4. सिंगारपुर
5. कोटगढ़	5. लवन
6. नवागढ़	6. अमीरा
7. सोंढ़ी	7. दुर्ग
8. ओखर	8. सरदा
9. पंड़रभठा	9. सिरसा
10. सेमरिया	10. मोंहदी
11. मदनपुर (चाँपाजमींदारी)	11. खल्लारी
12. कोसगई (छूरीजमींदारी)	12. सिरपुर
13. लाफागढ़	13. फिंगेश्वर
14. केंदा	14. राजिम

15. उपरोड़ा	15. सिगारगढ़
16. मातिन	16. सुअरमार
17. कंडरी (पेण्डरा)	17. टेंगनागढ़
18. करकट्टी (अब बघेलखण्ड)	18. अकलबाडा

इस प्रकार 36 गढ़, तत्कालीन गणना के अनुसार 18 रतनपुर राज एवं 18 रायपुर राज के अंतर्गत आते थे। रतनपुर राज में 3586 ग्राम एवं रायपुर राज में 2,136 ग्राम आते थे। अतः उपरोक्त 36 गढ़ (किला) जो मिट्टी से निर्मित थे, अधिकांशतः ध्वस्त होकर अस्तित्वहीन हो गये हैं। इन्हीं 36 गढ़ों से 'छत्तीसगढ़' नाम पड़ा। जो नाम के अनुरूप सार्थक एवं सर्वमान्य कहा जाता है। छत्तीसगढ़ अपने 36 गुणों से सम्पन्न होने के कारण देश में एक समृद्धशाली राज्य के रूप में स्थापित हुआ है।

अध्याय 3

छत्तीसगढ़ का पुरातात्विक इतिहास

किसी भी क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिये उस क्षेत्र की प्राचीनता एवं पुरातत्त्व का अध्ययन आवश्यक है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र का भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला एवं पुरातत्व क्षेत्र सदैव ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र पुरातत्व का प्रारंभ उस समय से माना जाता है जब मानव सभ्यता का विकास नहीं हुआ था और मानव पशुओं की भाँति जंगलों, पर्वतों और नदियों के तटों पर जीवन व्यतीत करता था। अन्य प्राणियों से बुद्धिमान होने के कारण इसने नदियों से प्राप्त होने वाले पत्थरों को तोड़कर नुकीला बनाकर उसे हथियारों के रूप में प्रयुक्त करना प्रारंभ किया, जिससे भोजन सरलतापूर्वक प्राप्त कर सके। चूँकि इस काल में मावन ने पत्थरों का प्रयोग प्रारंभ किया था, इसलिये इस काल को इतिहासकार पाषाण काल से सम्बोधित करते हैं।

छत्तीसगढ़ में बस्तर स्थित अबुझमाड़ में आज भी हजारों वर्ष प्राचीन मानव सभ्यता का जीवन्त उदाहरण सदृश्य है।

पाषाण युग

पाषाण काल को अध्ययन की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :-

1. पूर्व पाषाण काल, 2. मध्य पाषाण काल, 3. उत्तर पाषाण काल।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में पूर्व पाषाणकाल के औजार महानदी घाटी तथा रायगढ़ जिले के सिंघनपुर से प्राप्त हुये हैं। मध्य पाषाण काल में लम्बे फलक, अर्द्धचन्द्राकार लघु पाषाण काल के लघुकृत पाषाण औजार महानदी घाटी, बिलासपुर जिले के धनपुर तथा रायगढ़ जिले के सिंघनपुर से चित्रित शैलाश्रय गृहों के निकट से प्राप्त हुये। इसके पश्चात् नव-पाषाण युग आता है।

इस काल के औजार दुर्ग जिले के अर्जुन, नाँदगाँव तथा रायगढ़ जिले के टेरम नामक स्थानों से प्राप्त हुये हैं। इस काल में मानव सभ्यता की दृष्टि से विकास कर चुका था तथा उसने कृषि कार्य, पशुपालन, गृह-निर्माण तथा बर्तनों का निर्माण कार्य इत्यादि सीख लिया था। इस प्रकार वह मानव की श्रेणी पर पहुँच चुका था।

पाषाणकाल के पश्चात् ताम्र और लौह युग आता है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में इस काल की सामाग्री का अभाव है किन्तु निकटवर्ती बालाघाट जिले के गुंगेरिया नामक स्थान से ताम्बे के औजारों का एक बड़ा संग्रह प्राप्त हुआ है। इसी युग की एक कुल्हाड़ी जबलपुर के निकट से भी मिलती है। लौह युग में शव को गाड़ने के लिये बड़े-बड़े शिलाखण्डों का प्रयोग किया जाता था इसे 'महापाषाण' स्मारकों के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

भारतीय पुरातत्व के इतिहास में मोहनजोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई से ईसा से 2500 वर्ष पूर्व की एक विकसित संस्कृति का बोध होता है, वहीं दूसरी ओर छत्तीसगढ़ क्षेत्र के अन्तर्गत दुर्ग जिले की बालौद तहसील के आसपास 'कारकाभाट,

कबराहट, सोरर, करहीभदर, मुजगहन, चिरचोरी, घनोरा, लीलर एवं कुलिया नामक ग्रामों का सम्पूर्ण क्षेत्र 'महापाषाण कालीन' पुरावशेषों से भरा पड़ा हुआ है। पुरावशेषों के सर्वेक्षण एवं उत्खनन से छत्तीसगढ़ की अति प्राचीन अर्थात् प्रारंभिक काल की महत्त्वपूर्ण संस्कृति का ज्ञान होता है।

महापाषाण काल में मूर्तिकला

वर्ष 1990 में छत्तीसगढ़ ने भारतीय इतिहास को चौंका देने वाले ऐतिहासिक तथ्य प्रदान किये। बालौद तहसील के करहीभदर मार्ग पर 16 किलोमीटर की दूरी पर स्थित महापाषाण कालीन स्मारकों का एक समूह स्थल कारकाभाट, कबराहट के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थल का भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा किये गये उत्खनन कार्य से 10 नवम्बर, 1990 को कारकाभाट स्थित महापाषाणकालीन स्मारकों में पाषाण कालीन 'प्रतिमा' की उपलब्धि अर्थात् महापाषाणकाल में 'मूर्तिकला' की उपलब्धि एवं स्मारकों के नीचे मृतक की प्रिय वस्तु मुद्रिका, मनके, ताम्बे की चूड़ियाँ, लोहे के उपकरण बरतन आदि की प्राप्ति से आदिम युग का कला-कौशल, प्राचीन कला में धातुओं का ज्ञान, आदि तथ्य प्रकाश में आये। इस उपलब्धि में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग एवं भारत के पुरातत्ववेत्ताओं को यह सोचने के लिये विवश कर दिया कि छत्तीसगढ़ में महापाषाण कालीन एक 'सु-संस्कृत विकसित सभ्यता' थी जिन्हें मूर्तिकला का पर्याप्त ज्ञान था।

यद्यपि इसके पूर्व महापाषाणकालीन स्मारकों एवं पुरावशेषों के उत्खनन कार्य में ऐसे तथ्य प्रकाश में नहीं आये। छतीसगढ़ क्षेत्र में पाषाण युग में मूर्तिकला की परम्परा इस बात का पर्याप्त साक्ष्य है कि मोहनजोदड़ो, हड़प्पाकालीन संस्कृति से पूर्व एक सु-संस्कृत एवं विकसित सभ्यता छत्तीसगढ़ में विद्यमान थी।

चित्रित शैलगृह

मानव प्रागैतिहासिक काल में पर्वतों, कन्दराओं में निवास करता था, तब उसने इन शैलाश्रयों में अनेक चित्र बनाये थे, जो उनके अन्तःकरण के उद्गार एवं कलाप्रिय होने का प्रमाण है। छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में सिंघनपुर तथा कबरापहाड़ में अंकित शैल चित्र उसके अनुपम उदाहरण हैं। कबरापहाड़ में लाल रंग से छिपकली, घड़ियाल, साँभर, अन्य पशुओं तथा पंक्तिबद्ध मानव समूह का चित्रण किया गया है। सिंघनपुर में मानव आकृतियाँ सीधे डण्डे के आकार की तथा सीढ़ी के आकार में अंकित की गयी हैं।

राजनाँदगाँव जिले में चितवा डोंगरी, रायगढ़ में बसनाझर, ओगना, बोतलटा, करमागढ़ तथा लेखापाड़ा जशपुर जिले में लेखापत्थर, सरगुजा में रामगढ़ की पहाड़ी आदि में अंकित शैलचित्रो की समुचित जानकारी नहीं हो पायी। इस तरह रायगढ़ जिले में कबरापहाड़ और सिंघनपुर की गुफाओं में मानव सभ्यता के उस प्रारंभिक युग के चिह्न सुरक्षित हैं जब प्रागैतिहासिक मानव, पर्वत एवं कन्दराओं में निवास करता था।

छत्तीसगढ़ में इसके अतिरिक्त प्रागैतिहासिक शैलचित्रों की प्रमाणिकता राजनाँदगाँव जिले में चितवा-चितवाडोंगरी और रायगढ़ जिले की बसनाझर ग्राम के पास बम्हनी पर्वत श्रेणी में चित्रित शैलगृहों में प्राप्त होते हैं। प्रागैतिहासिक काल के भित्तिचित्रों में सबसे अधिक रोचक चित्र अंबिकापुर जिला सरगुजा के लगभग 30 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम स्थित रामगढ़ पहाड़ी की जोगीमारा नामक गुफा में प्राकृतिक रंगों में छोटे-छोटे चित्र अंकित हैं। जिसमें एक चित्र में शिष्यों को प्रवचन देते हुये किसी सन्यासी को चित्रित किया गया है विशेष उल्लेखनीय है। इसी गुफा के पास सीतामढ़ी नामक गुफा है जो भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित प्रेक्षागृह रंगशाला की शैली में वर्णित प्रतीत होता है। प्रेक्षागृह की नट-नटियों का आवास स्थान भी वहीं था। दुर्भाग्य से उक्त दुर्लभ चित्र की कुछ रेखाएँ ही शेष रह गयी हैं, अन्य भाग परवर्ती कालों में खींचे गये चित्रों के नीचे दब गये हैं। प्राचीन चित्रों का निर्माण मौर्यकाल के अंतिम समय में किया गया होगा, जैसा कि यहाँ पाये गये कुछ अभिलेखों से प्रमाणित हैं।

प्राचीनतम नाट्यशाला : सीताबेंगरा-जोगीमारा गुफा

कला की विविध विधाओं में, संगीत नृत्य, एवं नाटय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके मंचन के लिये रंगशाला के निर्माण की व्यवस्था का सर्वोत्तम विवरण भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है। इसी परम्परा में निर्मित एक नाट्यगृह सरगुजा जिले के अंबिकापुर नगर से लगभग 32 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित रामगढ़ नामक पहाड़ी में स्थित है। इस पहाड़ी का प्राचीनतम नाम 'रामगिरि, पर्वत है। इस पहाड़ी में 'हथफोर' अर्थात् हाथीपोल नामक एक सुरंग है जो पहाड़ी को आर-पार दो ग्रामों से जोड़ती है। कहा जाता है कि इस सुरंग से पहाड़ी के पीछे के गाँव के लोग रंगशाला में देखने आया करते थे। इस हथफोर सुरंग के दाहिनी ओर दो प्राचीन गुफा हैं, एक का नाम सीताबेंगरा, दूसरे का नाम जोगीमारा है। इन दोनों गुफाओं के निर्माण विशेष ढंग से पर्वत को काटकर किये गये हैं। प्रत्येक गुफा में अशोककालीन ब्राह्मी लिपि में लेख उत्कीर्ण हैं। लिपि के आधार पर इसे दूसरी-तीसरी शती ईस्वी की 'विश्व की प्राचीनतम नाट्यशाला' कहा जाता है। इस लेख से ज्ञात होता है कि सुतनुका नाम की एक नर्तकी थी जिसके लिये 'देवदासी' एवं 'रूपदर्शिका' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिससे उसकी नाट्य विनोदनी प्रिया सुतनुका के साथ उसका नाम उस स्थान पर अमर हो जाये। 'देवदत्त' और 'सुतनुका' ने इसका निर्माण नर्तकों तथा नाट्यों के लिये कराया होगा। गुफा के सामने सीढ़ियों के रूप में प्रेक्षागृह के भग्नावशेष विद्यमान हैं। इस नाट्यशाला की लम्बाई 45 फीट एवं चौड़ाई 15 फीट तथा ऊँचाई 6 फीट है। पर्वतीय चट्टानों को काटकर उत्तर मुखी अर्ध-वृत्ताकार गुफा बनायी गयी है। इसकी दीवारें बिलकुल सीधी हैं। प्रवेश द्वार गोलाकार है इसमें सीढ़ीदार दर्शक दीर्घा गैलरीनुमा ऊपर से नीचे की ओर अर्धाकार स्वरूप में चट्टान को इस तरह काटा गया है कि दर्शक दीर्घा में बैठकर आराम से कार्यक्रमों को देख सके। इस गैलरी में लगभग 50 दर्शक आराम से बैठकर रंगशाला में कार्यक्रमों का आनंद ले सकते हैं। इस प्रेक्षागृह में नर्तक देवदास एवं नर्तकी सुतनुका की प्रणय गाथा का चित्रण है। नर्तकी सुतनुका को देवदासी से सम्बोधित किया गया है। इसका आशय यह हुआ कि छत्तीसगढ़ में दूसरी-तीसरी शती में 'देवदासी-प्रथा' का प्रचलन था। सीताबेगरा गुफा की आज भी विश्व की प्राचीनतम नाट्यशाला में गणना की जाती है। आन्ध्रप्रदेश के गुण्टूर जिले में स्थित नागार्जुनकोण्डा नामक स्थान की खुदाई में एक प्रेक्षागृह प्रकाश में आया है जो आकार में बड़ा है।

सीताबेंगरा के पार्श्व में जोगीमारा गुफा है। जनश्रुति है कि प्राचीन समय में इस गुफा में जोगी महाराज अर्थात् साधु-संत आसन लगाकर तप किया करते थे, इसी कारण इस गुफा का नामकरण कालान्तर में परिवर्तित होकर जोगी महाराज से जोगीमारा संक्षिप्त नाम हो गया। इस गुफा में चित्रित प्राकृत रंगों में छोटे-छोटे चित्र आकर्षक, हैं तथा सदियों गुजर जाने के बाद भी ये चित्र आज भी तरोताजा प्रतीत होते हैं। ये छत्तीसगढ़ की प्राचीन अस्मिता की पहचान लिये आज भी विद्यमान हैं।

गुंजी-अभिलेख (ऋषभतीर्थ)

चाँपा-जाँजगीर जिले के अंतर्गत सक्ति तहसील से उत्तर दिशा में 20 कि.मी. की दूरी पर गुंजी नामक ग्राम है। यहाँ ऊँची पहाड़ी से गिरता हुआ प्राकृतिक झरना है। ग्रामीण बोली में इसे दमउ-दहरा कहा जाता है। इस झरने के दाहिनी ओर दो मीटर लम्बा एवं दो मीटर चौड़ा चौकोर एक विशाल शिला-खण्ड है जिसमें प्राकृत लिपि में उत्कीर्ण लेख है। इस लेख में सातवाहनकालीन शासक कुमारवरदत्त के पाँचवें संवत में प्रवेश पर एक हजार गायों का दान देने का उल्लेख है। नीचे इस स्थान का नाम ऋषभतीर्थ लिखा गया है। इसका आशय यह हुआ कि गुंजी नामक यह स्थान जैन सम्प्रदाय की पुण्य तीर्थ स्थली थी। ऋषभ-तीर्थ अर्थात् जैन धर्म के प्रथम गुरु ऋषभदेव का पदार्पण उस क्षेत्र में होने की जानकारी मिलती है जो उन दिनों तीर्थ स्थली के रूप में विख्यात रही होगी। भारत का सबसे बड़ा उत्कीर्ण अभिलेख का गौरव प्राप्त गुंजी अभिलेख को सातवाहनकालीन लिपि के आधार पर दूसरी-तीसरी शती ईस्वी की मानी जाती है।

बुदीखार (मलकार) में ऋषभदेव की 8-10 प्रतिमाएँ एक ही स्थान से प्राप्त होने के कारण छत्तीसगढ़ में ऋषभतीर्थ होने की पुष्टि होती है।

किरारीधोड़ी का काष्ठ स्तंभ लेख

जिला बिलासपुर के अंतर्गत किरारीधोड़ी नामक स्थान से पुराने जलाशय की सफाई में प्राप्त हुआ काष्ट स्तंभ लेख अद्वितीय है। भारतवर्ष में लेखयुक्त पाषाण स्तंभ प्रायः मिलते हैं, किन्तु लेखयुक्त काष्ठ स्तंभ कहीं नहीं मिलता। इस काष्ठ स्तंभ की लिपि नासिक की गुफाओं में उत्कीर्ण लेख से मिलती-जुलती है। प्राकृत भाषा में लेखबद्ध इस काष्ठ स्तंभ को अतिप्राचीन दूसरी शताब्दी का माना जाता है। यह दुर्लभ स्तंभ रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत है।

प्राचीन नदी बंदरगाह

सिरकट्टी गरियाबंद तहसील के अंतर्गत सिरकट्टी नामक ग्राम के समीप प्रवाहित पैरी नदी के तट पर प्राचीन नदी बंदरगाह के अवशेष मिले हैं। इसके समीप ही मालगाँव है, जिकजेक में नदी चट्टान को काटकर बनायी गयी नदी बंदरगाह प्राचीन समय में छत्तीसगढ़ से व्यापार होने की पुष्टि करती है। पैरी नदी आगे चलकर राजिम में महानदी से मिलती है। छत्तीसगढ़ की प्राचीन एवं प्रमुख महानदी छत्तीसगढ़ से उड़ीसा का संबंध जोड़ती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। उन दिनों विभिन्न राज्यों से छत्तीसगढ़ का व्यापारिक संबंध होने की जानकारी मिलती है। प्राचीन काल में छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था।

छत्तीसगढ़ के पुरातात्विक स्थलों में बिलासपुर स्थित मल्लार क्षेत्र अति प्राचीन है। मल्लार क्षेत्र के बुढ़ीखार नामक स्थान से प्राप्त हरिहर विष्णु की प्राचीन मूर्ति मिली है। उस मूर्ति में उत्कीर्ण लिपि के आधार पर इसे छत्तीसगढ़ की सबसे प्राचीन मूर्ति प्रथम शती ईस्वी की मानी जाती है। छत्तीसगढ़ के पुरातत्व में सिरपुर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से लेकर महाभारतकाल तक एवं पाण्डुवंश से बौद्ध काल तक यह प्रमुख गतिविधियों का केन्द्र रहा है। बौद्ध काल में सिरपुर का प्रमुख स्थान था। छठीं शती ईस्वी में चीनी यात्री ह्वेनसांग सिरपुर आये थे। उन दिनों सिरपुर बौद्ध धर्मावलंबियो के आकर्षण का केन्द्र था। प्रसिद्ध रसायनविद् बोधिसत्व नागार्जुन सिरपुर स्थित संघाराम (बौद्ध विहार) में अध्यापन का कार्य किया करते थे जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने अपनी 'यात्रा वृत्तान्त-युवानच्यांग' नामक पुस्तक में उल्लेख किया है। उन्होंने सिरपुर में उन दिनों सौ के आसपास बौद्ध विहार होने की जानकारी दी थी। सिरपुर के 1956 के उत्खनन में दो बौद्ध विहार के अवशेष मिले थे अभी हाल ही में अप्रैल 2003 में सिरपुर की खुदाई से दो और बौद्ध विहार मिल चुके हैं। इस प्रकार छत्तीसगढ़ का पुरातात्विक इतिहास अपनी प्राचीनता का प्रमाण देता हुआ छत्तीसगढ़ को गौरवान्वित कर रहा है।

खण्ड-1 प्राचीन इतिहास
अध्याय 4
प्रागैतिहासिक काल

छत्तीसगढ़ का इतिहास जितना प्राचीन है, उतने ही प्रशस्त है। प्रागैतिहासिक काल में छत्तीसगढ़ की क्या स्थिति थी? प्रागैतिहासिक काल के क्या प्रमाण मिलते हैं? इसकी जानकारी के लिये इस क्षेत्र के प्रागैतिहासिक काल अध्ययन किया जाना आवश्यक है। प्रारंभिक युग में मानव पशुओं की भाँति जगलों, पर्वतों, कन्दराओं और नदियों के तट पर अपना जीवन व्यतीत करता था। मानव दिन-रात अपनी क्षुधा की शांति के लिये भोजन की तलाश में जंगलों, कन्दराओं में विचरण करता था। नदियाँ, घाटियाँ, प्राकृतिक रूप से मानव के लिये सर्वोत्तम आश्रय अर्थात् निवास स्थान था। यही कारण है कि मानव सभ्यता के पूरे विश्व में नदी-घाटियों में विकसित होने के तथ्य प्रकाश में आये हैं। मानव अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिये कन्द-मूल खोदने एवं पशुओं के आखेट के लिये पत्थरों को नुकीला बनाकर औजारों के रूप में प्रयोग करने लगा। पाषाण के प्रयोग के कारण इस युग को पाषाण युग कहते हैं।

प्रागैतिहासिक काल में छत्तीसगढ़ की स्थिति का उल्लेख करने के पूर्व पाषाण युग को तीन भागों में क्रमशः पूर्व पाषाण युग, मध्य-पाषाण युग एवं उत्तर पाषाण युग में विभक्त किया जा सकता है। पूर्व पाषाण युग के औजार महानदी घाटी तथा रायगढ़ जिले के सिघनपुर से प्राप्त हुये हैं। मध्य पाषाण युग के लम्बे फलक, अर्द्धचन्द्राकार लघु पाषाण युग के औजार रायगढ़ जिले के कबरापहाड़ में चित्रित शैलाश्रय के निकट से प्राप्त हुये हैं। उत्तर पाषाण युग के लघु पाषाण औजार महानदी घाटी बिलासपुर जिले के धनपुर, रायगढ़ जिले के सिंधनपुर में चित्रित शैलगृहों के निकट से प्राप्त हुये हैं।

उत्तर पाषाण युग के पश्चात् नव-पाषाण युग आता है। नव पाषाण युग के औजार दुर्ग जिले के अर्जुनी, सरगुजा जिले में रामगढ़ पहाड़ी के समीप हथफोर सुरंग के आसपास रायगढ़ जिले में टेरम नामक स्थल से प्राप्त हुये हैं। इस युग में मानव सभ्यता की दृष्टि से विकास कर चुका था। उसने कृषि कार्य, पशु-पालन, गृह निर्माण तथा बरतनों आदि का कार्य सीख लिया था। पाषाण युग के पश्चात् ताम्र एवं लौह युग आता है। छत्तीसगढ़ में इस काल की सामग्री का अभाव है। छत्तीसगढ़ के निकटवर्ती बालाघाट जिले के गुंगेरिया नामक स्थान में ताम्बे के औजारों का एक बड़ा संग्रह प्राप्त हुआ है। इसी काल की एक कुल्हाड़ी जबलपुर के निकट से भी मिली है। इसके पश्चात् लौह युग आता है। इस युग में शव को गाड़ने के लिये बड़े-बड़े शिलाखण्डों का प्रयोग किया जाता था। शिलाखण्डों को गाड़ने के लिये खुदाई की आवश्यकता होती है और खुदाई के लिये लौह की सामग्री अथवा औजारों की आवश्यकता के कारण मानव ने इसका उपयोग किया। जो लौह युग के रूप में संबोधित किया जाता है। छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले में एवं धमतरी जिले के क्षेत्र में बड़े-बड़े शिलाखण्ड गड़े हुये मिलते हैं इसे महापाषाण स्मारकों के नाम से सम्बोधित किया जाता है। दुर्ग जिले के करहीभिटर, चिरचौरी, सोरर, कारकाभाट, मजगहन, एवं मेनहीर स्थान जो धमतरी बालौद मार्ग पर विद्यमान हैं। वर्ष 1990

में कारकाभाट में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा उत्खनन कार्य किया गया था। एक शिलाखण्ड के नीचे मृतक की प्रिय वस्तु मुद्रिका, मनके, तांबे की चूड़ियाँ, लोहे के उपकरण, बरतन आदि मिले थे। कहा जाता है कि ये शिलाखण्ड शवों को गाड़ने के पश्चात् उस स्थान पर स्मारक के रूप में गाड़े जाते थे। बड़े बुजुर्ग के लिये बड़ा शिलाखण्ड एवं छोटे के लिए छोटा शिलाखण्ड एवं उसके मृत्यु की समय सूचना दर्शाने के लिये सूर्य की स्थिति के अनुसार कोण रखकर गाड़े जाने की नवीनतम जानकारी मिलती है। जिला धमतरी के निकट धनोरा नामक स्थान में लगभग 500 महापाषाण युगीन स्मारक मिले हैं। इससे यह तथ्य प्रकाश में आये हैं कि छत्तीसगढ़ क्षेत्र में महापाषाणकालीन स्मारकों की बहुलता है। स्मारकों में शव की पारिवारिक स्थिति, मृत्यु की समय सूचना आदि बहुमूल्य जानकारी को प्रदर्शित करता हुआ छत्तीसगढ़ में प्रागैतिहासिक युग की उपादेयता है। "यह उपलब्धि छत्तीसगढ़ के मानव की सु-संस्कृत सभ्यता की महत्त्वपूर्ण कड़ी कही जा सकती है।

प्रागैतिहासिक काल में जब मानव पर्वत-कन्दराओं में निवास करता था, तब उन दिनो हिंसक पशुओं का उन्हें भय था। जब वे आखेट के लिये निकलते थे तो अपने परिजनों को यह बताने के लिये कि गुफा में हिंसक पशु निवास करते हैं, उनकी आकृति उन कन्दराओं में उकेर कर अपनी अभिव्यक्ति प्रकट करते थे। इन कन्दराओं एवं शैलाश्रयों में बाघ, घड़ियाल, छिपकली व अन्य हिंसक प्राणियों के रेखाचित्र इसके प्रमाण हैं। आदिमानव ने शैलाश्रयों में अपने अंतकरण के उद्‌गार के लिये अथवा कला-प्रियता के लिये रेखांकन किया जाना भी कहा जा सकता है। छत्तीसगढ़ का प्राचीनतम शैलाश्रय, रायगढ़ जिले में स्थित सिंधनपुर एवं कबरापहाड़ जिसमें अंकित शैलचित्र इसके अनुपम उदाहरण हैं। कबरा पहाड़ में लाल रंग की छिपकली, घड़ियाल, पंक्तिबद्ध मानव समूहों का एवं आखेट दृश्य का चित्रण किया गया है। सिंधनपुर में मानव आकृतियाँ सीधी डण्डे के आकार की तथा सीढ़ी के आकार की बनी हैं। सन 1912 में पहली बार पुराविद् एण्डरसन ने इसकी खोज की थी। भारत में अब तक ज्ञात शैलाश्रयों में प्रागैतिहासिक मानव (एवमेन) व मृत्सांगना (मरमेड) का चित्र केवल सिंधनपुर शैलाश्रय में हैं। रायगढ़ जिले में स्थित काबरापहाड़ में वन्य प्राणियों के चित्र प्रमुख रूप से चित्रित हैं। इन चित्रों में कछुआ, जंगली भैंसा, हिरण, बाघ आदि के चित्रांकन विशेष उल्लेखनीय हैं। वहीं बाघ से भयभीत मनुष्य का चित्र महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार के करमागढ़ के शैलचित्रों में एक भी मानवाकृति नहीं है। इसमें वन्य प्राणियों एवं जलचर प्राणियो की प्रमुखता है। मछली, सर्प, कछुआ, छिपकली, बरहा और गोह आदि के चित्र प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त छत्तीसगढ़ के कुछ अन्य शैलाश्रय हैं। जिनमें "करमागढ़, बेनीपाट, नवागढ़ पहाड़ी, ओगना, बोतलता, बसनाझर, खैरपुर, भैसमढ़ी, लेखाभाड़ा, जशपुर में लेखापत्थर, सरगुजा में रामगढ शैलाश्रय, जोगीमारा गुफा के चित्र, तथा राजनाँदगाँव जिले में चितवाडोगरी के प्रागैतिहासिक शैलचित्र विशेष उल्लेखनीय हैं।"

अध्याय 5

आद्यैतिहासिक काल

आर्यों के भारत में आगमन से वैदिक युग प्रारंभ होता है। इस युग से संबंधित सामग्री का छत्तीसगढ़ क्षेत्र में अभाव है। ऋग्वैदिक काल में यह क्षेत्र संभवतः आर्यों के सम्पर्क में नहीं था। उत्तर वैदिक काल में आर्यों से इसका सम्पर्क अवश्य हो गया। वैदिक सभ्यता के इस विकास में उत्तर भारत के अतिरिक्त, दक्षिण कोसल (प्राचीन छत्तीसगढ़) का भू-भाग भी सम्मिलित था, यद्यपि इस भू-भाग के एक भाग दण्डकारण्य क्षेत्र में अनार्यों का ही आधिपत्य था परन्तु इस क्षेत्र का उत्तरी भाग (अर्थात् जो महानदी और पैरी नदी का पठार) आर्यों की वैदिक सभ्यता से पूर्ण प्रभावित था। जिसका प्रमाण उस काल में इन स्थानों में ऋषि-मुनियों के आश्रम से ज्ञात होता है जो महानदी के किनारे स्थित थे।

उत्तर वैदिक काल में आर्यों से उनका सम्पर्क हो गया था, कालान्तर में रामायण और महाभारत से संबंधित अनेक पात्रों एवं घटनाओं का संबंध इस क्षेत्र से स्थापित किया जाने लगा। रामायण से ज्ञात होता है कि राम की माता कौशल्या, कोसल के राजा भानुमन्त की पुत्री थी। स्थानीय परम्परा के अनुसार भानुमन्त दक्षिण कोसल (प्राचीन छत्तीसगढ़) के राजा थे। राम के पश्चात् उत्तर कोसल के राजा लव जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी, और दक्षिण कोसल का राज्य कुश को प्राप्त हुआ था। पुराणों से ज्ञात होता है कि प्राचीन छत्तीसगढ़ के भू-भाग में लगभग 48 इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने राज्य किया था। स्थानीय किंवदंतियों के अनुसार वाल्मीकि का आश्रम रायपुर जिले के तुरतुरिया नामक स्थान पर था जहाँ लव-कुश का जन्म हुआ था।

प्राचीन काल से छत्तीसगढ़ क्षेत्र सघन वृक्षों से आच्छादित स्थान दुर्गम और महाकान्तार एवं शांतिस्थली के रूप में विख्यात था। इसी कारण ऋषि-मुनियों द्वारा ध्यान एवं तपोभूमि के लिये इस स्थान का चयन किया गया था। छत्तीसगढ़ में वैदिक युग में ऋषि परम्परा की जानकारी जनश्रुतियों में मिलती है। जैसे आर्य-संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये अगस्त्य ऋषि ने उत्तरापथ से दक्षिणापक्ष जाने के लिये विन्ध्याचल पर्वत को लांघकर छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) होते हुये दण्डकारण्य क्षेत्र के माध्यम से दक्षिण में प्रवेश किया था। ऋषियों की तपस्थली के लिये उन दिनों छत्तीसगढ़ प्रसिद्ध था। जैसाकि जन-श्रुति है, मारकण्डेय ऋषि का आश्रम-अमरकन्टक, शृंगी ऋषि का आश्रम-सिहावा पर्वत, लोमस ऋषि का आश्रम -राजिम, वाल्मीकि ऋषि का आश्रम-तुरतुरिया, सरभंजा ग्राम (मैनपाट) से शरभंग ऋषि का आश्रम, कंक ऋषि से काँकेर, मतग ऋषि से शिवरीनारायण, मचका पर्वत (सिहावा) से मुचकुन्द ऋषि, तथा सिहावा क्षेत्र में अंगिरा ऋषि का आश्रम आदि पुण्य स्थली है। छत्तीसगढ़ अंचल का बस्तर क्षेत्र राजा दण्ड के राज्य के अंतर्गत था। जो शुक्राचार्य के श्राप के कारण दण्डक राज्य आरण्य (वन) के रूप में परिवर्तित होकर दण्डकारण्य कहलाया। इस क्षेत्र का नाम आज भी दण्डकारण्य है। उन दिनों गंगा से गोदावरी का कछार (बेल्ट) दण्डकारण्य कहलाता था। रामचंद्रजी ने वनवास के 14 वर्षों में से 12 वर्ष का वनवास इसी दण्डकारण्य क्षेत्र में बिताया था। शृंगी ऋषि का आश्रम महानदी (चिचोत्पला) के उद्गम स्थान पर था। जो वर्तमान में सिहावा के आसपास यज्ञ आदि प्राचीन अनुष्ठानों का केन्द्र था। जनश्रुति के अनुसार इनका आश्रम सिहावा पर्वत पर था। प्राचीन काल में महेन्द्र पर्वत आज की भाषा में शृंगी ऋषि पर्वत के नाम से जाना जाता है। महेन्द्र पर्वत कलिंग से शुरु होने वाली पूर्वी घाट की पर्वत शृंखला का नाम है। आज भी गंजाम (उड़ीसा) के समीप यह महेन्द्र पर्वत 'महेन्द्र-मलेय'

पर्वत कहलाता है। सरगुजा स्थित रामगढ़ की पहाड़ी में एक 'वशिष्ठ' गुफा है, कहा जाता है कि रामगढ़ की पहाड़ी के इस भाग में 'वशिष्ठ' मुनि का आश्रम था। इसी के कारण इस स्थान का नाम वशिष्ठ गुफा पड़ा। जमदग्नि ऋषि की पत्नी का नाम 'रेणुका' था। सरगुजा में प्रवाहित 'रेण' नदी (रेड़ नदी) जिसका प्राचीन नाम रेणुका था। यह ऋषि जमदग्नि की पत्नी के नाम पर होने की प्रचलित मान्यता है। ऋषि जमदग्नि परशुराम के पिता थे। परशुरामजी भगवान शिवजी के परम उपासक बनकर इस नदी के तट पर तप किया करते थे। वहीं पर आज भी रेणुका नदी प्रवाहित है। इस स्थान पर शिव का प्राचीन मंदिर आज भी भग्नावशेष में है, जिसे देवगढ़ कहते हैं। किंवदन्ति के अनुसार परशुराम जी इस देवगढ़ शिव मंदिर में तपस्यारत थे तब शिवजी ने उनसे प्रसन्न होकर उन्हें शक्तिशाली होने का वरदान दिया था। महाभारत से संबंधित जनश्रुति है कि राजा मोरध्वज का संबंध आरंग से था तथा राजा ताम्रध्वज की राजधानी मणिपुर (वर्तमान रतनपुर) एवं अर्जुन के पुत्र वभ्रुवाहन की राजधानी 'श्रीपुर' वर्तमान सिरपुर में थी। इस प्रकार छत्तीसगढ़ के आद्यैतिहासिक काल की जानकारी मिलती है।

अध्याय 6

पौराणिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

किसी भी प्रदेश की संस्कृति, उसके प्राचीन वैभव, परम्परा का बोध कराती है। छत्तीसगढ़ में अनेक संस्कृतियों का प्रादुर्भाव एवं संघर्ष की कथा की जानकारी मिलती है। छत्तीसगढ़ का प्राचीन नाम दक्षिण कोसल था। यहाँ आर्य-अनार्य संस्कृति का विकास, वैदिक युग में सु-संस्कृत समाज की संरचना का विकास तथा रामायण काल में आदर्श परम्परा निर्वहन की संस्कृति की महिमामय गाथा मिलती है। महाभारत काल की गीता के उपदेश में कर्मयुद्ध एवं पारस्परिक संघर्ष की संस्कृति, पौराणिक युग में वेद, उपनिषदों में अनुकरण की गौरवमय संस्कृति एवं बौद्ध युग की सद्भावना, अहिंसा, धर्मोपदेश संस्कृति तथा मौर्य काल की गौरवमय स्थापत्यकला प्रेम की संस्कृति का प्रतीक यह छत्तीसगढ़ धरती पर स्वर्ग के अनुरूप अपनी सांस्कृतिक विरासत की छटा बिखेरते हुई विद्यमान है।

इस अध्याय के अंतर्गत पौराणिक छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक इतिहास को निम्न खण्डों में विभाजित किया जाता है :-

1. आर्य एवं अनार्य काल।
2. वैदिक काल।
3. रामायण काल।
4. महाभारत काल।
5. पौराणिक काल।

आर्य एवं अनार्य काल

आर्यों का सांस्कृतिक इतिहास अति प्राचीन है। भारत वर्ष में सर्वप्रथम आर्यों के संबंध में विस्तृत विवरण वैदिक साहित्य में मिलता है। हमारे अन्य धार्मिक ग्रन्थ, पुराण, उपनिषद्, स्मृति आदि ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है। यद्यपि आर्यों के मूल निवास के संबंध में आज भी मतैक्य नहीं है। आर्य कहाँ से आये? तथा इनका मूल निवास कहाँ था? इस पर आज भी इतिहासकारों में अलग-अलग मत हैं। आर्य संस्कारित व्यक्तित्व का प्रतीक है। आर्यों के अंतर्गत तपोनिष्ठ ऋषि-महर्षि आदि आते हैं। वहीं दूसरी ओर अनार्य असंस्कारित व्यक्तित्व का प्रतीक है, वैदिक साहित्य में आसुरी अर्थात् राक्षसी प्रवृत्ति के अनार्य कहा गया है। विद्वानों का मत है कि आर्यों का स्थान 'सप्त-सैंधव' नामक प्रदेश था। ऋग्वेद में भी आर्यों का देश 'सप्त सैंधव' को कहा गया है। इतिहास ने मोहनजोदडो हड़प्पा सभ्यता के प्रमाण से इसी भू-भाग को सप्त सैंधव निरूपित किया हैं।

सप्त सैंधव के संबंध में यह तर्क उचित प्रतीत होता है कि यह प्रदेश 'पंजाब' है। कहा जाता है कि इस प्रदेश में कभी सात नदियाँ प्रवाहित होती थीं। इनमें से 5 नदियाँ झेलम, सतलज, चिनाब, रावी एवं सिंध आज भी अस्तित्व में हैं। शेष दो नदियाँ सरस्वती एवं दृणदृती (जिसका उल्लेख वैदिक साहित्य में है) विलुप्त हो गयी हैं। कहा जाता है कि

आर्यों द्वारा इसी प्रदेश में वेदों की रचना की गयी थी एवं इसी पावन भूमि में संस्कृति एवं सभ्यता का सृजन हुआ था। उन दिनों आर्यों की संख्या 84 लाख के आसपास थी, जो काबुल, गांधार, मानसरोवर, कैलाश, गुप्त काशी, देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, हिमगिरि, त्रिभुजी नारायण, कोसल आदि स्थानों तक फैले हुये थे। आर्य हमारे तपस्वी ऋषि, महर्षि और मुनि ही थे, जिन्होंने अरण्य, पर्वत, गुफाओं आदि में अपना निवास बनाकर चिन्तन मनन करके आध्यात्मिक विकास का पथ प्रशस्त किया ये अपने जीवन के अधिकांश भाग को ईश्वरीय चिन्तन और योग, हठयोग, राजयोग, भक्तियोग, मंत्रयोग में बिता देते थे। ये तपस्वी आर्य के रूप में माने जाते थे। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के जो 12 मानस पुत्र हैं वे ही आर्य के मूल स्तंभ हैं।

आर्यों की संस्कृति ही वैदिक संस्कृति है। रामायणकाल में आर्यों की संस्कृति इतनी सु-संस्कृत हो गयी थी कि हर क्षेत्र में इनका योगदान स्पष्ट दिखाई पड़ता था। रामायण काल में राम कथा से संबंधित अनेक ऋषि-महर्षियों का उल्लेख मिलता है जैसे महर्षि वशिष्ठ, वाल्मीकि, ऋषि भारद्वाज, विश्वामित्र, शृंगी ऋर्षि, लोमस, जमदग्नि, आदि अनेक ऋषिवर जिन्होंने अपनी तपस्या के बल पर समस्त विश्व में ज्योतिपुंज प्रकाशित किया और धरती में एक सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण कर युग-युगान्तर तक संस्कृति के बीज से भारतवर्ष को आर्य संस्कृति की जन्मभूमि कहलाने के लिये गौरवान्वित किया। आर्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये हिमालय से अमरकन्टक होते हुये छत्तीसगढ़ (कोसल प्रदेश) में सर्वप्रथम प्रवेश करने वाले अगस्त्य ऋषि थे। विंध्याचल पर्वत को लांघकर अमरकंटक से होकर (दक्षिण कोसल) छत्तीसगढ़ क्षेत्र के पर्वतीय क्षेत्र से अर्थात् उत्तरापथ से दक्षिणापथ की ओर जाने के पूर्व मार्ग में दण्डकारण्य था जहाँ से उन्होंने प्रवेश किये। दण्डकारण्य में ऋषिवर अगस्त्य द्वारा आर्य संस्कृति का बीजारोपण किया गया। उन दिनों दण्डकारण्य क्षेत्र में अनार्यों प्रभुसत्ता थी। रामायणकाल के निष्णात ऋषियों में अगस्त्य ऋषि का उल्लेख मिलता है। दण्डकारण्य क्षेत्र में अनेक ऋषियों के दर्शन करते हुये रामचन्द्र जी ने जिस अंतिम ऋषि के दर्शन किये वे अगस्त्य ऋषि थे। रामायण युग में इनकी जबरदस्त स्थिति थी। लंकापति रावण इनसे भयभीत रहते थे। फलस्वरूप इनके आश्रम में दूर-दूर तक किसी भी राक्षस आदि का प्रवेश नहीं था। राजा बाली, सुग्रीव, जामवन्त, हनुमान आदि समस्त वानर इनसे ही अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान प्राप्त करते थे। रामचंद्र जी को रावण विजय के लिये अगस्त्य जी ने दिव्य धनुष, तर्कष, बाण और तलवार दी थी।

पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि, वायु इन पाँचों तत्त्वों पर अगस्त्य जी का पूर्णाधिकार था। जो आज विभिन्न प्रकारों के रूप में जाना जाता है। राजा कुबेर के पुष्पक विमान का निर्माण अगस्त्य जी के आश्रम में हुआ था। विन्ध्य पर्वत की बढ़ती हुई ऊँचाई को इन्होंने रोक दिया था। समुद्र जल को सोखने की विधा इन्हें ज्ञात थी। नल-नील को इन्होंने सेतु निर्माण की शिक्षा दी थी। उस युग में अगस्त्य जी इतने प्रभावशाली थे कि भगवान शंकर स्वयं अगस्त्य जी से मिलने कैलाश से दण्डकारण्य आते थे। आर्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार दण्डकारण्य क्षेत्र के बाहर सुदूर दक्षिण तक करने के लिये अनेक आर्य ऋषिगण दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) के मार्ग से दण्डकारण्य के बीहड़ क्षेत्र में बस गये थे। दण्डकारण्य का प्रवेश द्वार सिहावा में शृंगी ऋषि अन्य सप्त ऋषियों के साथ निवास करते थे। कर्मकाण्ड के निष्णात पंडित कंक ऋषि का आश्रम काँकेर के समीप पर्वत पर था। जिनके नाम से काँकेर नगर का नाम पड़ा। रामायण के अनुसार रामचंद्र जी वनवास काल के समय दण्डक क्षेत्र आये थे जहाँ उन्होंने वनवास का समय बिताया था। उन दिनों यहाँ अनार्यों (राक्षसों) द्वारा ऋषि मुनि के यज्ञ हवन में विघ्न डालना एवं उत्पात मचाना एक आम बात थी किन्तु रामचंद्र जी के दण्डक क्षेत्र में प्रवेश के बाद ही उनके संहार करने से इसमें रोक लगी।

छत्तीसगढ़ में अनार्य संस्कृति का प्रादुर्भाव भी आर्य संस्कृति के साथ-साथ ही हो गया था, विशेषकर अरण्य क्षेत्रों में इनकी प्रभुत अधिक थी। छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) क्षेत्र के अंतर्गत उन दिनों बस्तर एवं सरगुजा क्षेत्र अरण्य क्षेत्र के रूप में विख्यात था, आज भी है। यह अरण्य क्षेत्र राजा दण्ड के क्षेत्राधिकार में था। जिसके कारण इसे दण्डकारण्य कहा जाता है। अतएव ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार दक्षिण दिशा में यहाँ के निवासी सत्यवन्त कहलाते थे। जो अनार्यों की एक उपजाति थी। इस ग्रंथ में यह भी उल्लेख आता है कि आन्ध्र, पुण्ड, शर्बर-पुलिन्द - स्त मुनि व जो आधे आर्य एवं आधे अनार्य थे। ये विश्वामित्र के श्राप से अनार्य हो गये थे। शबर जाति छत्तीसगढ़ में विशेषकर सरगुजा क्षेत्र में आदिम

जाति के रूप में पायी जाती है। इस प्रकार महाभारत काल में द्रविड़, उत्कल, बसवादि, अभिरक, शंकारि और कम्बोज आदि उप जातियों का उल्लेख मिलता है जिसमें कुछ जातियाँ अनार्य से संबंधित मानी जाती हैं। इन जातियों की अपनी एक संस्कृति थी। सरगुजा क्षेत्र के अंतर्गत रामगढ़ पहाड़ी की कन्दराओं एवं गुफाओं में अंकित भित्तिचित्र जिसमें वन्य पशुओं, आखेट दृश्यों, नृत्य संगीत, आमोद-प्रमोद के रेखाचित्र यदा-कदा प्राप्त होते हैं। उनकी रुचि एवं उनकी अभिव्यक्ति तथा संस्कृति का परिचायक हैं। इस प्रकार छत्तीसगढ़ क्षेत्र में आर्य-अनार्य संस्कृति के उद्‌भव, विकास, संघर्ष एवं पतन का सांस्कृतिक इतिहास मिलता है।

वैदिक काल

वैदिक काल को भारतवर्ष का 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है। भारतवर्ष में एक सु-संस्कृत समाज की परम्परा की नींव इसी युग की देन है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, एवं अथर्ववेद जैसे वैदिक साहित्य की संरचना एवं उनके अनुरूप जीवन दर्शन का अनुपम उदाहरण इस युग में मिलता है। आर्यों के वैदिक विकास की यात्रा वैदिक काल से प्रारंभ होती है। वैदिक साहित्य में इन चार वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, आरण्यक, कृति एवं संहिता आदि ग्रन्थों की रचना हुई। वैदिक साहित्य के अंतर्गत आने वाले महत्त्वपूर्ण साहित्य उपनिषदों एवं वेदों को कथा रूपक के माध्यम से सरल भाषा में लेखबद्ध किया गया। उपनिषदों की संख्या 108 बताई जाती है जिनमें प्रमुखतः ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैतरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक हैं। इन उपनिषदों में वेद के गुह्यरहस्य उद्‌घाटित होते हैं। वैदिक सभ्यता की विकास यात्रा में उत्तर भारत के साथ दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) का भू-भाग सम्मिलित था यद्यपि इस अंचल का उत्तरी भाग (महानदी और पैरी नदी का पठारी भाग) आर्यों की वैदिक सभ्यता से पूर्ण प्रभावित था जिसकी पुष्टि छत्तीसगढ़ में ऋषि-महर्षियों की कुटिया अथवा आश्रम से प्रमाणित होती है। प्रायः महर्षियों के आश्रम महानदी के तट पर होने की जानकारी मिलती है।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र वैदिक काल में उन्नत एवं आकर्षक भू-भाग के रूप में विख्यात था। अंचल की पावन सरिता, पर्वतीय शृंखलायें, सघन वनों से आच्छादित प्रदेश वैदिक काल में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था अधिकांश ऋषियों ने यहाँ के भौगोलिक वातावरण से प्रभावित होकर आश्रम बनाकर अपनी तपोभूमि के रूप में इसका विस्तार किया। वैदिक काल में छत्तीसगढ़ की महानदी नर्मदा, नदी, अमरकंटक पर्वत और दण्डकारण्य आदि वन क्षेत्र का उल्लेख मिलता है।

भारत में आर्य-संस्कृति के पोषण एवं उसके प्रचार-प्रसार के प्रथम उन्नायक ऋषिवर अगस्त्य थे जिन्होंने वैदिक काल में आर्य-संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये शृंखलायें, बीहड़ व महाकान्तार क्षेत्र को लांघकर दक्षिणापथ की यात्रा की थी। अगस्त्य ऋषि की दक्षिणापथ यात्रा के समय यह प्रसंग आता है कि जब विन्ध्याचल पर्वत निरन्तर ऊपर बढ़ने लगा तो देवताओं एवं ऋषियों ने अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की कि उसे बढ़ने से रोकें, क्योंकि यह उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ के बीच बाधा बनने जा रही है। मुनिवर अगस्त्य ऋषि ने अपने वैदिक मंत्र से विन्ध्याचल को आदेश दिया कि ठहरो! जब तक मैं दक्षिणापथ की यात्रा समाप्त करूँ, तब तक तुम यथास्थिति में रहो। अर्थात् उनके संदेश के परिपालन में पर्वतराज यथावत् हो गए। तब मुनिवर अगस्त्य ने पर्वत को पार कर अमरकंटक के रास्ते छत्तीसगढ़ में प्रवेश किया एवं जो दण्डकारण्य के रूप में विख्यात हुआ। गंगा से गोदावरी तक का कछार का पूरा क्षेत्र उन दिनों दण्डक क्षेत्र के रूप में विख्यात था। दण्डक क्षेत्र के संबंध में एक प्रमाणिक तथ्य है कि शुक्राचार्य राजा इक्ष्वाकु के तृतीय पुत्र दण्ड के गुरु थे। शुक्राचार्य जी अपनी रूपवती कन्या अरचा के पास छत्तीसगढ़ के दण्डक क्षेत्र में रहते थे। एक बार राजा दण्ड शिकार खेलते हुये शुक्राचार्य जी के आश्रम में एकाएक जा पहुँचे, उस समय शुक्राचार्य जी स्नान-ध्यान हेतु आश्रम के बाहर गये हुए थे आश्रम में उनकी सुन्दर कन्या अरचा उपस्थित थी राजा दण्ड प्यासे थे अतः उन्होंने पानी की माँग की, पानी लेकर अरचा जब उनके सामने पहुँची तो उसकी सुन्दरता से राजा दण्ड मुग्ध हो गये एवं कामातुर हो उस कन्या का वरण कर लिया। तभी शुक्राचार्य जी वहाँ पहुँचे, उन्हें इस कृत्य की जानकारी मिली तो क्रोधित होकर राजा दण्ड को उन्होंने श्राप दिया कि तेरा पूरा साम्राज्य एक आरण्य (वन) हो जाये। कहा जाता है कि उसी दिन से राजा दण्ड का समूचा दण्डक क्षेत्र अरण्य के रूप में परिवर्तित हो गया और यह क्षेत्र दण्डकारण्य कहलाने लगा।

दण्डकारण्य क्षेत्र के अंतर्गत सरगुजा का कुछ भाग भी आता है, उन दिनों सरगुजा की सुरम्य वादी में 'मैनपाट' नामक स्थान था। इस संबंध में जनश्रुति है कि मैनपाट पर सरभंजा ग्राम है जहाँ अगस्त्य ऋषि का आश्रम था। कुछ विद्वान् इसे सरभंग ऋषि का आश्रम बताते हैं। कहा जाता है कि इस स्थान पर अगस्त्य ऋषि ने तपस्वी ऋषिजनों के लिये आश्रम बनवाकर भारतीय संस्कृति का केन्द्र स्थापित किया था। जिसका वाल्मीकि रामायण में उल्लेख आता है। सरगुजा का मैनपाट नामक स्थान प्राकृतिक दृष्टि से इतना अधिक आकर्षक है कि ऐसे स्वस्थ्य वातावरण ने उन दिनों ऋषि जनों को अवश्य आकर्षित किया होगा, क्योंकि तपोभूमि के लिये एकान्त वृक्षों से आच्छादित चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ यह एक मनोरम स्थान है।

छत्तीसगढ़ की प्राचीन नदियों में 'रेण' नदी एक प्रमुख नदी है, जो सरगुजा क्षेत्र में प्रवाहित होती है। इसी नदी के तट पर देवगढ़ नामक स्थान है जहाँ प्राचीन शिवमंदिर का भग्नावशेष है। जनश्रुति के अनुसार इस नदी के किनारे ऋषि जमदग्नि की तपोभूमि थी। ऋषि जमदग्नि ने एक बार यज्ञ में आचमन के लिये नदी से जल लाने हेतु अपनी पत्नी रेणुका को आदेश दिया। ऋषि पत्नी जब जल लेने उस नदी पर गयी तो वहाँ गन्धर्व दम्पति को रतिक्रिया में संलिप्त देखकर वह मुग्ध हो गयी और वह यज्ञ के लिये पवित्र जल लाना भूल गयी। इस कृत्य से ऋषिवर क्रोधित हो उठे, उसी समय अपने पुत्रों को उनका गला काटने का आदेश दे डाला किन्तु कोई भी पुत्र माँ का गला काटने के लिये तैयार नहीं हुआ। तभी उनका एक पुत्र परशुराम इस कार्य के लिये तैयार हो गया और अपने पिता की आज्ञा का पालन किया। ऋषि ने अपने पुत्र के इस कार्य से प्रसन्न होकर उन्हें वर माँगने को कहा तब परशुराम ने अपनी माता को पुनर्जीवित करने का वर माँगा, फलस्वरूप माता पुनर्जीवित हो गयी। इस नदी को माता रेणुका के नाम पर रेण नदी होने की जनश्रुति है।

इस प्राचीन रेण नदी के तट पर देवगढ़ नामक स्थान है, यहाँ शिवजी का एक प्राचीन मंदिर है, जो भग्नावशेष स्थिति में है। इस मंदिर के संबंध में जनश्रुति है कि इस मंदिर में परशुराम जी उपासना किया करते थे। शिवजी ने उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिये थे, उन्हें शक्तिशाली होने का वर मिला था। देवगढ़ का प्राचीन मंदिर आज भी परशुराम की तपो स्थली के रूप में विद्यमान है। रामगढ़ की पहाड़ी में एक वशिष्ठ गुफा है जिसमें महर्षि वशिष्ठ के आश्रम होने की जनश्रुति है तथा रामचन्द्र जी के वनवास के समय इस क्षेत्र में, रामगढ़ की पहाड़ी पर कुछ समय व्यतीत करने के कारण पहाड़ी का नाम 'रामगढ़' होने की कथा अति प्राचीन है। किन्तु महान कवि कालिदास द्वारा रामगढ़ की पहाड़ी पर निवास कर 'मेघदूत' की रचना करने की पुष्टि इतिहासकारों ने अवश्य की है।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ क्षेत्र वन्यांचल एवं प्राकृतिक वातावरण के कारण ऋषियों के लिये आकर्षण का केन्द्र रहा होगा। यह उनके आश्रम एवं तपोभूमि के लिये उपयुक्त स्थान था। जिसकी पुष्टि जनश्रुतियों से होती है। ऋषिगणों के नाम पर स्थान आज भी विद्यमान है, जो छत्तीसगढ़ में वैदिक युग की ऋषि परम्परा का बोध कराती है।

रामायण काल

वैदिक काल के पूर्वार्द्ध से ही भारतवर्ष में आर्यों की सभ्यता एवं संस्कृति के आविर्भाव की पुष्टि तत्कालीन वैदिक साहित्य से होती है। वैदिक काल को ऋषियों का युग कहा जाता है। इस काल में ऋषि-मुनियों द्वारा भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर सर्वप्रथम आर्य-संस्कृति का प्रचार-प्रसार किये जाने की जानकारी मिलती है। उत्तर भारत में आर्य संस्कृति के विस्तारक एवं रक्षक के रूप में ऋषि विश्वामित्र का नाम सर्वोपरि है, जो उन दिनों कौशिक नाम से प्रख्यात थे। इसी क्रम में भारत की दक्षिण दिशा की ओर आर्य संस्कृति के ज्योतिपुंज लेकर आगे बढ़ने वाले ऋषि के रूप में अगस्त्य ऋषि का नाम सर्वज्ञात है, जिन्होंने आर्य संस्कृति के विस्तार एवं प्रचार-प्रसार के लिये उत्तरापथ से विन्ध्याचल पर्वत को लांघकर दक्षिणापथ की यात्रा की थी। उनके इस प्रशस्ति काल में ही रामायण युग प्रारंभ हो चुका था। उत्तरापथ

से दक्षिणापथ की ऋषि गणों की यात्रा अवधि से ही कोसल (प्राचीन छत्तीसगढ़) में रामायण काल का प्रारंभ माना जाता है। आर्य पुत्र श्री रामचंद्र जी एवं लक्ष्मणजी को साथ लेकर दक्षिणापथ की ओर जाने का गौरव महर्षि विश्वामित्र को मिला था। वहीं ऋषि अगस्त्य भी आर्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु दक्षिणापथ गये थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तराचंल और दक्षिणापथ के मार्ग पर छत्तीसगढ़ (कोसल प्रदेश) पड़ता है। अतएव छत्तीसगढ़ में उनके आगमन की पुष्टि वैदिक साहित्य से होती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार विश्वामित्र ने आर्य पुत्र श्री रामचंद्र और लक्ष्मण को उनके पिता दशरथ से माँगकर अपने साथ लेकर दक्षिणापथ की ओर यज्ञ-हवन की रक्षा हेतु असुरों का विनाश किया। वहीं ऋषि अगस्त्य ने विन्ध्याचल पर्वत को पार करके कोसल प्रदेश (छत्तीसगढ़) में प्रवेश कर दण्डकारण्य से होते हुये आर्य-संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेंतु दक्षिण भारत की यात्रा का मार्ग प्रशस्त किया था। उन दिनों छत्तीसगढ़ क्षेत्र के अंतर्गत दण्डकारण्य का अधिकांश भू-भाग था जो कोसल प्रदेश के रूप में विख्यात था। रामायण काल के कोसल (छत्तीसगढ़) की क्या भूमिका थी इसका विवेचन संक्षेप में इस प्रकार है :

रामायण में 'कोसल' शब्द का उल्लेख बार-बार आता है। कोसल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'कुशल' से हुई है जिसका अर्थ है मुदित। मुदित का अर्थ प्रसन्नता से है। कोसल शब्द की उत्पत्ति अयोध्यापति रामचंद्र की माता कौशल्या से है, तो यह निश्चित ही प्रसन्नता की बात होगी। यह तथ्य संस्कृत शब्द कुशल की व्याख्या को अधिक सारगर्भित करता है।

महाकाव्य बाल्मीकि रामायण में उल्लेख आता है कि कोसल नरेश को अयोध्या में युवराज दशरथ के राज्याभिषेक के अवसर पर आमंत्रित किया गया था।

"ततो कोसल राजा भानुमंत समुद्रधृतम्" (वाल्मीकि रामायण) राजा भानुतंतम अर्थात् भानुमंत कोसल प्रदेश में अयोध्या नरेश दशरथ के समकालीन थे। संभवतः राजकुमारी भानुमति इनकी पुत्री का नाम था, जिनका विवाह राजा दशरथ के साथ होने के पश्चात् रानी कोसल प्रदेश से होने के कारण कौशल्या रखा गया। इससे यह जानकारी मिलती है कि विवाह पश्चात् स्त्री का नाम ससुराल में परिवर्तित होने की परम्परा अति प्राचीन है। महाकवि कालिदास ने अपनी कृति 'रघुवंश' में उल्लेख किया है कि सुमात्रा की राजदूहिता थी सुमित्रा, कोसल की राजदूहिता थी रानी कौशल्या एवं कैकय राज की राजदूहिता थी रानी कैकयी। कोसल के संबंध में मल्लार (जिला बिलासपुर) उत्खनन से प्राप्त द्वितीय शताब्दी का एक सिक्का ब्राह्मी लिपि में 'मानस कोसलीय' लेखबद्ध प्राप्त हुआ है। इस सिक्के में कोसली शब्द के उत्कीर्ण होने से प्रतीत होता है कि छत्तीसगढ़ का प्राचीन नाम 'कोसल' ही था। छत्तीसगढ़ को रामायण काल में दक्षिण कोसल के नाम से सम्बोधित किया जाता था। कोसल दो भागों में विभक्त था, उत्तर कोसल एवं दक्षिण कोसल। उत्तर कोसल की राजधानी सरयू नदी के तट पर अयोध्या और श्रावस्ती थी। साहित्यिक साक्ष्यों में उत्तर कोसल के अलावा दक्षिण कोसल का उल्लेख मिलता है। जो कोसल दक्षिणापथ के मार्ग में अर्थात् प्राचीन छत्तीसगढ़ में आता था कोसल के इस भू-भाग को दक्षिण कोसल कहा जाने लगा। अवध को उत्तरापथ की ओर होने के कारण उसे उत्तर कोसल कहा जाने लगा। उत्तर कोसल कोसल महानजपद के नाम से भी संबोधित किया जाता था। मगध राज्य के समीप एक अन्य कोसल का वर्णन मिलता है, मगध अर्थात् वर्तमान बिहार के समीप का राज्य अर्थात् मध्यप्रदेश का दक्षिण पूर्वी भू-भाग छत्तीसगढ़ ही है। जिसका प्राचीन नाम दक्षिण कोसल था। ऐसा माना जाता है कि 300 ई.पू. तक दक्षिण कोसल का पृथक् क्षेत्र होने का नामोल्लेख नहीं मिलता, यह जनपद विदर्भ का भाग था। जिसका क्षेत्र वर्तमान के बरार से बड़ा है। इतिहासकार प्रो. एन.एन.डे ने अशोक के अभिलेखों में वर्णित कोसल एवं तोसली की पहचान 'कोसल' अथवा दक्षिणकोसल से की है लेकिन पुराणों में तोसल और कोसल का अलग-अलग उल्लेख मिलता है अतः प्रो. एल.एन. डे का तथ्य मान्य नहीं है। महाकाव्य रामायण में उत्तर कोसल से अलग दो और कोसलों का उल्लेख है। उनमें से एक जनपद के ऊपर, राजा भानुमंत के शासन का उल्लेख प्राप्त होता है। तीसरा कोसल अथवा काशी कोसल संभवतः देश के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित था। अन्य विवरण में काशी कोसल का उल्लेख पूर्वी दिशा के लोगों के रूप में हुआ है। संभवतः उत्तर कोसल के राजा दशरथ की पत्नी

कौशल्या परम्परानुसार दक्षिण कोसल से संबंधित थी। इस परम्परा की पुष्टि महाकवि कालिदास ने अपनी रघुवंश में की है। महाकवि कालिदास की तपोभूमि अर्थात् साधना स्थली के रूप में विख्यात छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल के अंतर्गत स्थित रामगिरि पर्वत) के रामगढ़ पर्वत में होने की शील सम्पन्न परम्परा की मधुर स्मृति अंचल के जनमानस को आज भी गौरवान्वित करती है।

छत्तीसगढ़ की जनश्रुतियों में यह प्रबल मान्यता है कि राम-शबरी का मिलन स्थल शिवरीनारायण है, जिसका प्राचीन नाम शबरीनारायण था। कहा जाता है कि ऋषि मतंग के आश्रम में एक विदुषी महिला शबरी रहा करती थी, जो वहाँ प्राचीन विद्यापीठ की प्रमुख थी। कालान्तर में राम वनवास के समय वह वृद्धावस्था में थी। उसने प्रभु राम को स्नेहपूर्वक अपने झूठे बेर चखकर इसलिये खिलाये थे कि कहीं बेर खट्टे न हों। इस प्रकार शबरी एक भिलनी थी, जिनसे प्रभु राम ने बेर ग्रहण किये थे। छत्तीसगढ़ में भील जातियों में एक शर्बर जाति पायी जाती है जो शबरी को अपना वंशज मानते हैं।

छत्तीसगढ़ के सरगुजा क्षेत्र की रामायण काल में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। महाकवि कालिदास की अमरकृति 'मेघदूत' की रचना स्थली सरगुजा स्थित रामगढ़ पर्वत को माना जाता है। रामगिरि पर्वत में रचित महाकवि कालिदास के इस ग्रंथ में विरही यक्ष ने अलका नगरी में निवास करने वाली अपनी प्रेयसी को मेघ द्वारा संदेश भेजा है, अर्थात् कालिदास का संदेश रामायण में विरही राम द्वारा लंका स्थित सीता को हनुमान के माध्यम से प्रेषित संदेश का स्मरण दिलाता है। महाकवि कालिदास शैव सम्प्रदाय के पोषक थे किन्तु उन्होंने अपने सबसे बड़े चरितग्रन्थ का प्रणयन भारतीय संस्कृति के प्रमुख संरक्षक उन्नायक 'रघु' के वंश को लेकर रघुवंश की रचना की थी। सरगुजा क्षेत्र रामायण काल में एक महत्त्वपूर्ण केन्द्रबिन्दु था। उन दिनों सरगुजा क्षेत्र को सघन अरण्य क्षेत्र के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त होने के कारण दण्डकारण्य का एक हिस्सा माना जाता है। प्राचीन साहित्यों में इसे 'झारखण्ड' भी कहा जाता है। सरगुजा जिले में अंबिकापुर से 45 कि.मी. दूर उदयपुर ग्राम के निकट 'रामगिरि पर्वत' (रामगढ़) सरगुजा के लिये ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्त्व के लिये प्रसिद्ध है। इस संबंध में जनश्रुति है कि रामचन्द्रजी ने वनवास के समय दक्षिण दिशा की ओर दण्डकारण्य जाते समय कुछ समय इसी अरण्य क्षेत्र में व्यतीत किया था। रामगिरि पर्वत में कुछ समय के लिये उनके निवास करने की जनश्रुति भी प्रचलित है। किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। रामगढ़ पर्वत की दक्षिण दिशा में 300 फुट की ऊँचाई से गिरता हुआ एक जलप्रपात है। इस जल प्रपात के नीचे एक जलकुण्ड निर्मित है। इसके संबंध में जनश्रुति है कि सीताजी ने वनवास के दिनों में प्रयागराज से आने के बाद इसी स्थान पर स्नान किया था इस कारण इस कुण्ड का नाम सीताकुण्ड पड़ गया। कुछ विद्वानों नें इसकी पुष्टि की है कि इस कुण्ड से प्रवाहित होने वाली सरिता ही प्राचीन मंदाकिनी नदी है। जिसकी पुष्टि कालीदास की अमरकृति 'मेघदूत' के प्रथम श्लोक से होती है। सरगुजा जिले के अंतर्गत पाल तहसील है, जहाँ पिपदी नामक ग्राम है, जिससे 3 कि.मी. की दूरी पर रेण नदी पर 'रक्सगंडा' जलप्रपात गिरता है। इस रक्सगंडा जलप्रपात के नामकरण के संबंध में जनश्रुति है कि रक्स अर्थात् राक्षस, गण्डा का अर्थ ढेर के शब्दों से बना रक्सगंडा अर्थात् राक्षसों का ढेर शब्द पर्याप्त है। इस संबंध में जनश्रुति है कि रामायणकाल में राक्षसों का आतंक इतना अधिक बढ़ गया था कि आसपास के क्षेत्रों में भी ऋषिगण यज्ञ हवन कार्य करने से भयभीत रहते थे। कहा जाता है कि रामचंद्र जी ने वनवास के दौरान इस स्थान का विचरण करते समय ऋषि-मुनियों के अनुरोध पर कुछ समय व्यतीत कर उनकी रक्षा हेतु राक्षसों का भारी संख्या में वध किया था एवं उनकी हड्डियों का ढेर लगा दिया था, अतः राक्षसों के ढेर को ही रक्सगंडा कहा जाता है। इस रक्सगंडा जलप्रपात के नीचे पूर्व दिशा में आयताकार पत्थरों के आसन बने हुये हैं। जिसमें उन दिनों राम सीता दोनों विराजमान हुये थे इसी कारण इसे 'रामआसन' कहा जाता है। यद्यपि इसका कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिलता है। इसी जलप्रपात के समीप 'सीता पोखरी' है जिसे सीता जी के नाम पर सीतापोखरी कहते हैं। सरगुजा जिले के सुरजपुर तहसील में भैयाथान से 30 कि.मी. दूरी पर वैदमी नामक पहाड़ी है। प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न इस पर्वत पर रामचंद्र जी का वनवास के समय आगमन होने की जनश्रुति है। वे ऋषि मुनियों की कुशल क्षेम जानने यहाँ आए थे। इसी प्रकार सरगुजा क्षेत्र में पिलखा पहाड़ नामक स्थान है। इसी पहाड़ी पर अनेक गुँफायें एवं जलकुण्ड बने हैं, इस क्षेत्र के संबंध में किंवदन्ती है कि रामचन्द्र जी ने स्वर्णमृग 'मरीच' का वध यहीं किया था। मरीच का धड़ रायगढ़ जिले के तपकरा नामक स्थान में जाकर गिरा था। सिर बेलगाँव (सीतापुर तहसील) में गिरा था। इसलिए माना

जाता हैं कि तपकरा नामक स्थान में आज भी 'स्वर्ण-कण' पाये जाते हैं। सरगुजा के सांस्कृतिक इतिहास रामायणकालीन तेजस्वी पुरुष परशुराम से भी सम्बन्धित है। ऋषि जमदग्नि की शादी इक्ष्वाकु वंश के राजा रेणु की पुत्री रेणुका के साथ हुआ था। इनसे जो पुत्र हुआ उनका नाम परशुराम था। परशुराम की माता रेणुका की तपश्चर्या की साक्षी यही पुण्य स्थली है। माता रेणुका के नाम पर प्राचीन सरिता का नामकरण आज हिरन्द, रेण, रेड़, रेणु के नाम से विख्यात है।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सरगुजा जिले के अंतर्गत ग्राम व नगरी का नामकरण कुछ इस प्रकार है जैसे श्री राम के नाम पर रामगढ़, रामपुर, रामनगर, रामगाँव, रामतीर्थ, रामानुजगंज, लक्ष्मणजी के नाम पर लक्ष्मणपुर, लखनपुर, लखनटोला, सीताजी के नाम पर सीतापुर, सीताबेंगरा, सीतानदी, सीतारामपुर, भरतजी के नाम पर भरतपुर, एवं अन्य पात्रों के नाम पर हनुमानगढ़, जनकपुर, जामवन्तपुर, लवकुशनगर, परशुरामपुर, आदि हैं। बस्तरक्षेत्र में चित्रकूट, चक्रकोट, कोन्टा के आगे भद्राचलम में पर्णकुटीर (पचंवटी) तथा खरदुशन से खरौद, राम-शबरी से शिवरीनारायण आदि नामकरण आधुनिक ग्रामों एवं नगरों का मिलता है किन्तु इस नामकरण ने रामायण की ऐतिहासिकता का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। जन मानस ने अपनी आस्था को जोड़कर अपनी कोमल भावनाओं को उनके आदर्शों में ढ़ालने के प्रयास में तथा तत्कालीन नरेशों, राजाओं ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देते हुये यहाँ के स्थलों के रामकथा का स्वरूप देने एवं इस युग के घटनाक्रम को मूर्तरूप देने के लिये स्थलों का नामकरण व धार्मिक स्मृति बनाने के लिये इन स्थानों के नाम वहाँ पर घटित घटना के अनुसार रखे और कालान्तर में किंवदन्ती तथा लोकोक्तियों में स्थान पाकर छत्तीसगढ़ को राममयी महिमा स्थली कहलाने का गौरव प्रदान किया।

महाभारत काल

छत्तीसगढ़ क्षेत्र रामायण काल में दक्षिण कोसल के नाम से अभिज्ञात था, वहीं महाभारत काल में इस भू-भाग को चेदि जनपद के नाम से प्रसिद्धि मिली थी। महाभारत काल में यह भू-भाग 'चेदि जनपद' का महत्त्वपूर्ण अंग था। यह चेदिस क्षेत्र कहलाता था। कुछ इतिहासकारों ने चेदिस से चेदिसगढ़ एवं चेदिसगढ़ का अपभ्रंश ही कालान्तर में छत्तीसगढ़ बनने का तर्क देकर इसे महाभारतकालीन नाम बतलाया है।

महाभारत की मूल कथा भारतवर्ष के कुरु नामक क्षेत्र से (कुरुक्षेत्र) पाण्डवों एवं कौरवों के मध्य घटित घटनाक्रम की विस्तृत गाथा है। इस महाभारतकाल के रचयिता महर्षि वेदव्यास जी ने मूल संस्कृत में तत्कालीन समाज की सभ्यता आचार-विचार, धर्म, नीति, शासन पद्धति, लोक व्यवहार, परम्परा, तथा समाज के कुछ ऐसे पात्रों का विश्लेषण किया है जिनमें, कुछ पात्र अन्याय, धर्म एवं लालसा के पोषक, राजनीति एवं कूटनीति में पारंगत होने का विवरण इस महाकाव्य में किया गया है जिसका प्रभार छत्तीसगढ़ क्षेत्र में उन दिनों चेदि जनपद के नाम से विख्यात था। महाभारतकाल की घटनाओं से छत्तीसगढ़ क्षेत्र कदापि अछूता नहीं रहा महाभारत काल में 'चेदि देश' के नाम से अभिज्ञात यह प्रदेश महाभारतकाल में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था। जिसमें चेदि माहिष्मति तथा विदर्भ राज्यों का वर्णन मिलता है। वहीं डाडौर क्षेत्र के नाम से सरगुजा को महाभारतकाल में जाना जाता था, बस्तर क्षेत्र महाकान्तार एवं दण्डकारण्य के नाम से उन दिनों प्रसिद्ध था।

छत्तीसगढ़ में प्रचलित जनश्रुतियों एवं जन मान्यताओं के अनुसार महाभारत काल में सिरपुर का नाम चित्रांगदपुर था। यहाँ चित्रवाहन नामक राजा राज्य करता था जिसकी पुत्री का नाम चित्रांगदा था जिसका जिसका विवाह धनुर्धारी अर्जुन से हुआ था, उनसे एक पुत्र हुआ जिसका नाम वभ्रुवाहन था। राजा वभ्रुवाहन महाभारतकाल के चेदिवंश का सुविख्यात परम शूरवीर शासक के रूप में प्रख्यात था। पाण्डववंशी इस वभ्रुवाहन की राजधानी मणिपुर थी, मणिपुर सिरपुर का महाभारतकालीन नाम होने की जानकारी जनश्रुतियों से होती है। यद्यपि सिरपुर के समीप प्राचीन स्थलों का भली-भाँति उत्खनन नहीं हो सका है। महाभारत का काल लगभग 1000 ईस्वी पूर्व अनुमानित किया जाता है। इस प्रकार सिरपुर का अस्तित्व महाभारतकाल में तथा अर्जुन से इसका संबंध होने की पुष्टि जनश्रुति से होती है। महाभारत के अनुसार चेदि राजा शिशुपाल एक शक्तिशाली राजा था, चेदि राजा शिशुपाल की सगाई विदर्भ के राजा रुक्म की बहन रुक्मणी से हुई थी। राजा शिशुपाल ने रुक्मणी हरण के समय श्री कृष्ण का तीव्र विरोध किया था। शिशुपाल की राजधानी सिरपुर

थी एवं सरईपाली क्षेत्र में शिशुपाल पर्वत स्थित है जो राजा शिशुपाल के राज्य का भू-भाग होने के कारण इस पर्वत का नाम शिशुपाल पर्वत कहा जाता है। यह कहना प्रासंगिक होगा कि छत्तीसगढ़ क्षेत्र महाभारत काल में एक महत्त्वपूर्ण गतिविधियों का केन्द्र स्थल था। यद्यपि इसका कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिलता किन्तु घटनाक्रम तथा स्थलों के नामकरण से इस अंचल की प्राचीनता की पुष्टि अवश्य होती है।

महाभारतकाल में चेदि मत्स्य अत्यंत शक्तिशाली राजा थे। उस काल में उत्तर-पश्चिम दिशा में मत्स्य संघ और दक्षिण-पूर्व में विराट संघ प्रमुख थे। विराट संघ का प्रमुख शासक वज्रदत्त था जिसकी राजधानी विराटनगर (जिला शहडोल) थी। जिला शहडोल के अंतर्गत सोहागपुर स्थित है जिसका प्राचीन नाम विराटनगर था। इस संबंध में भृगु संहिता के भूगोल खण्ड में उल्लेख मिलता है कि सोन नदी के दक्षिण भू-भाग में एक योजन (12 मील) अर्थात् 18 किलोमीटर की दूरी पर 'स' अक्षर से प्रारंभ होने वाले ग्राम में विराटेश्वर की राजधानी थी जिसके पास ही बाणगंगा का स्थान था। जिसकी पुष्टि 'स' शब्द से सोहागपुर (जिला शहडोल) नामक स्थान है। महाभारतकाल में चेदि जनपद के अंतर्गत शहडोल क्षेत्र होने के कारण प्राचीन छत्तीसगढ़ के अंतर्गत यह क्षेत्र आता था। शहडोल में आज भी विराटेश्वर का उल्लेख आता है। विराटनगर वह स्थान है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महाभारत में विराटनगर का उल्लेख आता है। विराटनगर वह स्थान है जहाँ अज्ञातवास के दौरान पाण्डवों ने इस स्थान में रहकर अज्ञातवास का एक वर्ष बिताया था। सरगुजा का डाडौर क्षेत्र उन दिनों सघन वन्यांचल के रूप में विख्यात था। इसकी सीमा इतनी अधिक थी कि शहडोल तक यह विस्तृत थी। एक किंवदन्ती है कि पाण्डवों ने अज्ञातवास के समय सरगुजा के जंगलों में विचरण करते हुये कुछ समय बिताया था। कौरवों का एक दल भी इन्हें खोजने के लिये सरगुजा के घने जंगलों में आया था। । यह कथा भी प्रचलित है कि कौरव और पाण्डवों के साथ यहाँ कि आदिम स्त्रियों से जो सन्तानें हुई हैं उन्हें कौरव और पाण्डव कहा जाने लगा। सरगुजा के घने जंगलों में आज भी कुछ आदिम जातियाँ निवास करती हैं वे अपने को कौरव-पाण्डव के वंशज बताते हैं एवं ये धनुर्विद्या में प्रवीण माने जाते हैं। इस संबंध में एक जनश्रुति है कि पाण्डव अज्ञातवास के समय सरगुजा के घने जंगलों से गुजरकर शहडोल में विराटनगर पहुँचे थे। यहाँ से ही उन्होंने दण्डकारण्य क्षेत्र में प्रवेश किया था। इस दण्डक राज्य में हिडिम्बा-भीम प्रणय होने की जनश्रुति है। महासमुंद जिले से लगभग 15-20 कि.मी. की दूरी पर भीमखोज नामक स्थान है। इस भीमखोज नामक स्थान के संबंध में जनकथा है कि यहाँ भीम की एक गुफा (खोह़) थी, यहाँ भीम एवं हिडिम्बा इस पहाड़ी की गुफा में प्रणय करते थे। इस गुफा के सामने पैर के बड़े निशान हैं, जिसे भीम का पैर के निशान ग्रामवासी मानते हैं, इसी प्रकार पैर का निशान डोंगरगढ़ की पहाड़ी पर भी बना है जिसका संबंध भीम से जोड़ते हैं। जनश्रुति है कि भीम-हिडिम्बा प्रणय के बाद इनसे जो सन्तान उत्पन हुई थी उसे मुरिया-माडिया कहा जाता है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में ये आदिम जातियाँ पायी जाती हैं, ये धनुर्विद्या मे पारंगत होते हैं तथा ये अपने को पाण्डववंशी होने का दावा करते हैं।

महाभारत के सभापर्व में (राजसूय-यज्ञ) में उल्लेख मिलता है कि पाण्डवों का एक भाई सहदेव नर्मदा की ओर बढ़ा था, उसने अर्बुक, वातराज, पुलिन्दो को हराकर विजय प्राप्त की थी। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का अश्व नर्मदा नदी को पार करके विदर्भ और विदर्भ के वेणातट (वैनगंगा नदी) पारकर महाकान्ता (छत्तीसगढ़) में आया और कोसल के राजाओं को जीता था तथा सहदेव ने वाताधिष व प्राक कोसल को जीतकर दक्षिण समुद्र से लौटकर माहिष्मत के हैहयवंशी नीलध्वज को जीता।

एवं विंध्वो महाशैल, पदोष्णीय समुद्रगा।
एवं गंगा विदमणि सौगच्छाति कोसलात्।। (महाभारत - सभापर्व)

इसका अर्थ यह हुआ कि सहदेव ने राजसूय यज्ञ के समय कोसल विजय हेतु सरगुजा के क्षेत्र में प्रवेश किया था। वन्याचल सरगुजा तत्कालीन समय में एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र स्थली था। महाभारतकालीन कुछ घटनाओं का उल्लेख लोकगीत एवं लोक साहित्य में मिलता है। इसमें आरंग के मोरध्वज राजा के यहाँ कृष्ण एवं अर्जुन का आगमन, विप्र बनकर दान की परीक्षा लेना, राजा द्वारा पुत्र को आरे से काटने की घटना से, आरंग का नामकरण होने की जनश्रुति महत्त्वपूर्ण

है। सिरपुर में अर्जुन के पुत्र वभ्रुवाहन की राजधानी, चेदिवंश के शक्तिशाली राजा शिशुपाल का सिरपुर से संबंध एवं सराईपाली क्षेत्र में पहाड़ी का नाम शिशुपाल पर्वत होना, भीमखोज से भीम का संबंध होना छत्तीसगढ़ में महाभारतकालीन घटना है। कहा जाता है कि महाभारतकाल में इस भू-भाग पर अनेकों आर्य-अनार्य शासकों का आधिपत्य था इनमें से अधिकांश राजाओं ने उस समय महाभारत के भीषण युद्ध में भाग लिया था। तत्कालीन विदर्भ के राजा रुक्म का उल्लेख इस रूप में आता है कि इसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर (पैठन) में थी, जो गोदावरी नदी के तट पर है। गंगा से गोदावरी का बेल्ट अर्थात् कछार को दण्डकारण्य कहा जाता है। दूसरे शब्दों में गोदावरी का संबंध छत्तीसगढ़ से प्राचीनकाल से है। महाभारतकाल में छत्तीसगढ़ की प्रमुख नदियों का उल्लेख आता है जिसमें चित्रोत्पला (महानदी), पलाशनी (पैरी नदी) तथा समुद्रगामिनी पयोष्ठी (जोंक नदी) जिसके तट पर महर्षियों के आश्रम होना महाभारत में आता है। उपरोक्त तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि चेदि जनपद के अंतर्गत महाभारतकाल में छत्तीसगढ़ क्षेत्र का विशेष महत्त्व रहा है। अपनी भौगोलिक संरचना के अनुरूप सघन वन, सुरम्य पर्वतमाला तथा जलप्रतापों एवं नदियों की कलकल धारा की ऋचाओं से गुंजित स्वस्थ वातावरण जिसके सान्निध्य में संस्कृति का विकास होना स्वाभाविक था। वस्तुतः महाभारतकाल में छत्तीसगढ़ एक समृद्धिशाली स्थिति में था। यह क्षेत्र महाभारतकाल से प्रभावित होने के कारण कुछ स्थलों के नाम विशेषकर सरगुजा में हस्तिनापुर, अर्जुनगढ़, रेवंतीपुर, बलरामपुर, द्वारिकानगर, पाण्डोदिहा, पाण्डरी आदि महाभारतकाल से संबंध जोड़ने की लोक मान्यता है। दूसरे शब्दों में छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक इतिहास को महाभारतकाल की घटनाओं से जोड़ें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पौराणिक काल

छत्तीसगढ़ की पौराणिक काल में क्या स्थिति थी? छत्तीसगढ़ में पौराणिक काल की घटनाओं का विवरण मिलता है अथवा नहीं इन तथ्यों की पुष्टि पौराणिक साहित्य एवं प्राचीन विवरण अवश्य मिलते हैं, क्योंकि यह भू-भाग दक्षिण कोसल के रूप में ख्याति प्राप्त था। पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र जी का ननिहाल, माता कौशल्या की जन्मभूमि इस कोसल क्षेत्र का अभिज्ञान रामायणकाल में हो चुका था। पुराणों में छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) की भौगोलिक पृष्ठभूमि का सीमांकन करने वाली प्राचीन नदियों एवं पर्वत आदि का विभिन्न नामों से उल्लेख आता है। पुराणों एवं वेदों के ज्ञान, कर्म, कर्मकाण्ड तथा पुराण संहिता में छत्तीसगढ़ का तत्कालीन समाज अत्यधिक प्रभावित था, वस्तुतः अंचल में श्रीमद्भागवत पुराण की परम्परा आज भी प्रचलित है। छत्तीसगढ़ के घर-घर में श्रीमद्भागवत पुराण एवं धार्मिक अनुष्ठान के रूप में पूजित है। पौराणिक काल में छत्तीसगढ़ की पावन भूमि पर अनेक प्रभावी ऋषि-मुनियों के निवास होने की जानकारी मिलती है। राम जन्म के लिये पुत्रेष्ठि यज्ञ करने वाले ऋषि शृंगी का निवास सिहावा पर्वत (पुराणों में शुक्तमत पर्वत) पर होने की कथा मिलती है। सिहावा पर्वत से महानदी (पुराणों में चित्रोत्पला) उद्गमित होकर छत्तीसगढ़ की जीवनदायिनी प्रमुख प्राचीन नदी के रूप में ख्याति प्राप्त कर प्रवाहित होती है। महानदी की घाटी पर विभिन्न संस्कृतियों का उद्भव हुआ था। इस कारण से इसे एक सांस्कृतिक एवं सद्भावना की प्रतीक माना जाता है। शृंगी ऋषि के साथ अन्य सप्त ऋषियों का आगमन एवं निवास होने की जानकारी यदा-कदा मिलती है। दण्डकारण्य क्षेत्र के प्रवेश द्वार काँकेर में कंक नामक कर्म-काण्डी ऋषि निवास करते थे। कालान्तर में इसी कंक ऋषि के नाम से इस स्थान का नाम काँकेर पड़ा। रामायण काल में प्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि द्वारा दण्डकारण्य जैसे महाकान्तार बीहड़ क्षेत्र में आगमन की कथा एवं उसके द्वारा आर्य-संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये विन्ध्याचल पर्वत को लांघकर छत्तीसगढ़ में प्रवेश कर दण्डक क्षेत्र से गुजर कर दक्षिण भारत में प्रवेश करने की जानकारी पौराणिक साहित्यों में मिलती है। सरगुजा जिले में ऋषि जमदग्नि की तपोभूमि होने तथा उसकी पत्नी रेणुका के नाम से रेणु नदी आज भी प्रवाहित है। जनश्रुति के अनुसार ऋषि वशिष्ठ का आश्रम सरगुजा के रामगढ़ पर्वत पर था जन-सामान्य में यह स्थान वशिष्ठ गुफा के नाम से चर्चित है। इसी जिले में शरभंग ऋषि एवं सुतीक्ष्ण ऋषि के आगमन एवं प्रवास की जानकारी जनश्रुति एवं लोक साहित्य में मिलती है। रायपुर जिले में सिरपुर के पास तुरतुरिया नामक स्थान है जहाँ प्राकृतिक झरना एवं सघन वनों से आच्छादित इस स्थान में ऋषि वाल्मीकि का आश्रम होने की जनश्रुति विख्यात है। यद्यपि इसके कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिलते हैं। इस भू-भाग में ऋषि-मुनियों का आश्रम अवश्य था,

किन्तु उनके आगमन एवं उनके विचरण करने के तथ्य अकाट्य हैं जिन्होंने इस अंचल को सु-संस्कृत कर एक सांस्कृतिक वातावरण प्रदान किया।

पौराणिक काल में इस अंचल के पर्वतों का विशेष महत्त्व रहा है। प्राचीन पर्वतों में अमरकन्टक का उल्लेख विशेषकर पद्म पुराण, मत्स्य पुराण, वायु पुराण एवं कूर्म पुराण में मिलता है। जिनकी पर्वत श्रेणियाँ छत्तीसगढ़ को सीमांकित करती हैं। भगवान शंकर ने त्रिपुरान्तक रूप में त्रिपुर राक्षस का वध किया था उसका एक भाग अमरकन्टक पर्वत में गिरने का वर्णन पद्मपुराण में उल्लेखित है। अमरकन्टक पर्वत का पुराणों में प्राचीन नाम ऋक्ष पर्वत तथा विन्ध्याचल पर्वत एवं सतपुड़ा पर्वत को पुराणों में मेकल पर्वत के रूप में अभिज्ञात किया गया है। महाकवि कालिदास ने अपनी कृति 'मेघदूत' की रचना सरगुजा स्थित रामगढ़ पर्वत पर निवास कर की थी। फलस्वरूप यह रामगिरि पर्वत के रूप में विख्यात हुआ जिसकी पुष्टि विद्वानों एवं इतिहासकारों ने की है। कालिदास ने 'मेघदूत' में अमरकन्टक पर्वत को आम्रकूट के नाम से संबोधित किया है। पुराणों में इस पर्वत को ओंकार पीठ एवं श्री कंठ बताया गया है। यह पर्वत विन्ध्य एवं सतपुड़ा का मूल होने के कारण इसका मैखल (मेकल) नाम का अभिज्ञान पौराणिक साहित्यों में मिलता है। नर्मदा नदी के इस पर्वत से उद्‌गमित होने के कारण इसे मैकलपुरी भी कहा जाता है। सरगुजा के रामगिरि पर्वत (रामगढ़) पर्वत पर 'धुपति पदै' अंकित होने का उल्लेख कालिदास ने मेघदूत में किया है अर्थात् इस पर्वत पर वनवास में रामचंद्र जी आये थे। उनके चरण कमल (पद) होने की पुष्टि कालिदास ने अपनी कृति मेघदूत में की है।

पुराणों में चित्रोत्पला के नाम से प्रख्यात प्राचीन नदी महानदी के तट पर अनेक संस्कृतियाँ उद्‌गमित होकर विस्तारित हुई थीं, फलस्वरूप इस नदी के तट पर प्राचीन ऐतिहासिक सांस्कृतिक नगरों के बसाये जाने की पुष्टि होती है। इन सांस्कृतिक नगरों में प्रमुख नगर राजिम, आरंग, सिरपुर, शिवरीनारायण, जाँजगीर, मल्हार आदि हैं। जहाँ आज भी प्राचीन मंदिर सुलभ सन्दर्भ हेतु विद्यमान हैं। इन मंदिरों के गर्भगृह में राम एवं उनके अवतारों की स्थापना इस तथ्य की पुष्टि करती है कि वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी शासकों द्वारा अपनी धर्मप्रियता के फलस्वरूप इन मंदिरों का निर्माण करवाया गया था। पाण्डुवंशी, सोमवंशी, शरभपुरीय, एवं कलचुरि काल की अवधि में परम भागवत के पोषक नरेशों के द्वारा इनकी स्थापना की जानकारी मिलती है।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में प्राप्त होने वाले अभिलेखों, ताम्रपत्रों एवं शिलालेखों से इस बात की जानकारी मिलती है कि तत्कालीन नरेश एवं शासक अपने को 'परम भागवत्' कहलाना पसंद करते थे। पाण्डुकुल के सोमवंशी नरेश एवं शासक अपने को महावैष्णव कहलाना पसंद करते थे। वैष्णव संप्रदाय के पोषक राजाओं के सिक्कों एवं अभिलेखों में अपने नाम के आगे परम भागवत लिखने की परम्परा मिलती है। पुराणों में छत्तीसगढ़ के प्राचीन नगरों का उल्लेख भी आता है। जिसमें सिरपुर को 'श्रीपुर', किसी में चित्रांगदपुर या मणिपुर के नाम से किया गया मिलता है। शिवरीनारायण मंदिर का उल्लेख ''राम अवतार चरित'' एवं 'याज्ञवल्क्य संहिता' में मिलता है। पौराणिक ग्रन्थों में राजिम का उल्लेख चन्द्रमासी नगरी के रूप में हुआ है। जहाँ चन्द्रसेन नामक राजा का राज्य था। राजा चन्द्रसेन परम वैष्णवी थे। 'ब्रह्मपुराण' में राजिम को कमल क्षेत्र कहा गया है। इस संबंध में एक उद्धरण मिलता है :-

चित्रोत्पला नदी तीरे, भारतवर्ष उत्तमे
दक्षिण कोसल देश यत्र रहना करो।।
नृप विष्णु भक्तों वंश कृत्या
श्री पार्षद।।

जिसका अर्थ यह है कि भारतवर्ष में दक्षिण कोसल देश में चित्रोत्पला (महानदी) नामक नदी के तट पर राजिवलोचन नामक क्षेत्र में विष्णु के भक्त रत्नाकर राजा ने यज्ञ करके पार्षद के समेत राजिवलोचन भगवान को वश में करके कमल क्षेत्र में स्थापित किया था।

छत्तीसगढ़ की पौराणिक नदियाँ

छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियों का इतिहास अति प्राचीन है। पुराणों में छत्तीसगढ़ की जीवनदायिनी नदियों का नामोल्लेख अलग-अलग हुआ है। किन-किन पुराणों में छत्तीसगढ़ की नदियों की पहचान की गयी है उनके पौराणिक नामकरण इस प्रकार हैं -

महानदी

महानदी छत्तीसगढ़ की प्रमुख नदी है। इस नदी का उद्गम सिहावा पर्वत है। श्रृंगी ऋषि का आश्रम इस पर्वत पर होने की ख्याति है, पौराणिक काल में इस पर्वत का नामोल्लेख इस पर्वत से निकलने वाली महानदी जिसका पौराणिक नाम चित्रोत्पला है। मार्कण्डेय पुराण में इस नदी को चित्रोत्पला एवं वायु पुराण में निलोत्पला बताया गया है। इस नदी की घाटी पर अनेक संस्कृतियों का उद्भव हुआ था। छत्तीसगढ़ को सिंचित करने वाली यह अंचल की जीवनदायिनी है। इस प्राचीन नदी के तट पर अनेक संस्कृतियों का प्रादुर्भाव हुआ एवं इस नदी के तट पर राजिम, शिवरानारायण, मल्लार, सिरपुर, आरंग, आदि प्रमुख नगर हैं। छत्तीसगढ़ की यह प्राचीन नदी सिहावा से उद्गमित होकर विभिन्न पवित्र स्थानों से प्रवाहित होकर उड़ीसा में विकराल रूप लेकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। यह छत्तीसगढ़ की संस्कृति को उड़ीसा एवं बंगाल से जोड़ती है।

संकरी नदी

यह महानदी की सहायक नदी है। इस संकरी नदी का नाम मार्कण्डेय पुराण मे पौराणिक नाम संकुली, वायु पुराण में मधुवा, मत्स्य पुराण में मुकुल तथा ब्रह्म पुराण में मधुवा के नाम से उल्लेखित है।

शिवनाथ नदी

यह दुर्ग जिले से प्रवाहित होने वाली छत्तीसगढ़ अंचल की एक महत्त्वपूर्ण नदी है। शिवनाथ नदी को वामन पुराण में शुनी नदी, गरुड़ पुराण एवं शिव पुराण में इस प्राचीन नदी को 'शिवा नदी' के नाम से संबोधित किया गया है।

खारुन नदी

तान्दुला जलाशय जिला दुर्ग से उद्गमित प्राचीन नदी खारुन का पुराणों में विशेष महत्त्व रहा है। यह नदी रायपुर जिले से प्रवाहित होकर राजधानी की जीवनदायिनी नदी है। यह नदी सोमनाथ के पास शिवनाथ नदी से मिलती है। खारुन नदी को मार्कण्डेय पुराण में कूर्म तथा वायु पुराण एवं ब्रह्म पुराण में इसे क्रमा नदी के नाम से संबोधित किया गया है।

माण्ड नदी

यह नदी जशपुर जिले के जशपुरनगर नामक स्थान से निकलती है। उदयपुर (जिला सरगुजा) एवं रायगढ़ जिले से प्रवाहित होकर महानदी से मिलती है। माण्ड नदी का पौराणिक नाम मार्कण्डेय पुराण, वायु पुराण, ब्रह्म पुराण, एवं मत्स्य पुराण में 'मंदगा' नदी के नाम से संबोधित किया गया है।

सुक्तेल नदी

देवभोग क्षेत्र में छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसा की सीमावर्ती से प्रवाहित सुक्तेल नदी है। इस सुक्तेल नदी का पौराणिक नाम मार्कण्डेय पुराण में कुमारी, वायु पुराण में सुकुमारी तथा ब्रह्म पुराण एवं मत्स्य पुराण में इसका नाम सकुमारी मिलता है।

अरपा नदी

अरपा नदी बिलासपुर जिले की प्रमुख नदी है। यह महानदी की सहायक नदी है। छत्तीसगढ़ की प्राचीन नदियों

में यह प्रमुख नदी है। इस अरपा नदी का पौराणिक नाम मार्कण्डेय पुराण में कुपा तथा वायु पुराण एवं ब्रह्म पुराण में, मत्स्य पुराण में 'कृपा' के नाम से मिलता है।

पैरी नदी

यह महानदी की सहायक नदी है। छत्तीसगढ़ की प्राचीन नदियों में इसका प्रमुख स्थान है। इसी नदी के तट पर गरियाबंद के पास सिरकट्टी नामक ग्राम के पास 'प्राचीन नदी बंदरगाह' (डाकयार्ड) बना हुआ है जिसका अवशेष आज भी विद्यमान है। इस नदी के तट पर रोमन सिक्के मिलने से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि पाँचवी-छठीं शती ईस्वी में छत्तीसगढ़ से रोम के व्यापारिक संबंध थे। यह नदी राजिम के पास महानदी से मिलती है और महानदी जो आगे चलकर उड़ीसा होकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है इस प्रकार इसी माध्यम से छत्तीसगढ़ से रोम का व्यापार होने की जानकारी मिलती है। पैरी नदी के समीप आज भी मालगाँव है जहाँ उन दिनों माल आदि इसी स्थान पर संरक्षित करने की पुष्टि करता है। मार्कण्डेय पुराण, कुर्म पुराण में इस नदी का नाम पलाशनी नदी, ब्रह्म पुराण में एवं मत्स्य पुराण में पाशिनी नदी के नाम से इसका सम्बोधन मिलता है।

जोंक नदी

यह नदी उड़ीसा के कालाहंडी जिले के नवापारा तहसील में स्थित गौरागढ़ पहाड़ के समीप सोनाकेश से निकलती है। यह रायपुर तथा बिलासपुर जिले की पूर्वी सीमा एवं बिलासपुर जिले के शिवरीनारायण के निकट महानदी में मिल जाती है। ब्रह्म पुराण में इस नदी का नाम सोंख एवं मत्स्य पुराण मे जोंख नाम से संबोधित किया गया है।

तेल नदी

इस नदी का उल्लेख विभिन्न पुराणों में मलय पर्वत से निकलने वाली नदी के रूप में किया गया है। महाभारत में इसका नाम उत्पलावती तथा उत्पला के नाम से मिलता है। वायु पुराण में इसका नाम उत्पला है। सोनपुर के पास यह महानदी में मिलती है।

सोण्डुर नदी

यह पैरी नदी की सहायक नदी है। सोण्डुर नदी का नाम वामन पुराण में सुदामा एवं ब्रह्मपुराण में इसका सोण्ड नाम मिलता है। शुक्तिमत पर्वत से निकलने वाली यह नदी राजिम के पास पैरी नदी से मिलती है।

सोननदी

इस नदी का नाम भीमसेन द्वितीय के आरंग ताम्रपत्र में स्वर्ण नदी के नाम से अभिज्ञात किया गया है। पुराणों में इसकी सुवर्ण नदी के रूप में पहचान की गयी है।

रेण नदी

यह सरगुजा की जीवनदायिनी नदी है। इस नदी को अंचल की प्राचीन नदियों में गिना जाता है। इस नदी के तट पर ऋषि जमदग्नि के आश्रम होने एवं तपोभूमि होने का उल्लेख प्राचीन साहित्यों में हुआ है। ऋषि जमदग्नि की पत्नी एवं परशुराम जी की माताश्री रेणुका से ही इस नदी का नाम 'रेण' पड़ा। इसे कालान्तर में रिहन्द, एवं रेड़ नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इस नदी का ब्रह्म पुराण में 'रेणु' एवं मत्स्य पुराण में 'रेणुका' नाम होने का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि छत्तीसगढ़ की पावन भूमि का पौराणिक काल में विशेष महत्त्व था। पौराणिक युग में यह सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु था। प्राकृतिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि एवं अंचल की सुसंस्कृत सभ्यता इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि छत्तीसगढ़ पौराणिक संस्कृति में रचा-बसा था।

खण्ड-2 आद्य इतिहास

अध्याय 7

छत्तीसगढ़ के विभिन्न राजवंशों का राजनैतिक इतिहास

(द्वितीय शती ईस्वी से चौदहवीं शती ईस्वी तक)

छत्तीसगढ़ जिसका प्राचीन नाम दक्षिण कोसल है। यह भू-भाग प्राचीनकाल से विभिन्न संस्कृतियों एवं राजवंशों की जन्मस्थली एवं कर्मस्थली रहा है। यहाँ अनेक संस्कृतियों का प्रादुर्भाव, उत्थान-पतन, संघर्ष की ऐतिहासिक गाथा, उनकी प्राचीन कलाकृति, अभिलेख, सिक्के एवं धरोहर आदि से मिलती है। छत्तीसगढ़ का राजनैतिक इतिहास द्वितीय शती ईस्वी पूर्व के आसपास होता है। यद्यपि इस काल के राजवंशों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है तथापि द्वितीय शती ई. से चौदहवीं शती ई. के मध्य यह क्षेत्र पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर भारत की साम्राज्यवादी शक्तियों के कभी प्रत्यक्ष अधिकार क्षेत्र में और कभी प्रभाव क्षेत्र में रहा है। इसी क्रम में सर्वप्रथम मौर्यकाल, सातवाहन काल, चेदि राजवंश, पुनः सातवाहन एवं वाकाटक राजवंश, गुप्त राजवंश एवं पुनः वाकाटकों के प्रभाव क्षेत्र में आने की जानकारी ज्ञात स्रोतों से मिलती है।

मौर्यकाल

भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास मौर्यकाल का विशेष महत्त्व रहा है। मौर्य साम्राज्य का अभ्युदय भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। भारत की तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में राजनीति के रंगमंच पर चन्द्रगुप्त मौर्य का पदार्पण हुआ था, एवं सर्वप्रथम उन्होंने भारत में राजनैतिक एकता स्थापित की थी। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के शासनकाल में दो महान शासक हुये थे चन्द्रगुप्त मौर्य एवं दूसरे सम्राट अशोक इन दोनों के कार्यकाल में मौर्य साम्राज्य ने पूरे भारतवर्ष में विस्तार पाया तथा सांस्कृतिक एवं धार्मिक सहिष्णुता का संदेश फैलाया, फलस्वरूप सांस्कृतिक गतिविधियाँ सर्वत्र भारतवर्ष में प्रारंभ हुईं। कलात्मक कलाकृतियों का निर्माण, भवन, प्रासाद, की अनुपम वास्तुकला तथा साँस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना होने लगी। छत्तीसगढ़ क्षेत्र इससे अछूता नहीं रहा, मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत यह क्षेत्र था। इसका प्रमाण मौर्यकालीन धरोहर की उपलब्धि है।

छत्तीसगढ़ का पौराणिक नाम दक्षिण कोसल था। पुराणों में दक्षिण कोसल के कुछ नरेशों का उल्लेख अवश्य मिलता है किन्तु इस आधार पर छत्तीसगढ़ के राजनैतिक इतिहास को शृंखलाबद्ध करना संभव नहीं है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि छत्तीसगढ़ का प्रान्त नन्दों और मौर्यों के विस्तृत साम्राज्य के अंतर्गत था। छठी शती ईस्वी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने दक्षिण कोसल क्षेत्र में स्थित सिरपुर की यात्रा की। उन्होंने अपनी पुस्तक यात्रा वृत्तान्त में उल्लेख किया है कि राजा अशोक ने दक्षिण कोसल की राजधानी में स्तूप तथा अन्य ईमारतों का निर्माण कराया था। चीनी यात्री के उपरोक्त कथन के अनुसार अशोक का एक लघु धर्मलेख जबलपुर के निकट रूपनाथ में आज भी विद्यमान है। यद्यपि अभी हाल ही में मई 2003 में सिरपुर की खुदाई से बौद्ध विहार एवं बुद्ध प्रतिमायें, शिलालेख एवं बौद्धकालीन नायिका की प्रतिमायें एवं सिक्के आदि प्रकाश में आये हैं तथा उत्खनन कार्य सिरपुर में चल रहा है। अशोक के द्वारा बताया गया

स्तूप भी आगे के उत्खनन में प्रकाश में आने की प्रबल संभावना है। अशोक के समय के दो भित्ति लेख सरगुजा जिले में लक्ष्मणपुर के निकट रामगढ़ की सीताबेंगरा और जोगीमारा नामक गुफाओं में पाये गये हैं। सीताबेंगरा गुफा प्राचीन नाट्यशाला के रूप में आज भी विश्वविख्यात हैं। यहाँ पाये गये उत्कीर्ण लेख प्राकृत लिपि में लिपिबद्ध हैं। इन लेखों का विषय न तो धार्मिक है और न ही राजनैतिक किन्तु वे किसी सुतनुका नामक देवदासी और उसके प्रेमी कलाकार देवदत्त से संबंधित हैं। इन पुरातात्वीय प्रमाणों के अलावा नन्द-मौर्यकाल के चाँदी के सिक्के रायपुर जिले के तारापुर तथा बिलासपुर जिले में अकलतरा के आसपास पाये गये हैं। प्रो. बालचंद जैन के अनुसार इन मृण्य सिक्कों में से ठठारी में प्राप्त सिक्के महत्त्वपूर्ण एवं रूप्य मापक सिक्के हैं।

मौर्य काल में बौद्धधर्म का विस्तार हुआ। मौर्यकालीन नरेश इस धर्म के पोषक ही नहीं, अनुयायी भी थे। उन्होंने इस धर्म के प्रचार-प्रसार एवं विस्तार के लिये विशेष प्रयास किये। बिहार बौद्ध धर्म का संस्थापक स्थल होने के साथ ही मौर्य साम्राज्य का केन्द्र स्थल था पाटलीपुत्र। सम्राट अशोक ने पाटलिपुत्र में राजधानी स्थापित कर मौर्य साम्राज्य का विस्तार किया था। बिहार का सीमावर्ती क्षेत्र दक्षिण कोसल का भू-भाग सरगुजा भी मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। मौर्य संस्कृति का प्रभाव सरगुजा में पड़ना स्वाभाविक था। सरगुजा में स्थित रामगढ़, रामगढ़ के पास 'अशोक का लाट' प्राप्त हुआ है, जो छत्तीसगढ़ में मौर्य साम्राज्य होने का परिचायक है।

मौर्यकाल में गुफा निर्माण की परम्परा थी। गुफा का इतिहास बौद्धमत के धार्मिक सिद्धान्तों से घनिष्ठ संबंध रखता है। तीसरी शती ईस्वी में मौर्य सम्राट अशोक के बौद्ध संघ में प्रवेश करने पर हीनयानों द्वारा पूजित प्रतीकों को स्थान दिया गया था। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि बिहार प्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला 'गया' है जो बौद्ध गया के नाम से प्रसिद्ध है। इस जिले में नागार्जुनी पहाड़ियों की चट्टानों को काटकर निवास के प्रयोजन के लिए गुफाओं को निर्मित कर सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को दान दिया गया था। सम्राट अशोक के पश्चात् उनके अनुयायी सुप्रिय तथा दशरथ द्वारा नागार्जुनी पर्वत में गुफा बनवाकर आजीविक साधुओं को दान दिया गया था।

मौर्यकाल में छत्तीसगढ़ क्षेत्र के अंतर्गत वास्तु परम्परा के अनुसार गुफाओं की निर्माण शृंखला में सरगुजा जिले में रामगढ़ पहाड़ी पर दो गुफाएँ सीताबेंगरा एवं जोगीमारा गुफा के रूप में प्रख्यात है। इन दोनों गुफाओं में अंकित लिपि मौर्यकालीन प्रतीत होती है। वास्तुकला के आधार पर इन गुफाओं को गुप्तकालीन कहा जा सकता है। उत्तर मौर्यकालीन शासकों द्वारा दूसरी-तीसरी शती ईस्वी में इन्हें बनवाया गया था। मौर्यकाल में बनी ये गुफायें इस बात को प्रमाणित करती हैं कि सर्वप्रथम बिहार की उपयोगिता प्रमुख समझकर खुदाई की गयी थी। इन बौद्ध विहारों में भिक्षु-भिक्षुणियाँ रहती थीं। इनके लिये आचार संबंधी नियम प्रतिपादित किये गये थे। जो बौद्ध साहित्य, त्रिपिटक से संबंधित थे जिनका पालन आवश्यक था, कतिपय अपराध ऐसे हैं जिनके करने से भिक्षु-भिक्षुणियाँ पतित हो जाते थे, ऐसे अपराध करने वाले भिक्षु-भिक्षुणियों को संघ के सम्मुख किया जाता था। इसी प्रसंग में सरगुजा स्थित सीताबेंगरा गुफा में उद्धृत क्षेत्र जिसमें देवदासी सुतनुका का उदाहरण उल्लेखनीय है। जो छत्तीसगढ़ में मौर्ययुगीन सामाजिक इतिहास का अनुपम उदाहरण है।

सातवाहन काल

भारतवर्ष में मौर्य साम्राज्य का पतन होते ही मगध का आधिपत्य मौर्यों के उत्तराधिकारी शुंगों को प्राप्त हो गया। कलिंग में चेदिवंश का उदय हुआ, दक्षिणापथ में सातवाहन समृद्ध हुये, इधर पश्मिोत्तर प्रदेशों में यवनों के पैर जमने लगे थे। पुष्यमित्र शुंग के राज्यकाल में पाटलीपुत्र पर यवनों के हमले हुये थे किन्तु वे वहाँ से खदेड़ दिये गये। इन यवनों में मिलिन्द या मेनाण्डर नामक राजा के ताम्बे के सिक्के बालाघाट जिले में प्राप्त हुये हैं। ऐसा माना जाता है कि प्राचीनकालीन ताम्बे के सिक्के इन्हीं स्थानों में पाये जाते हैं। यद्यपि इन सिक्कों की प्राप्ति से यह प्रमाणित नहीं होता कि इस भू-भाग में यवनों का साम्राज्य विस्तार था। सातवाहन वंश के नृपति अपने को दक्षिणापथपति कहते थे। उनकी राजधानी प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठन) में थी। सिसुक सातवाहनों का प्रथम राजा था। इस वंश में अनेक प्रतापी नरेश हुये जिन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। प्रथम शातकर्णि के राज्यकाल में सातवाहनों का विस्तार डाहल प्रदेश तक हो गया और त्रिपुरी उनके

अधिकार में था। गौतमी पुत्र शातकर्णि के क्षेत्र में होने वाले राजाओं में से एक आपीलक भी था। आपीलक का ताम्बे का सिक्का रायगढ़ के पास प्राप्त हुआ है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपनी पुस्तक "यात्रा वृतान्त" में दक्षिण कोसल में सातवाहनों के राज्य के संबंध में उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन दक्षिण कोसल की राजधानी के निकट के एक विहार में निवास करता था और उसके समय में कोसल का राजा कोई सातवाहनवंशीय था। चीनी यात्री ह्वेनसांग के कथन की पुष्टि बिलासपुर संभाग, चाँपा-जाँजगीर जिले के अंतर्गत सक्ती तहसील में गुंजी (ऋषभतीर्थ) में प्राप्त शिलालेख से भी होती है। जिसमें सातवाहन राजा कुमारवरदत्त का उल्लेख है। प्राकृत भाषा में लिखित इस शिलालेख को दूसरी-तीसरी शती ईस्वी का कहा जाता है। सातवाहन काल में निर्मित पाषाण प्रतिमा बिलासपुर जिले से प्राप्त हुई है एवं बिलासपुर जिले में स्थित किरारीधोड़ी नामक ग्राम से एक प्राचीन काष्ठ स्तंभ लेख प्राप्त हुआ है जिसमें तत्कालीन राज्य कर्मचारियों के पदनामों का उल्लेख है। सातवाहन काल में छत्तीसगढ़ एक प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र के रूप में स्थापित होने की जानकारी मिलती है। उन दिनों भारत से रोम का व्यापारिक संबंध था। रोम के सिक्के बिलासपुर जिले में महानदी के तट पर अकसर प्राप्त होते हैं। गरियाबंद के पास प्रवाहित नदी पैरी नदी में बना प्राचीन नदी बंदरगाह इस बात की पुष्टि करता है कि उन दिनों छत्तीसगढ़ का व्यापार भारत के अन्य प्रदेशों से ही नहीं अपितु विदेशों में रोम जैसे देशों से भी व्यापारिक संबंध था। बिलासपुर जिले का मल्हार क्षेत्र उन दिनों एक समृद्धशाली नगर के रूप में विख्यात था। बिलासपुर जिले में कुषाणों के भी सिक्के मिले हैं, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कुषाणों से व्यापारिक संबंध था अथवा उनका साम्राज्य विस्तार छत्तीसगढ़ तक था।

सातवाहनों के राजवंश का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है कि सातवाहन राजवंश की गद्दी पर पुलुमावि प्रथम के शासनकाल के पश्चात् महत्त्वाकांक्षी शासक गौतमी पुत्र सातकर्णि आसीन हुये। उसने अपने पूर्वजों के पदचिह्नों पर चलकर साम्राज्य का विस्तार किया। गौतमी पुत्र सातकर्णि के पश्चात् उसके पुत्र वशिष्ठ पुत्र पुलुमावि के समय तक गौतमीपुत्र सातकर्णि का साम्राज्य था। माता गौतमी बलश्री ने नासिक गुफा अभिलेख अपने पौत्र वशिष्ठ पुत्र पुलुमावि के उन्नीसवें राज्य वर्ष में उत्कीर्ण कराया था। वशिष्ठ पुत्र पुलुमावि के पश्चात् सातवाहन वंश के छह और शासक हुये, किन्तु ईस्वी शती द्वितीय के अंत तक क्रमशः सातवाहन राज्यकाल का प्रभाव धीरे-धीरे समाप्त हो गया था। यद्यपि छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सातवाहनों का प्रभाव लम्बे समय तक रहा जिसकी पुष्टि सातवाहन कालीन भाषा लिपि, अभिलेख एवं सिक्कों से भी होती है। इनमें प्रमुख है बिलासपुर जिले के अंतर्गत ग्राम किरारीधोड़ी से प्राप्त किरारी का 'काष्ठ स्तंभ लेख' जो दूसरी-तीसरी शती ईस्वी का है। जिसमें राजकीय अधिकारियों के पदनामों का उल्लेख है। इसी प्रकार मल्हार के समीप स्थित बुढ़ीखार मूर्तिलेख में प्रजापति नामक स्त्री द्वारा दिये गये दान का उल्लेख है यह हरिहर मूर्ति प्रथम शती ईस्वी की छत्तीसगढ़ की सबसे प्राचीन मूर्ति मानी जाती है। इसी प्रकार गुन्जी नामक स्थान जो सक्ती तहसील जिला जाँजगीर के अंतर्गत है, यहाँ से प्राप्त गुंजी (ऋषभतीर्थ) शिलालेख में सातवाहनकालीन राजा कुमारवरदत्त द्वारा गो-दान देने का उल्लेख है। इसके अलावा सरगुजा (रामगढ़ पहाड़ी) मल्लार क्षेत्र में सातवाहनकालीन लेख आदि मिले हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सातवाहन साम्राज्य का प्रथम स्थान है एवं छत्तीसगढ़ क्षेत्र में इनका गौरवशाली इतिहास रहा है।

चेदि-राजवंश

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में द्वितीय शती ईस्वी से चौथी शती ईस्वी के मध्य कलिंग के चेदि राजवंश का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इस चेदिवंश के प्रतापी शासक खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख में उल्लेख आया है कि महाराजा खारवेल ने अपने दूसरे वर्ष में चतुरंगिणी सेना भेजकर पश्चिम में कन्हवेणा (कृष्णा नदी) पहुँचकर असिक (अश्मक) नगर को संत्रस्त किया उस समय वहाँ का शासक सातकर्णि था। यद्यपि सातवाहन शासकों में सातकणि का नाम मिलता है। सातवाहन शासकों में शातकर्णि नाम के तीन शासकों का नाम मिलता है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र सातकर्णि प्रथम के प्रभाव क्षेत्र में था इस अवधि में खारवेल ने अपने विजय अभियान के समय दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) के पश्चिम में स्थित असिक (अश्मक) को विजित किया तो कलिंग एवं अस्मक के मध्य में स्थित छत्तीसगढ़ क्षेत्र संभवतः उनके प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आ गया था। इस प्रकार चेदिवंश का छत्तीसगढ़ में प्रभाव होने की जानकारी मिलती है। चेदि राजवंश का उल्लेख पुराणों एवं महाकाव्यों में

मिलता है। चेदि राज्य के संबंध में महाभारत के आदिपर्व में विवरण मिलता है कि चेदि राज्य की राजधानी विन्ध्य क्षेत्र में शुक्तिमती नदी के किनारे के तट पर स्थित शुक्तिमतीपुरी थी। इसकी पहचान इतिहासकारों ने महानदी की सहायक नदी सुक्तेल नदी से की है। यह सुक्तेल नदी पूर्वी दक्षिण कोसल क्षेत्र में प्रवाहित होती है। चेटीय जातक एवं बसंत जातक में सोक्तीमती नगर का उल्लेख मिलता है। जिसे तेल नदी के तट पर बताया गया है। तेल नदी उड़ीसा एवं छत्तीसगढ़ की सीमावर्ती नदी है जो देवभोग क्षेत्र में प्रवाहित होती है। इस प्रकार छत्तीसगढ़ क्षेत्र में शक्तिशाली चेदी वंश के शासक खारवेल का साम्राज्य विस्तार होने की जानकारी मिलती है। संभवतः खारवेल की मृत्यु के बाद अयोग्य उत्तराधिकारी के कारण यह क्षेत्र चेदिवंश के प्रभाव से मुक्त होकर पुनः सातवाहनों के प्रभाव में आ गया था।

वाकाटक-गुप्तकाल

सातवाहनों का राज्यकाल तीसरी शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में शक्तिहीन होने के कारण पतन की ओर अग्रसर हो गया था। वाकाटकों का प्रभाव बढ़ने लगा, वाकाटकों अपना राज्य स्थापित किया। इस राजवंश का प्रथम शासक विन्ध्यशक्ति हुआ। कुछ इतिहासकार इसे बुन्देलखण्ड से आना बताते हैं। किन्तु इन्होंने राज्य का विस्तार किया और नागपुर के समीप के प्रदेश (आंध्रप्रदेश) में पहुँचे और वहाँ इन्होंने अपनी राजधानी स्थापित की। वाकाटक राजवंश के प्रथम शासक विन्ध्यशक्ति के बाद उसका प्रथम पुत्र प्रवरसेन राजा बना था। उक्त शासक के कार्यकाल में वाकाटकों का साम्राज्य बुन्देलखण्ड से आन्ध्रप्रदेश तक विस्तृत हो गया था। इतिहासकार वा. वि. मिराशी के मतानुसार दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) में प्रथम प्रवरसेन का तीसरा पुत्र राज्य करता था। किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण कहीं नहीं मिलता। यह जानकारी अवश्य मिलती है कि योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में प्रथम प्रवरसेन के पश्चात् वाकाटक शासन छिन्न-भिन्न हो गया था।

ज्ञात स्रोतों के अनुसार वाकाटक के समकालीन गुप्तकालीन राजा महेन्द्र ने अपने समकालीन व्याघ्रराज के साथ वाकाटकों की अधीनता स्वीकार की थी और उन्हें कर भार देता था। समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति में यह स्पष्ट है कि उस गुप्त किलीन सम्राट ने इन दोनों राजाओं को स्वतंत्र राजाओं के रूप में पराजित किया था न किसी अन्य माण्डलिक के रूप में। किन्तु यह सत्य है कि पश्चात्कालीन वाकाटक राजाओं के राज्य काल में कोसल प्रदेश पर आक्रमण हुये जिनका प्रभाव कभी स्थायी नहीं रहा। अतः छत्तीसगढ़ के इतिहास में वाकाटकों के राजवंश अथवा कार्यकाल की अवधि का कोई स्पष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। भारतवर्ष में स्वर्ण-युग के नाम से इतिहास में चर्चित 'गुप्तकाल' का प्रभाव बढ़ने लगा। मगध के गुप्तकाल का प्रभाव छत्तीसगढ़ पर उस समय पड़ा जब स्कन्दगुप्त ने आर्यावर्त के राजाओं को जीतकर दक्षिणापथ की विजय यात्रा की थी। गुप्तकालीन सम्राट समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ यात्रा के समय छत्तीसगढ़ में महेन्द्र नामक एक राजा राज्य करता था। जिसके वंश आदि के बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। समुद्रगुप्त से हुये युद्ध में राजा महेन्द्र पराजित हुये थे। किन्तु विजेता ने उसका राज्य वापस कर दिया था। छत्तीसगढ़ के इतिहास में राजा महेन्द्र का उल्लेख अवश्य आता है। बस्तर और सिहावा के वन्य प्रदेश (जिसे रामायण एवं महाभारतकाल में महाकान्तार क्षेत्र कहा जाता था) के अधिपति व्याध्रराज ने भी समुद्रगुप्त के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी। तब से गुप्त साम्राज्य का प्रभाव छत्तीसगढ़ पर क्रमशः बढ़ता ही गया और छत्तीसगढ़ के राज्य कार्यों में 'गुप्त संवत' का प्रयोग होने लगा। छत्तीसगढ़ क्षेत्र (दक्षिण कोसल) का उल्लेख सर्वप्रथम समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति लेख में आया है। इस लेख की नौवीं एवं बीसवीं पंक्ति में समुद्रगुप्त द्वारा दक्षिणापथ के बारह शासकों को पराजित करने का उल्लेख आया है। समुद्रगुप्त अपनी दक्षिण भारत की दिग्विजय यात्रा के समय कोसल के साथ दक्षिण पूर्वी-घाट के बारह शासकों को पराजित करते हुये सुदूर दक्षिण के केरल राज्य तक पहुंच गया था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र समुद्रगुप्त के प्रत्यक्ष अधिकार क्षेत्र में होकर प्रभाव क्षेत्र में रहा होगा।

गुप्तवंश शासक समुद्रगुप्त के पश्चात् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य हुआ। उसने छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) को अपने प्रत्यक्ष अधिकार क्षेत्र में लाने का कोई प्रयास नहीं किया। यद्यपि कुछ स्थानों में छत्तीसगढ़ में स्थानीय शैली में निर्मित विक्रमादित्य, महेन्द्रादित्य नाम के उत्कीर्ण सिक्के बड़ी संख्या में मिले हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह क्षेत्र कुमारगुप्त के शासनकाल में पुनः एक बार गुप्त साम्राज्य के प्रत्यक्ष अधिकार क्षेत्र में चला गया होगा। छत्तीसगढ़ और उसके सीमावर्ती

क्षेत्र में गुप्तकालीन पुरावशेष प्राप्त न होने के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में गुप्त शासकों का प्रत्यक्ष अधिकार कभी नहीं रहा। छत्तीसगढ़ क्षेत्र गुप्त शासकों का प्रभाव समाप्त होने के बाद वाकाटक राजवंश के प्रत्यक्ष अधिकार में आ गया। वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन (लगभग 440 ई. से 460 शती ई.) के पुत्र पृथ्वी सेन द्वितीय के बालाघाट ताम्रपत्र से यह ज्ञात होता है कि उसने अपने पिता को कोसल तथा मेकल का स्वामी कहा है।

राजर्षितुल्य कुल-राजवंश

छत्तीसगढ़ में प्राप्त अभिलेखीय स्रोत के आधार पर पाँचवीं शती ईस्वी के आसपास राजर्षितुल्य कुलराजवंश का शासन काल होने की पुष्टि आरंग से प्राप्त ताम्रपत्र लेख से होती है। यह ताम्रपत्र लेख गुप्त संवत् 182 अथवा 282 में महाराज (द्वितीय) भीमसेन द्वारा सुवर्ण नदी (सोन नदी) से दिया गया था, और इसमें (द्वितीय) भीमसेन द्वारा हरिस्वामी और बपस्वामी को बोण्डा में स्थित भटपल्लिका नामक ग्राम दान दिये जाने का उल्लेख है। सिंह आकृति की राजमुद्रा अंकित इस ताम्रपत्र में (द्वितीय) भीमसेन और उसके पहले के पाँच पीढ़ियों के राजाओं के नामों का उल्लेख है। किन्तु इन राजाओं के बारे में कोई और सूचना नहीं मिलती है। इस ताम्रपत्र लेख के अनुसार राजर्षितुल्य कुल में सर्वप्रथम शूरा नामक राजा हुआ इसके नाम पर इसे शूरा वंश भी कहते हैं। फिर उसका पुत्र दयित, तत्पश्चात् विभीषण, प्रथम भीमसेन, उसके बाद (द्वितीय) दयित वर्मा और अंत में द्वितीय भीमसेन जो इस भू-भाग में गुप्त संवत 182 या 282 में राज्य करते थे। इनकी तिथि पर इतिहासकारों का अलग-अलग मत है। कुछ इनका कार्यकाल 182 गुप्त संवत को कुछ 282 संवत को मानते हैं। यदि गुप्त संवत 182 सही है तो राजर्षितुल्य कुल के उदय का समय ईस्वी सन की चौथी शती में है और यदि 282 गुप्त संवत को माना जाता है तो इसका काल पाँचवीं शती ईस्वी होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ़ में राजर्षितुल्य कुल वंश का राज्यकाल चौथी से पाँचवीं शती ईस्वी के मध्य रहा होगा।

नलवंश

प्राचीन छत्तीसगढ़ क्षेत्र में नलवंश का वैभवशाली साम्राज्य रहा है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में नलवंशीय अभिलेख, सिक्के एवं स्थापत्यकला के आधार पर 500 वर्षो का राज्यकाल होने की ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। नलवंशीय शासकों के ऐतिहासिक स्रोत के विवरण के अनुसार नलवंशीय अभिलेखों में भवदत्त वर्मा के ग्यारहवें वर्ष में नंदिवर्धन से जारी ऋद्धिपुर ताम्रपत्र, अर्थपति का पुष्करी से जारी केसरीबेड़ा ताम्रपत्र, स्कन्दवर्मन का पोड़ागढ़ शिलालेख, विलासतुंग का राजिम शिलालेख, भीमसेन एवं नरेन्द्र धवल का ताम्रपत्र आदि प्रमुख हैं। इन शासकों के स्वर्ण के एवं ताम्बे के सिक्के प्राप्त हुये हैं। जो नलवंश की छत्तीसगढ़ क्षेत्र में राज्यकाल की ऐतिहासिकता को दर्शाता हैं।

प्राचीन छत्तीसगढ़ क्षेत्र में चौथी शती ईस्वी से शासन करने वाले नलवंशीय राजा अपने को महाकाव्य एवं पुराणों में उल्लेखित राजा नल को अपना पूर्वज बताकर उनसे अपना संबंध जोड़ते हैं। अपने अभिलेखों में नलवंश कुलस्य, नलवंशोद्भव आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। महाभारत के नलोपाख्यान में पौराणिक नल का संबंध नैषध राज्य से माना जाता है। उनका विवाह विदर्भ की राजकुमारी दमयन्ती से होने का उल्लेख मिलता है। नैषध राज्य का महाकाव्यों में विन्ध्यपाद में स्थित राजा कोसल, मेकल, चेदि, दर्शाण और विदर्भ के साथ किया गया है। महाभारत में उल्लेख है कि राजा नल द्यूतक्रीड़ा में अपने राज्य को हार जाने के पश्चात् विन्ध्य के दक्षिण में, वन क्षेत्र में रानी दमयन्ती के साथ भटकते हुये, रानी को कोसल और विदर्भ की ओर जाने वाले पथों के संबंध में बताते हैं। पाणिनी के अष्टध्यायी में नैषध का उल्लेख हुआ है। कुछ इतिहासकार इसे पैरी नदी के उत्तर-पश्चिम दिशा में होने की बात करते हैं। तथापि अंचल की लोक-गाथा में राजा नल एवं दमयन्ती की मार्मिक कथा रची-बसी है। पुराणों में नल को इक्ष्वाकू वंश में वंशक्रम में उत्पन्न होने वाले वीरसेन का पुत्र कहा गया है। महाभारत में नल के पुत्र इन्द्रसेन और पुत्री इन्द्रसेना का उल्लेख मिलता है। इसके बाद के वंश के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है। किन्तु यहाँ यह स्पष्ट है कि चौथी शती ईस्वी के नलवंशीय शासकों का महाभारतकालीन नलवंशीय शासकों से कोई संबंध नहीं था, इन शासकों के मध्य क्रमानुगतता स्थापित करना

कदापि संभव नहीं है। अब तक के प्राप्त स्रोतों के अनुसार नलवंश का वंशानुक्रम निम्नानुसार मिलता है :-

सिसुक (290 से 330 शती ई. लगभग)

नलवंश में मूल पुरुष पौराणिक नाम नल को माना जाता है। किन्तु पौराणिक नैषध अथवा ऐतिहासिक महाकान्तार क्षेत्र छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) में पुराणों के अनुसार तीसरी शती ई. के अन्त तक चौथी शती ई. के प्रारंभ में पुरिका के शासक का नाम सिसुक मिलता है। जो वाकाटक वंश के संस्थापक विन्ध्यशक्ति के पुत्र प्रवरसेन प्रथम का समकालीन था। नल वंशीय सिसुक की राजधानी पुरिका को पुष्करी भी कहा जाता है। छत्तीसगढ़ के दक्षिण-पूर्वी भाग में यह स्थित थी।

व्याध्रराज (330 से 370 शती ईस्वी)

नलवंशीय शासकों में सिसुक के बाद द्वितीय शासक के रूप में व्याध्रराज का नाम मिलता है। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में इनके नाम का उल्लेख हुआ है। समुद्रगुप्त के समकालीन महाकान्तार क्षेत्र (छत्तीसगढ़) में शासन करने वाला शासक व्याध्रराज रहा होगा। ज्ञात स्रोतों के अनुसार व्याध्रराज का साम्राज्य क्षेत्र छत्तीसगढ़ का दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र था। ये गुप्त शासकों के अधीनस्थ शासक थे।

वृषध्वज (370 से 400 ईस्वी के लगभग)

वृषध्वज को नलवंशीय व्याध्रराज का उत्तराधिकारी माना गया है। वृषध्वज की एक मुहर भींटा से प्राप्त हुई है। इसका शासन भी गुप्त शासक के अधीन था।

वराहराज (400 से 435 ईस्वी)

नलवंश के समृद्धशाली शासकों में वराहराज का नाम प्रथम है। इन्होंने अपने शासन काल में सोने के सिक्के चलाये थे। इनके स्वर्ण सिक्के छत्तीसगढ़ में मिले हैं। वराहराज का कार्यकाल शान्तिपूर्ण था। इनका साम्राज्य छत्तीसगढ़ के दक्षिण पूर्वी भू-भाग में विस्तृत था।

भवदत्तवर्मा (435 - 465 ई. लगभग)

नल राजवंश के शासनकाल में भवदत्त वर्मा को वराहराज का उत्तराधिकारी बताया गया है। भवदत्त के द्वितीय पुत्र स्कन्दवर्मन के पोड़ागढ़ अभिलेख में भवदत्त के नाम का उल्लेख हुआ है। नलवंशीय शासक भवदत्त वर्मा ने संभवत अपनी राजधानी पुष्करी से बदलकर नन्दिवर्धन को बनायी थी। कुछ इतिहासकारों ने नन्दिवर्धन की पहचान शिवनाथ नदी के किनारे स्थित ग्राम नंदपुर से की है। कुछ ने नागपुर के समीपस्थ नगरधन को बताया है। भवदत्तवर्मा का राज्य समृद्धि एवं वैभव से परिपूर्ण था। इनके काल को नल वंश का स्वर्णकाल कहा जाता है।

अर्थपति (465 - 480 ई. लगभग)

ज्ञात स्रोतों के आधार पर भवदत्तवर्मा के बाद नलवंश का शासक अर्थपति गद्दी पर आसीन हुआ। अर्थपति का साम्राज्य विस्तार पुष्करी से कुलिया तक था जहाँ से अर्थपति के स्वर्ण सिक्के भवदत्तवर्मा, स्तंभ तथा नंदराज नामक नलवंशीय शासकों के सिक्कों के साथ प्राप्त हुआ है। अर्थपति शैवधर्म का अनुयायी था, उसे महाराज और भट्टारक जैसी उपाधियों से अलंकृत किया गया था।

स्कन्दवर्मन (480 - 515 ई. लगभग)

नलवंशीयं शासक महाराज अर्थपति के शासनकाल के पश्चात् भवदत्तवर्मा के द्वितीय पुत्र अर्थपति के छोटे स्कन्दवर्मन ने नलवंश की राजधानी सम्भाली। यह नलवंश का शक्तिशाली शासक था जिसने अपने पराक्रम से वाकाटक शासकों के द्वारा नष्ट की गयी पुष्करी नगरी का जीर्णोद्धार कराकर पूर्वजों की राजधानी को पुनर्स्थापित किया। स्कन्दवर्मन

एवं शक्तिशाली शासक थे। इनका साम्राज्य छत्तीहसगढ़ क्षेत्र के दक्षिण पूर्वी-भाग में आठवीं शती ईस्वी के मध्य रहा। इनकी मृत्यु के पश्चात् कौन उत्तराधिकारी बना इस संबंध में इतिहास मौन है।

भीमसेनदेव (900 - 935 ईस्वी)

नलवंश के शासकों में पृथ्वीव्याध्र के पश्चात् कौन शासक हुआ इसका कोई अभिलेखीय प्रमाण न मिलने के कारण नलवंश का 150 वर्षों का कोई इतिहास नहीं मिलता। ततपश्चात् भीमसेनदेव का उल्लेख नलवंशीय शासक के रूप में ज्ञात हुआ है।

नरेन्द्रधवल (935 - 960 शती ईस्वी)

नलवंश में भीमसेन के बाद नरेन्द्रधवल की अंतिम शासक के रूप में होने की जानकारी मिलती है। ज्ञात स्रोतों के आधार पर भीमसेन का उत्तराधिकारी नरेन्द्रधवल हुआ। छत्तीसगढ़ के दक्षिण पूर्वी भाग में पाण्डुवंशियों का प्रभाव बढ़ता गया जो स्वयं को त्रिकलिंगाधिकारी सोमवंशी कहते थे। नरेन्द्र धवल का उत्तराधिकारी अयोग्य होने के कारण एवं नलवंश जिसने 500 साल एकछत्र छत्तीसगढ़ में राज्य किया वह अब बिखरने लगा था। अंततः श्रेष्ठ उत्तराधिकारी के अभाव में इस वंश की सत्ता का सूर्यास्त हो गया।

शरभपुरीय राजवंश

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में पाँचवीं शती ईस्वी के मध्य में शासन करने वाले 'शरभपुरीयवंश' का गौरवशाली इतिहास मिलता है। लगभग 150 वर्षों तक छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) क्षेत्र में साम्राज्य विस्तार करने वाले, इस राजवंश के शासक कलाप्रिय थे। इन शासकों ने मंदिर वास्तु, स्थापत्यकला, शिल्पकला एवं कला को दक्षिण कोसल की कला का नाम देकर शरभपुरीय राजवंश का इतिहास रचा था। शरभपुरीय राजवंश के प्रथम शासक का नाम 'शरभ' और प्रारंभिक राजधानी का नाम उनके नाम से 'शरभपुर' मिलता है। शरभपुरीय राजवंश के शासकों ने अपने वंश की उत्पत्ति किसी पौराणिक या देवीय शक्ति नहीं माना है। शरभपुरीय वंश के प्रथम शासक नरेन्द्र ने शरभपुर ताम्रपत्र जारी कर अपने को शरभ का पुत्र बताया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस वंश का मूल-पुरुष शरभ ही था और शरभ ने ही अपने नाम से 'शरभपुर' की स्थापना की थी, जो इस वंश के शासकों की प्रारंभिक राजधानी थी। इस राजवंश के शासकों के अब तक के प्राप्त सभी अभिलेखों में केवल व्याध्रराज के मल्लार ताम्रपत्र में इसे 'अमरार्य-कुल' का कहा गया है। जिसकी पुष्टि इस राजवंश के समकालीन मेकल के पाण्डुवंशी शासक भरतबल के ब्रह्मणी तामपत्र से होती है। जिसमें भरतबल की महारानी लोकप्रकाशा को कोसल के अमरज कुल की राजकुमारी कहा गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि शरभपुरीय शासकों का संबंध अमरार्य या अमरज कुल से था। यद्यपि इस राजवंश की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों एवं इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत है तथापि शरभपुरीय राजवंश के शासकों के अभिलेखों में वंश की उत्पत्ति संबंधी विवरण का स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह अवश्य है कि इस वंश के प्रथम शासक का नाम शरभ था उसकी प्रारंभिक राजधानी का नाम शरभपुर था। इसी कारण इस राजवंश का नाम शरभपुरीय राजवंश पड़ा। शरभपुरीय राजवंश के शासकों के कालक्रम एवं उसके वंशानुक्रम निर्धारण में विद्वानों एवं इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। किन्तु महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य के पश्चात् शरभपुरीय राजवंश के मिलने वाले सिक्के एवं अभिलेख, ताम्रपत्रों के आधार पर पाँचवीं शती ईस्वी से छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) क्षेत्र के मध्य तथा पूर्वी भाग में शासन करने वाले शरभपुरीय राजवंश के शासकों का राजनैतिक इतिहास इस प्रकार है :-

शरभ (460-480 ईस्वी के लगभग)

शरभपुरीय राजवंश का अभ्युदय पाँचवीं शती ईस्वी के मध्य में दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) क्षेत्र में होने के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। इस राजवंश के प्रथम शासक 'शरभ' के नाम पर शरभवंश का नामकरण होने की जानकारी मिलती है। छत्तीसगढ़ में 150 वर्षों तक शासन करने वाले शासकों में 'शरभ' को इस राजवंश का संस्थापक माना जाता है।

एवं शक्तिशाली शासक थे। इनका साम्राज्य छत्तीहसगढ़ क्षेत्र के दक्षिण पूर्वी-भाग में आठवीं शती ईस्वी के मध्य रहा। इनकी मृत्यु के पश्चात् कौन उत्तराधिकारी बना इस संबंध में इतिहास मौन है।

भीमसेनदेव (900 - 935 ईस्वी)

नलवंश के शासकों में पृथ्वीव्याध्र के पश्चात् कौन शासक हुआ इसका कोई अभिलेखीय प्रमाण न मिलने के कारण नलवंश का 150 वर्षों का कोई इतिहास नहीं मिलता। ततपश्चात् भीमसेनदेव का उल्लेख नलवंशीय शासक के रूप में ज्ञात हुआ है।

नरेन्द्रधवल (935 - 960 शती ईस्वी)

नलवंश में भीमसेन के बाद नरेन्द्रधवल की अंतिम शासक के रूप में होने की जानकारी मिलती है। ज्ञात स्रोतों के आधार पर भीमसेन का उत्तराधिकारी नरेन्द्रधवल हुआ। छत्तीसगढ़ के दक्षिण पूर्वी भाग में पाण्डुवंशियों का प्रभाव बढ़ता गया जो स्वयं को त्रिकलिंगाधिकारी सोमवंशी कहते थे। नरेन्द्र धवल का उत्तराधिकारी अयोग्य होने के कारण एवं नलवंश जिसने 500 साल एकछत्र छत्तीसगढ़ में राज्य किया वह अब बिखरने लगा था। अंततः श्रेष्ठ उत्तराधिकारी के अभाव में इस वंश की सत्ता का सूर्यास्त हो गया।

शरभपुरीय राजवंश

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में पाँचवीं शती ईस्वी के मध्य में शासन करने वाले 'शरभपुरीयवंश' का गौरवशाली इतिहास मिलता है। लगभग 150 वर्षों तक छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) क्षेत्र में साम्राज्य विस्तार करने वाले, इस राजवंश के शासक कलाप्रिय थे। इन शासकों ने मंदिर वास्तु, स्थापत्यकला, शिल्पकला एवं कला को दक्षिण कोसल की कला का नाम देकर शरभपुरीय राजवंश का इतिहास रचा था। शरभपुरीय राजवंश के प्रथम शासक का नाम 'शरभ' और प्रारंभिक राजधानी का नाम उनके नाम से 'शरभपुर' मिलता है। शरभपुरीय राजवंश के शासकों ने अपने वंश की उत्पत्ति किसी पौराणिक या देवीय शक्ति नहीं माना है। शरभपुरीय वंश के प्रथम शासक नरेन्द्र ने शरभपुर ताम्रपत्र जारी कर अपने को शरभ का पुत्र बताया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस वंश का मूल-पुरुष शरभ ही था और शरभ ने ही अपने नाम से 'शरभपुर' की स्थापना की थी, जो इस वंश के शासकों की प्रारंभिक राजधानी थी। इस राजवंश के शासकों के अब तक के प्राप्त सभी अभिलेखों में केवल व्याध्रराज के मल्लार ताम्रपत्र में इसे 'अमरार्य-कुल' का कहा गया है। जिसकी पुष्टि इस राजवंश के समकालीन मेकल के पाण्डुवंशी शासक भरतबल के ब्रह्मणी तामपत्र से होती है। जिसमें भरतबल की महारानी लोकप्रकाशा को कोसल के अमरज कुल की राजकुमारी कहा गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि शरभपुरीय शासकों का संबंध अमरार्य या अमरज कुल से था। यद्यपि इस राजवंश की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों एवं इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत है तथापि शरभपुरीय राजवंश के शासकों के अभिलेखों में वंश की उत्पत्ति संबंधी विवरण का स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह अवश्य है कि इस वंश के प्रथम शासक का नाम शरभ था उसकी प्रारंभिक राजधानी का नाम शरभपुर था। इसी कारण इस राजवंश का नाम शरभपुरीय राजवंश पड़ा। शरभपुरीय राजवंश के शासकों के कालक्रम एवं उसके वंशानुक्रम निर्धारण में विद्वानों एवं इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। किन्तु महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य के पश्चात् शरभपुरीय राजवंश के मिलने वाले सिक्के एवं अभिलेख, ताम्रपत्रों के आधार पर पाँचवीं शती ईस्वी से छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) क्षेत्र के मध्य तथा पूर्वी भाग में शासन करने वाले शरभपुरीय राजवंश के शासकों का राजनैतिक इतिहास इस प्रकार है :-

शरभ (460-480 ईस्वी के लगभग)

शरभपुरीय राजवंश का अभ्युदय पाँचवीं शती ईस्वी के मध्य में दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) क्षेत्र में होने के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। इस राजवंश के प्रथम शासक 'शरभ' के नाम पर शरभवंश का नामकरण होने की जानकारी मिलती है। छत्तीसगढ़ में 150 वर्षों तक शासन करने वाले शासकों में 'शरभ' को इस राजवंश का संस्थापक माना जाता है।

जिसने शरभपुर नगर की स्थापना कर इसे राजधानी बनाया था। शरभ के पुत्र नरेन्द्र के 24वें राज्यवर्ष पर जारी किये गये कुरुद ताम्रपत्र के अनुसार उनके पिता शरभ इस वंश के प्रथम स्वतंत्र शासक थे। जिन्हें परम भट्टारक की उपाधि दी गयी थी इन्होंने छत्तीसगढ़ के दक्षिण-पूर्वी भू-भाग में शरभपुर नगर बसाकर राजधानी स्थापित की थी।

नरेन्द्र (480-505 ईस्वी)

शरभ के पश्चात् उनका पुत्र नरेन्द्र 480 शती ईस्वी में शरभपुरीय राजाओं की गद्दी पर आसीन हुआ। राजा नरेद्र से संबंधित कुल तीन ताम्रपत्र क्रमशः पिपरदुला (रायगढ़) से, कुरुद से एवं रॉंवा (रायपुर) से प्राप्त हुआ है। इन तीनों ताम्रपत्रों स्पष्ट होता है कि नरेन्द्र ने आधे साम्राज्य का विस्तार पूर्वी-दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) से आगे बढ़ाकर मध्य दक्षिण कोसल तक किया। शरभवंशीय शासक नरेन्द्र भागवत धर्म का पोषक था।

महेन्द्रादित्य तथा क्रमादित्य (505 से 525 ईस्वी)

ज्ञात स्रोतों के अनुसार शरभपुरीय राजवंश में नरेन्द्र के बाद महेन्द्रादित्य उत्तराधिकारी हुआ था। इस शासक के सिक्के में कहीं क्रमादित्य एवं कहीं महेन्द्रादित्य उल्लेख हुआ है। नरेन्द्र-महेन्द्रादित्य के संबंधों पर इतिहास मौन है। महेन्द्रादित्य ने स्वर्ण सिक्के प्रचलित किये थे। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में लगभग 130 स्वर्ण मुद्रायें महेन्द्रादित्य के नाम से प्राप्त हुये हैं। महेन्द्रादित्य का शासनकाल छत्तीसगढ़ में शांतिपूर्ण, वैभवशाली एवं समृद्धशाली था। इन्होंने अपने 20 वर्षीय शासनकाल में शरभ राजवंश के विस्तार पर अधिक ध्यान दिया। महेन्द्रादित्य भागवत धर्म के अनुयायी थे। छत्तीसगढ़ में वैष्णव धर्म के विस्तार में इनका अभूतपूर्व सहयोग माना जाता है।

प्रसन्नमात्र (प्रसन्न) (525 -545 ईस्वी लगभग)

महेन्द्रादित्य के पश्चात् शरभपुरीय राजवंश के शासक के रूप में प्रसन्नमात्र नाम मिलता है। इस शासक का नाम अभिलेख एवं सिक्कों में प्रसन्न अथवा प्रसन्नमात्र मिलता है। चौथी शती ईस्वी में छत्तीसगढ़ क्षेत्र में प्रचलित स्थानीय तकनीक से निर्मित स्वर्ण के सिक्के एवं रजत के सिक्के प्रसन्नमात्र के मिलते हैं। शरभपुरीय राजवंश के द्वितीय शासक जयराज ने अपने को प्रसन्नमात्र का पुत्र कहा है इससे ज्ञात होता है। कि महेन्द्रादित्य के पश्चात् प्रसन्नमात्र शरभपुरीय शासक हुआ था जिसने प्रसन्नपुर नामक स्थान में अपनी राजधानी बसायी थी। प्रसन्नमात्र के स्वर्ण सिक्कों से उनके राजत्वकाल में सम्पन्नता, समृद्धिशाली होने की जानकारी मिलती है। इनके सिक्कों में गजलक्ष्मी के चिह्न अंकित होने से भागवत धर्म का अनुयायी होने का प्रमाण मिलता है।

जयराज (545-560 शती ईस्वी)

शरभपुरीय शासक प्रसन्नमात्र के बाद उनका पुत्र जयराज गद्दी पर आसीन हुआ। जयराज के ताम्रपत्र एवं राजमुद्रा से ज्ञात होता है कि छत्तीसगढ़ में ये प्रथम शासक हुये जिन्होंने सर्वप्रथम 'महा' शब्द लेख करना प्रारंभ किया। अतः महा की महत्ता छत्तीसगढ़ में इन्हीं के काल से प्रारंभ हुयी ज्ञात होता है। जयराज ने परम भागवत का अनुयायी होने के कारण अपनी राजमुद्रा में गजलक्ष्मी का अंकन कराया था। जयराज द्वारा चार ताम्रपत्र जारी किये गये थे। इन चारों में ग्रामदान का उल्लेख मिलता है।

सुदेवराज (प्रथम) (560-580 शती ईस्वी)

सुदेवराज (प्रथम) शरभपुरीय राजवंश में जयराज के बाद उत्तराधिकारी हुआ। सुदेवराज की राजमुद्रा एवं ताम्रपत्रों में उसे प्रसन्नमात्र का पौत्र, और मानमात्र का पुत्र कहा गया है। इनके द्वारा जारी 6 ताम्रपत्रों में ग्राम दान दिये जाने का उल्लेख है। सुदेवराज (प्रथम) के ताम्रपत्रों में उसे परमभागवत महासुदेवराज कहा गया है। वैष्णव धर्म के अनुयायी होने के कारण इनके सिक्कों में गजलक्ष्मी का अंकन मिलता है। इनका साम्राज्य पूर्वी और मध्य दक्षिण कोसल क्षेत्र तक विस्तृत था।

प्रवरराज (580-590 शती ईस्वी)

सुदेवराज के पश्चात् उसका छोटा भाई प्रवरराज गद्दी पर आसीन हुआ। प्रवरराज ने ताम्रपत्र एवं राजमुद्राओं से ज्ञात होता है कि मानमात्र के पुत्र प्रवरराज स्व-पराक्रम से राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया। इन्होंने अपने ताम्रपत्र में अपने को महाप्रवरराज परमभागवत कहलाना लेख किया गया है। वैष्णव धर्म के अनुयायी होने के कारण इन्होंने भी राजमुद्रा में गजलक्ष्मी का अंकन कराया था। प्रवरराज ने अपने दो ताम्रपत्र तीसरे वर्ष में श्रीपुर (सिरपुर) से जारी कराये थे। इन्होंने छत्तीसगढ़ के पश्चिम भाग का कुछ हिस्सा जीतकर साम्राज्य का विस्तार किया था। प्रवरराज के सातवें राज्य वर्ष में शरभपुर में से जारी सिरपुर (श्रीपुर) ताम्रपत्र मिला है, जिसमें राज्य विस्तार के साथ श्रीपुर नगर के निर्माण का उल्लेख है, जो बाद में इस वंश की राजधानी बनी।

व्याघ्रराज (590-600 शती ईस्वी)

प्रवरराज के पश्चात् शरभपुरीय राजवंश का शासक प्रवरराज का छोटा भाई व्याघ्रराज हुआ। जिसकी पुष्टि प्रसन्नपुर से जारी मल्लार से प्राप्त ताम्रपत्र से होती है। जिसमें व्याघ्रराज प्रवर भट्टारक (प्रवरराज) का अनुज होना उल्लेख है। वैष्णव धर्म का अनुयायी होने के कारण इन्होंने भी अपनी राजमुद्रा में गजलक्ष्मी का अंकन कराया था। व्याघ्रराज शरभवंश का यशस्वी राजा था जिन्होंने राज्य में शांति एवं समृद्धि को अधिक महत्त्व दिया, ये 10 वर्षों तक शासन करते रहे।

सुदेवराज (द्वितीय) 600-620 शती ईस्वी)

शरभपुरीय राजवंश के अंतिम शासक के रूप में सुदेवराज (द्वितीय) का ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है। व्याघ्रराज के पश्चात् शरभ राजवंश का सुदेवराज (द्वितीय) उत्तराधिकारी बनाया गया। इन्होंने लगभग 20 वर्ष तक शासन किया। सुदेवराज (द्वितीय) के दो ताम्रपत्र कौआताल, महासमुंद तीसरे एवं सातवें वर्ष में सिरपुर से जारी हुये थे। इन ताम्रपत्रों में सुदेवराज (द्वितीय) के पिता का नाम दुर्गराज मिलता है। सुदेवराज (द्वितीय) की राजधानी सिरपुर में होने की जानकारी मिलती है। सुदेवराज (द्वितीय) वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। इनकी राजमुद्रा में गजलक्ष्मी का अंकन मिलता है। इनके कार्यकाल में महासामन्त इन्द्रबल का नाम आया है जो बाद में शरभपुरियों का योग्य उत्तराधिकारी न होने के कारण एक स्वतंत्र शासक के रूप में सिरपुर का शासक बन बैठा था। इस तरह शरभपुरीय राजवंश के साम्राज्य का सूर्यास्त हो गया।

पाण्डुवंशीय-राजवंश

प्राचीन छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) के प्रमुख राजवंशों में पाण्डुवंशीय राजवंश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस राजवंश के अभिलेखों में वंश का नाम 'पाण्डु, चन्द्र तथा सोमवंश' मिलता है। पाण्डुवंशी अपने को सोमवंशी कहते थे। किन्तु दक्षिण कोसल क्षेत्र में दसवीं शती ईस्वी में 'त्रिलंकाधिपति' उपाधि धारण करने वाले सोमवंशी शासकों की एक और शाखा मिलती है। ज्ञात स्रोतों के आधार पर प्राचीन छत्तीसगढ़ क्षेत्र में पाण्डुवंशियों का साम्राज्य 200 वर्षों तक रहा। इनकी राजधानी सिरपुर थी। सुदेवराज द्वितीय के पतन के पश्चात् ही इनका शासन स्थापित हुआ। पाण्डुवंशिय शासकों ने सकलकोसलाधिपति की भी उपाधि धारण की थी जिसके अभिलेखीय प्रमाण मिलते हैं। पाण्डुवंशीय नरेशों के अब तक सत्रह अभिलेख एवं समकालीन राजाओं के कुल सात अभिलेख मिले हैं। जिसके आधार पर इस राजवंश के शासकों के राजनैतिक इतिहास का विवरण इस प्रकार है :-

उदयन (600-620 शती ईस्वी)

पाण्डुवंश के प्रथम शासक के रूप में प्राप्त अभिलेखों के अनुसार उदयन का नाम मिलता है। इसका बेटा इन्द्रबल हुआ। भाँदक से प्राप्त भवदेव रणकेशरी अभिलेख के अनुसार इन्द्रबल के चार पुत्र थे। इनमें से चौथा भवदेव रणकेशरी अपने भाई नन्न के सामन्त के रूप में चाँदा जिले में राज्य करते थे। उसने सूर्यघोष नामक किसी राजा के द्वारा पूर्व काल में निर्मित कराये गये बुद्ध मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। इन्द्रबल का तीसरा पुत्र ईशानदेव था जिसका उल्लेख खरौद स्थित लखनेश्वर शिवमंदिर में जड़े शिलालेख से मिलता है। ईशानदेव के इस खरौद शिलालेख एवं भवदेव रणकेशरी

के भाँदक शिलालेख के अनुसार पाण्डुवंश में उदयन प्रथम राजा होने का उल्लेख है। उदयन एक पराक्रमी राजा था जिन्होंने अपने शत्रुओं को परास्त कर पाण्डुवंश की छत्तीसगढ़ में स्थापना की और यह 20 वर्षों तक शासन करते रहे। जिसकी पुष्टि पाण्डुवंशी अभिलेखों से होती है।

इन्द्रबल (620-640 शती ईस्वी)

पाण्डुवंशीय राजवंश में उदयन के पश्चात् उसका पुत्र इन्द्रबल गद्दी पर आसीन हुआ। जिसकी पुष्टि महाशिवगुप्त बालार्जुन के सिरपुर शिलालेख से होती है। इन्द्रबल के पुत्र ईशानदेव एवं पौत्र तीवरदेव के ताम्रपत्रों से भी इसकी पुष्टि होती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन्द्रबल शरभपुरीय राजवंश के अंतिम शासक सुदेवराज द्वितीय का महासामन्त था जिन्होंने सुदेवराज द्वितीय के पतन के पश्चात् अपने को सिरपुर का स्वतंत्र शासक घोषित किया था। किन्तु ज्ञात स्रोतों के आधार पर इन्द्रबल ने अपने पिता उदयन को सर्वप्रथम पाण्डुवंश की गद्दी पर बैठाया तत्पश्चात् वह स्वयं गद्दी पर आसीन हुआ।

नन्न (प्रथम) (640-660 ईस्वी)

भवदेव नरकेशरी के भाँदक अभिलेख में नन्न को पाण्डुवंश को अलंकृत करने वाला शासक कहा गया है। जिसमें इन्द्रबल के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र नन्न (प्रथम) को पाण्डुवंश का उत्तराधिकारी होना बताया है। इस प्रकार नन्न पाण्डुवंश का एक स्वतंत्र शासक था, ऐसी जानकारी मिलती है। नन्न एक पराक्रमी राजा था जिन्होंने शरभपुरीय शासकों के साम्राज्य का डटकर मुकाबला कर उनको परास्त कर पाण्डु वंश का विस्तार पश्चिमी क्षेत्र चाँदा तक किया था।

महाशिव तीवरदेव (660-680 शती ईस्वी)

पाण्डुवंशीय राजवंश के पराक्रमी शासक नन्न के पश्चात् उसका पुत्र महाशिव तीवरदेव गद्दी पर आसीन हुआ। इनसे संबंधित शिलालेख के अनुसार ये एक वीर एवं कुशल शासक थे जिन्होंने पाण्डुवंश के साम्राज्य का विस्तार किया और राज्य को सुदृढ़ किया। ये परम वैष्णवी थे। इनके राज्य में वैष्णवधर्म ने विस्तार पाया और इस धर्म की कलाकृतियों का निर्माण हुआ। तीवरदेव के तीन ताम्रपत्र प्राप्त हुये हैं उनमें राजिम, बलोदा एवं बोडा प्रमुख हैं। इन्होंने अपने ताम्रपत्रों में गरुड़ का अंकन करवाया था जो इनके परम भागवत होने का परिचायक है।

महानन्नराज (द्वितीय) (680-700 शती ईस्वी)

महाशिव तीवरदेव का पुत्र महानन्नराज (द्वितीय) को तीवरदेव का उत्तराधिकारी बनाये जाने की अभिलेखीय जानकारी सिरपुर से जारी अड़भार ताम्रपत्र से होती है। पराक्रमी तीवरदेव के समय ही उसका पुत्र महानन्नराज (द्वितीय) सकल कोसल मंडल का अधिपति हुआ। अड़भार ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि तीवरदेव द्वारा विजित उत्कल मंडल इसके अधिकार क्षेत्र से निकल गया था। जो महानन्नराज ने पुनः प्राप्त किया था। इसी कारण से इसे सकल कोसल मंडल का अधिपति कहा गया है। महानन्नराज पाण्डुवंश के यशस्वी राजा थे जिन्होंने लगभग 20 साल तक शासन किया। ये अपने पिता की तरह वैष्णव धर्म के अनुयायी थे।

चन्द्रगुप्त (700-720 ईस्वी)

पाण्डुवंशीय नरेशों में चन्द्रगुप्त का नाम आता है। महाशिव तीवरदेव का छोटा भाई चन्द्रगुप्त था, जो पाण्डुवंशीय राजवंश का उत्तराधिकारी, महानन्नराज (द्वितीय) के बाद हुआ। महाशिवबालार्जुन के काल के सिरपुर शिलालेख से ज्ञात होता है कि तीवरदेव का पुत्र महानन्नराज निःसंतान था। इसी कारण से पाण्डुवंश का उत्तराधिकारी उसका चाचा चन्द्रगुप्त को बनाया गया, जो तीवरदेव का छोटा भाई था। चन्द्रगुप्त का अब तक कोई अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु उसके पुत्र हर्षगुप्त की पत्नी महारानी वासटा के सिरपुर लक्ष्मण मंदिर शिलालेख में कहा गया है कि चन्द्रवंश अर्थात् पाण्डुवंश का एकमात्र कुशल शासक हुआ जिन्होंने शौर्य तथा पराक्रम से अपने शत्रुओं के कोष एवं कुल का दमन किया। जिसके बड़े भाई (कृष्ण के बड़े भाई बलराम) के समान थे। यह संकेत महाशिवगुप्त तीवरदेव के लिये था। चन्द्रगुप्त का राजत्वकाल

सुख, शान्ति एवं समृद्धशाली से परिपूर्ण था। वैष्णव सम्प्रदाय के पोषक इस शासक का कार्यकाल लगभग 20 वर्ष का माना जाता है।

हर्षगुप्त (720-740 ईस्वी)

पाण्डुवंशीय राजवंश में चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसके पुत्र हर्षगुप्त ने 720 ईस्वी में गद्दी सम्भाली। चन्द्रगुप्त के पुत्र हर्षगुप्त एवं उसके पुत्र महाशिवगुप्त बालार्जुन के श्रीपुर से जारी सिरपुर शिलालेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के बाद उसका पुत्र हर्षगुप्त पाण्डुवंश का उत्तराधिकारी बनाया गया। हर्षगुप्त की पत्नी महारानी वासटा देवी के लक्ष्मण मंदिर शिलालेख में कहा गया है कि सोमवंश (चन्द्रवंश) का प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त जो राजाओं का राजा था। उसका जगत प्रसिद्ध पुत्र हर्षगुप्त वैसा ही पराक्रमी एवं कुशल प्रशासक हुआ। इसी कारण मगध के अधिपति वर्मा कुल के महान राजा सूर्यवर्मा ने अपनी पुत्री (वासटा) का विवाह हर्षगुप्त से कर गौरवशाली अनुभव किया। महारानी वासटा देवी एक विदुषी एवं महान कला शिल्पी के रूप में विख्यात हुईं, इनके लक्ष्मण मंदिर शिलालेख से ज्ञात होता है कि हर्षगुप्त एक शक्तिशाली शासक था, इसी कारण मगध के शासक सूर्यवर्मा ने उसके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये। महाराजा हर्षगुप्त का आकस्मिक निधन होने के कारण महारानी वासटा देवी ने अपने स्वर्गवासी पति की स्मृति में उनके आराध्यदेव विष्णु का सनातन धाम बनवाया, यही कालान्तर में दक्षिण कोसल शैली के बने प्रसिद्ध लक्ष्मण मंदिर के रूप में विख्यात हुआ। महारानी वासटा देवी कला की पारखी थी। इनके द्वारा ईंट का मंदिर दक्षिण कोसल शैली में सिरपुर में निर्माण करवाया गया। इस लक्ष्मण मंदिर में की गयी शिल्पकारी एवं पच्चीकारी आज भी छत्तीसगढ़ में मंदिर वास्तुकला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती हुई विद्यमान है।

महाशिवगुप्त बालार्जुन (740-800 शती ईस्वी लगभग)

पाण्डुवंश के महान शासक हर्षगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र महाशिवगुप्त बालार्जुन उत्तराधिकारी हुआ। महाशिवगुप्त बालार्जुन की माता महारानी वासटा देवी के लक्ष्मण मंदिर अभिलेख में कहा गया है कि महाप्रतापी शासक हर्षगुप्त से निःसंदेह धर्मावतार दिखाई पड़ने वाला महाशिवगुप्त उत्पन्न हुआ। महाशिवगुप्त को बाल्यकाल में धर्नुविद्या में पारंगत होने के कारण 'बालार्जुन' कहा गया। बालार्जुन के द्वारा जारी ताम्रपत्र बारदुला, बोंडा, लोधिया (रायगढ़) (मल्लार) (बिलासपुर) सिरपुर (महासमुंद) अभिलेख प्राप्त हुये हैं। जिसमें विभिन्न निर्माण कार्य एवं ग्राम दान का उल्लेख है। इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि सिरपुर में महाशिवगुप्त बालार्जुन की राजधानी थी। ये एक महाप्रतापी एवं धार्मिक प्रवृत्ति के शासक थे। ये शैवधर्म के अनुयायी ही नहीं थे अपितु इन्होंने धर्म के प्रचार-प्रसार में एवं कलाकृतियों के निर्माण में सहयोग किया। अपने पूर्वजों से हटकर इन्होंने शैवधर्म को अपनाया एवं परममहेश्वर की उपाधि भी धारण की। इनके ताम्रपत्र एवं राजमुद्रा में शैवधर्म का प्रतीक चिह्न नंदी, त्रिशूल, एवं कमंडल, आदि अंकित मिलता है। महाशिवगुप्त की वासटा देवी परमभागवत की अनुयायी थी इन्होंने वैष्णव धर्म की स्थायी धरोहर बनाने के लिये सिरपुर में लक्ष्मण मंदिर का निर्माण करवाया। यहीं बालार्जुन द्वारा सिरपुर में बौद्ध विहार में रहने वाले बौद्ध भिक्षुओं के लिये ग्राम दान दिये जाने की पुष्टि होती है। महाशिवगुप्त बालार्जुन का कार्यकाल सुख, शान्ति एवं समृद्धिशाली था इन्होंने चारों दिशाओं में अपनी प्रशासकीय क्षमता से राज्य का विस्तार किया। इनके काल में शिल्पकला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला चर्मोत्कर्ष पर रही। इसी कारण से इनके युग को स्वर्णयुग के नाम से इतिहास में जाना जाता है। महाशिवगुप्त बालार्जुन की मृत्यु पश्चात् पाण्डव वंश का कोई योग्य उत्तराधिकारी न होने के कारण साम्राज्य बिखरने लगा और क्रमशः पतन की ओर अग्रसर हो गया। यद्यपि महाशिवगुप्त का पुत्र शिवनंदी एवं उसका छोटा भाई रणकेसरी था किन्तु इनके राजत्वकाल के संबंध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मेकल के पाण्डव वंश

अमरकन्टक के आसपास के क्षेत्र को प्राचीनकाल में मेकल कहा जाता था। यह भू-भाग कोसल से लगा होने के कारण इसे दक्षिण कोसल का ही क्षेत्र माना जाता रहा। पाँचवीं शती ईस्वी के पाण्डुवंश के शासक यहाँ शासन करते

रहे। ज्ञात स्रोतों के आधार पर इस शाखा के राजा भरतबल ने कोसल (प्राचीन छत्तीसगढ़) की राजकुमारी लोकप्रकाशा से विवाह किया था। इस वैवाहिक संबंध से मेकल एवं कोसल के राजाओं के संबंध मजबूत हुये थे। किन्तु यहाँ यह स्पष्ट है कि कोसल कुमारी लोकप्रकाशा का जन्म शरभपुरीय राजघराने में हुआ था। लोकप्रकाशा शरभपुरीय वंश के संस्थापक शरभ की पुत्री थी एवं नरेन्द्र की बहन थी। लोकप्रकाशा के पति भरतबल के ब्रह्मणी ताम्रपत्र लेख में महाराजा नरेन्द्र का गुणगान किया गया है। भरतबल का एक नाम इन्द्र भी मिलता है। इन्होंने महाराज की उपाधि धारण की थी। इनके पिता का नाम नागबल और माता का नाम इन्द्रभट्टारिका था। गुप्तवंश की शक्ति छत्तीसगढ़ में क्षीण हो चुकी थी। नागबल और भरतबल स्वतंत्र शासक बन बैठे। मेकल में पाण्डुवंशीय शासक भरतबल हुआ किन्तु भरतबल के बाद मेकल के पाण्डुवंश का कोई अभिलेख या ताम्रपत्र न मिलने के कारण इनके आगे के इतिहास में विराम लग गया।

सोमवंशी राजवंश

छत्तीसगढ़ के प्राचीन इतिहास में पाण्डुवंशीय राजवंश के पश्चात् नौवीं शती के मध्य में सोमवंशी राजवंश के राजत्व काल के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। सोमवंशी साम्राज्य में कोसल, कलिंग तथा मेकल का कुछ भाग आने के कारण इस भाग के अधिपति को 'त्रिकलिंगाधिपति' की पदवी से विभूषित किया गया था। अतएव छत्तीसगढ़ के इतिहास में इन्हें त्रिकलिंगाधिपति सोमवंशी राजवंश से अभिज्ञात किया गया है और ये त्रिकलिंगाधिपति कहलाये। छत्तीसगढ़ में सोमवंशियों का साम्राज्य क्षेत्र मध्य दक्षिण कोसल से धीरे-धीरे पूर्वी दक्षिण कोसल में केन्द्रित हो गया और लगभग दो सौ साल तक सोमवंशियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में शासनकाल रहा। त्रिकलिंगाधिपति सोमवंशी राजवंश के कार्यकाल, वंशक्रम एवं समकालीन शासकों के संबंध में इस वंश के शासकों द्वारा समय-समय पर जारी किये गये ताम्रपत्र, शिलालेख क्रमशः स्वर्णपुर (सोनपुर), विनीतपुर (बिनका), ययातिनगर (जगती) आदि स्थानों से प्राप्त हुये हैं। जिनके अनुसार सोमवंशी राजवंश का राजनैतिक इतिहास इस प्रकार है :-

शिवगुप्त (855-880 शती ईस्वी)

छत्तीसगढ़ के इतिहास में त्रिकलिंगाधिपति सोमवंशी राजवंश के साम्राज्य काल एवं उनके नरेशों के क्रमबद्ध इतिहास में सर्वप्रथम त्रिकलिंगाधिपति सोमवंशी शासक के रूप में शिवगुप्त का नाम मिलता है। शिवगुप्त ने पाण्डववंशी शासकों के पतन के बाद छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) के मध्य दक्षिण कोसल क्षेत्र में राज्य स्थापित किया। शिवगुप्त के पुत्र महाभवगुप्त जनमेजय प्रथम हुआ जिन्होंने अपने नाम के आगे परममहेश्वर, महाराजाधिराज, त्रिकलिंगाधिपति, परमभट्टारक आदि उपाधि का धारण किया था। इस प्रकार शिवगुप्त ने नौवीं शती ईस्वी के मध्य में छत्तीसगढ़ में सोमवंशीय साम्राज्य की नींव रखी। इस राजवंश के साम्राज्य का विस्तार कर छत्तीसगढ़ में करीब 30-35 वर्षों तक शांतिपूर्ण शासन कर सोमवंशी काल का वैभवशाली इतिहास रचा।

महाभवगुप्त जनमेजय प्रथम (880-920 शती ईस्वी)

महाभवगुप्त जनमेजय प्रथम शिवगुप्त का पुत्र था। जो शिवगुप्त की मृत्यु उपरान्त सोमवंश की गद्दी पर आसीन हुआ। महाभवगुप्त जनमेजय प्रथम के लगभग 13 ताम्रपत्र अलग-अलग स्थानों से प्राप्त हुये हैं। महाभवगुप्त के समकालीन नलवंश के अधिकार में छत्तीसगढ़ का दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्वी भू-भाग था। छत्तीसगढ़ का पश्चिम भाग त्रिपुरी के कलचुरि शासकों के अधिकार में था। महाभवगुप्त जनमेजय प्रथम ने अपने साम्राज्य का केन्द्र पूर्वी दक्षिण कोसल स्वर्णपुर (सोनपुर) को बनाया। त्रिकलिंगाधिपति का अभिप्राय तीन कलिंग अर्थात् कोसल, कलिंग तथा उत्कल के आधार पर त्रिकलिंगाधिपति कहलाने वाले सोमवंशीयों का उक्त तीनों क्षेत्र में आधिपत्य था। इनके साम्राज्य की सीमा श्रीपुर (सिरपुर), सम्पूर्ण पूर्वी मध्यप्रदेश, तथा पूर्व में पश्चिमी उड़ीसा, स्वर्णपुर (सोनपुर) को माना जाता है। इनकी राजमुद्रा में लक्ष्मी का अंकन एवं ताम्रपत्रों में परममहेश्वर के अंकन से इन्हें धर्म-सहिष्णु शासक अर्थात् शैव-वैष्णव दोनों धर्मों का अनुयायी माना जा सकता है।

महाशिवगुप्त ययाति प्रथम (920-955 शती ईस्वी)

सोमवंशी राजवंश में महाशिवगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र महाशिवगुप्त ययाति प्रथम गद्दी पर आसीन हुआ। इस शासक के पूर्वी दक्षिण कोसल एवं सीमावर्ती क्षेत्रों से प्राप्त 6 ताम्रपत्र प्राप्त हुये हैं। विनीतपुर एवं ययातिनगर से जारी ताम्रपत्र में शासक ययाति प्रथम द्वारा ग्राम दान दिये जाने का उल्लेख है। महाशिवगुप्त ययाति प्रथम को उनके पिता की तरह महाराजाधिराज, सोमकुल-तिलक, परममहेश्वर, त्रिकलिंगाधिपति से अलंकृत किया था। इस वंश के ताम्रपत्र में उल्लेखित ययातिनगर से जानकारी मिलती है कि इस शासक ने ययातिनगर में अपनी राजधानी स्थापित की थी। इनके ताम्रपत्रों में महानदी एवं तेल नदी का भी उल्लेख मिलता है। ये अपने पिता की तरह महत्त्वाकांक्षी शासक थे, इन्होंने साम्राज्य का विस्तार किया तथा शैव सम्प्रदाय के पोषक होने के कारण इस धर्म के विस्तार में सहयोग दिया। इनका राज्यकाल लगभग 25 वर्षों का रहा है।

महाभवगुप्त द्वितीय भीमरथ (955-975 शती ईस्वी)

महाशिवगुप्त ययाति प्रथम के बाद उसका पुत्र महाभवगुप्त द्वितीय भीमरथ सोमवंश की गद्दी पर आसीन हुआ। महाभवगुप्त द्वितीय भीमरथ के अब तक कुल तीन ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं। ययाति नगर से जारी ताम्रपत्र में इन्हें महाराजाधिराज, महेश्वर, आदि उपाधि से अलंकृत किया गया था। शैवधर्म के अनुयायी इस शासक को ताम्रपत्र अभिलेख में पृथ्वी का भूषण, काल का कल्पवृक्ष कहा गया है। इनका 20 वर्ष का राजत्वकाल शांतिपूर्ण एवं वैभवशाली रहा।

महाशिवगुप्त द्वितीय धर्मरथ (975-995 शती ईस्वी)

महाभवराज द्वितीय भीमरथ के पश्चात् उसका द्वितीय पुत्र महाशिवगुप्त द्वितीय धर्मरथ उसका उत्तराधिकारी हुआ। ययातिनगर से जारी खन्दपरा से पाप्त ताम्रपत्र के अनुसार इन्हें भी पिता की तरह परममहेश्वर, महाराजाधिराज, सोमकुल तिलक, आदि उपाधि दी गयी थी। ब्रह्मेश्वर मंदिर शिलालेख में धर्मरथ का उपनाम राजमल मिलता है। महाशिवगुप्त द्वितीय धर्मरथ एक शक्तिशाली शासक था। ययाति नगर में इसकी राजधानी थी। इनके छोटे भाई का नाम नहुष तथा इन्द्ररथ था। ये शैवधर्म के अनुयायी थे। इनका राजत्वकाल लगभग 20 वर्षों का रहा है।

महाभवगुप्त तृतीय नहुष (995-1000 शती ईस्वी)

सोमवंश के उत्तराधिकारी के रूप में महाशिवगुप्त तृतीय धर्मरथ के पश्चात् उसका छोटा भाई महाभवगुप्त तृतीय नहुष गद्दी पर आसीन हुआ। इस वंश के शासक महाभवगुप्त तृतीय का उल्लेख महाशिवगुप्त धर्मरथ के छोटे भाई के रूप में नरसिंहपुर से प्राप्त ताम्रपत्र से होता है। इनका राज्यकाल अल्प समय तक रहा। लगभग 5 वर्षों तक इनका राजत्वकाल रहा है।

इन्द्ररथ (1000-1022 शती ईस्वी)

सोमवंशी शासक नहुष के पश्चात् उसका छोटा भाई इन्द्ररथ गद्दी पर आसीन हुआ। जिन दिनों नहुष का शासन था, उन दिनों उसका छोटा भाई इन्द्ररथ (बानपुर ताम्रपत्र के अनुसार) ओड़ देश का अधिपति था। इन्द्ररथ को अपने भाई के स्थान पर संकटकाल में उत्तराधिकारी बनना पड़ा। इसके समकालीन त्रिपुरी के कलचुरि गांगेयदेव के अभिलेख में उल्लेख है कि उसने दक्षिण कोसल (प्राचीन छत्तीसगढ़) के शासक कमलराज की सहायता से कलिंग एवं उत्कल के राजाओं को जीतकर पूर्वी समुद्र के तट पर अपना विजय स्तंभ बनवाया था। उदय प्रशस्ति में आदि नगर के शासक इन्द्ररथ को पराजित करने का उल्लेख है। प्राप्त जानकारी के अनुसार ययाति नगर का नाम ही आदि नगर था। आदि नगर में परमार, भोज एवं चोल राजाओं द्वारा संयुक्त रूप से आक्रमण करने का उल्लेख मिलता है। अतः सोमवंशी शासक इन्द्ररथ को त्रिकोणी आक्रमण से बहुत अधिक क्षति उठानी पड़ी थी, वे युद्ध में परास्त भी हुये। अतएव सोमवंशीय शासक इन्द्ररध के हाथों से सोमवंशीय साम्राज्य की बागडोर धीरे-धीरे छूटती चली गयी और यह विशाल साम्राज्य क्रमशः बिखरने लगा और पतन की ओर अग्रसर हो गया। इस प्रकार सोमवंश के विशाल साम्राज्य का सूर्यास्त हो गया।

कलचुरि-राजवंश

छत्तीसगढ़ के गौरवशाली इतिहास एवं संस्कृति के निर्माण में कलचुरि राजवंश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। माहिष्मती त्रिपुरी और रत्नपुर के कलचुरि शासकों के समय सर्वतोन्मुखी उन्नति कला और संस्कृति के क्षेत्र में हुई। उत्तर और दक्षिण भारत में परस्पर न केवल राजनयिक संबंध बने अपितु सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों की प्रगाढ़ता इनकी उपादेयता है।

कलचुरि राजवंश अभिलेखों, ताम्रपत्रों में उनका नाम कटच्छुरी, कलत्सुरि, कालचुर्य, कलचुति, एवं कलचुरि आदि मिलता है। त्रिपुरी के कलचुरि अपने को चंद्रवंशी कहते थे और रतनपुर कलचुरियों की वंश परम्परा सूर्यवंश से प्रारंभ होती है। दोनों प्रकार से उनका संबंध कृतवीर्य के पुत्र हैहय सहस्रार्जुन से जुड़ता है। हैहय वंश का वृतान्त पुराणों एवं प्राचीन साहित्यों में मिलता है।

छत्तीसगढ़ (प्राचीन दक्षिण कोसल) की राजधानी रतनपुर के हैहयवंशी राजाओं ने अपना जो इतिहास लिखवाया था (रेवाराम बाबू कृत - रतनपुर का इतिहास) उसके अनुसार उनका वंश विवरण इस प्रकार है - ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और उसके पुत्र सोम हुये जिनसे सोमवंशी उत्पन्न हुये। इस वंश में ऐल नामक राजा हुआ था जिसके वंशज ययाति, यदु और पुरु थे। यदु का पुत्र हैहय था, जिसने अपना राज्य नर्मदा तट पर माहिष्मती में स्थापित किया जो आजकल महेश्वर नगर कहलाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि हैहयवंशी कलचुरिवंशीय शासक मूलतः यदुवंशी हैं। कलचुरि राजवंश की प्रथम राजधानी माहिष्मती में थी। माहिष्मती में राज्य करते हुये माहिष्मत के कलचुरि इतने समृद्ध और शक्तिशाली हो गये थे कि इनका राज्य विस्तार गुजरात, महाराष्ट्र और मालवा पर ही नहीं अपितु कोंकण तक अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर कलचुरियों ने भारतवर्ष में वैभवशाली विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी।

ज्ञात स्रोतों के आधार पर कलचुरि राजवंश का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है। सन 550 से 575 ईस्वी तक राज्य करने वाले शासक कृष्णराज का नाम अभिलेखों में मिलता है। इनके ताम्बे एवं शीशे के सिक्के मिले हैं। इसके बाद इनके पुत्र शंकरगण ने सन् 575 से 600 ईस्वी तक राज्य किया। उसका कलचुरि संवत 347 अर्थात् 595 ईस्वी का एक दानपत्र अमोना (जिला नासिक) से प्राप्त हुआ है' जो उज्जयिनी से जारी किया गया था। कलचुरि राजवंश में शंकरगण के बाद बुद्धराज ने राज्य किया। बुद्धराज को वातापी (वर्तमान बदामी) के चालुक्यवंशी मंगलेश से युद्ध करना पड़ा जिसमें उसकी पराजय हुई, किन्तु पुलकेशिन और मंगलेश के आपसी मनमुटाव से बुद्धराज को लाभ हुआ और कुछ समय के लिये पुनः शक्तिशाली हो गया। इसी बीच उसने सन 610 ईस्वी में वैदिशनगर (विदिशा) से एक दानपत्र दिया, अंत में सन् 620 ईस्वी के आसपास उसके राज्य का बड़ा भू-भाग पुलकेशिन द्वारा हड़प लिया गया। इससे कलचुरि राजवंश की राजनैतिक क्षति हो गयी। परिणामस्वरूप कलचुरियों की एक शाखा त्रिपुरी चली गयी।

त्रिपुरी के कलचुरि

कलचुरियों की पुण्यस्थली माहिष्मती से कालान्तर में एक शाखा त्रिपुरी चली आई। किस कारण से उसका विभाजन हुआ, इस संबंध में कोई अभिलेखीय प्रमाण नहीं मिलते किन्तु चालुक्यों से हुये युद्ध में बुद्धराज की पराजय ने उनके वंशज को माहिष्मती छोड़ने के लिये विवश कर दिया, ये चेदि देश की ओर भाग गये थे। कुछ इतिहासकार माहिष्मती के हैहय में आपसी मनमुटाव हो जाने के कारण भी वे माहिष्मती छोड़ने के लिये विवश होना बताते हैं। माहिष्मती के समान त्रिपुरी में इन्हें नर्मदा का पुण्य तट प्राप्त हुआ एवं वे यहाँ आकर बस गये। त्रिपुरी राजवंश में क्रमानुसार शासकों का विवरण प्राप्त हुआ है, जो निम्नानुसार है :-

कोकल्ल

कलचुरि राजवंश के प्राप्त अभिलेखों एवं ताम्रपत्रों के अनुसार चेदिवंश में कोकल्ल नामक एक राजा हुआ था, उनके 18 पुत्र हुये थे। जिसमें ज्येष्ठ पुत्र त्रिपुरी का शासक हुआ, उसने अपने छोटे भाईयों को निकटवर्ती मण्डलों का

अधिपति नियुक्त किया था। इन छोटे भाइयों में से एक के परिवार में कलिंगराज उत्पन्न हुआ। त्रिपुरी राजवंश का प्रथम शासक कोकल्ल को माना जाता है। किन्तु उत्कीर्ण लेखों से विदित होता है कि इस शाखा के संस्थापक वामराजदेव थे। वामराजदेव का शासन काल ईस्वी सन सातवीं शताब्दी के अंत में हुआ था। उसने कालंजर को जीतकर गंगा नदी तथा गंडक नदी को पारकर आसपास के प्रदेशों को अधीन किया था।

शंकरगण

इसके पश्चात् त्रिपुरी के कलचुरि वंश में शंकरगण नामक शासक के सत्तासीन होने के प्रमाण मिलते हैं। शंकरगण के सागर में मिले उत्कीर्ण लेख में इन्हें परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर की उपधि से अलंकृत किया गया है। उत्कीर्ण लेख की लिपि के आधार पर इतिहासकार प्रथम शंकरगण का राजत्वकाल ईस्वी सन आठवीं शती के मध्यकाल तक माना जाता है। इसके बाद कोई अभिलेख प्राप्त न होने के कारण शंकरगण के पश्चात् कौन उत्तराधिकारी हुआ, इस संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती।

लक्ष्मणराज

त्रिपुरी के कलचुरि शासक के संबंध में कारीतलाई (जबलपुर) स्थित देवी मढ़िया में जड़े हुये एक खण्डित शिलालेख में लक्ष्मणराज के राज्य काल का निर्देश है। इस लेख से ज्ञात होता है कि लक्ष्मणराज ने राष्ट्रकूट शासकों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। कोकल्ल (प्रथम) त्रिपुरी राजवंश के शासक के रूप में लक्ष्मणराज के पश्चात् कोकल्ल (प्रथम) का नाम अभिलेखों में आता है। कोकल्ल प्रथम बहुत महत्त्वाकांक्षी एवं प्रतापी शासक था। इनका कोई स्वयं का अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु इनके पश्चात्वर्ती शासकों के अभिलेखों में इनके शक्तिशाली शासक होने की जानकारी मिलती है। कोकल्ल (प्रथम) का राज्यकाल 850-890 शती ईस्वी तक रहा। ये एक समृद्धशाली शासक थे। बिलहरी शिलालेख एवं बनारस ताम्रपत्र के अनुसार पूरी पृथ्वी को जीत लेने के बाद इन्होंने दो विजय स्तंभ खड़े किये दक्षिण में कृष्ण और उत्तर में भोजदेव। गुर्जर, प्रतिहार, राष्ट्रकूट, चन्देल और सरयूपारी कलचुरि में इनके अच्छे संबंध होने के कारण प्रभाव था। इन्हें अभिलेखों में कोकल्ल देव भी सम्बोधित किया गया है।

शंकरगण (द्वितीय)

कोकल्ल देव (प्रथम) के पुत्र शंकरगण (द्वितीय) को प्राप्त अभिलेखों के अनुसार मुग्धतुंग, प्रसिद्ध धवल और रणविग्रह की पदवी से संबोधित किया गया है। (द्वितीय) शंकरगण-मुग्धतुंग सन 890 ईस्वी के लगभग राजसिंहासन पर बैठा था। इसने प्राचीन छत्तीसगढ़ की विजय यात्रा की और सोमवंशी राजवंशों को हराकर उनसे पाली (जिला बिलासपुर) को छीन लिया था। चालुक्य वंशीय विनयादित्य के विरुद्ध हुये युद्ध में राष्ट्रकूट (द्वितीय) कृष्ण की ओर से कलचुरि सेनाओं ने युद्ध किया था। किन्तु किरणपुर में हुये युद्ध में दोनों वंशों की सम्मिलित सेना चालुक्यों के सामने न टिक सकी और चालुक्यों ने किरणपुर को जलाकर नष्ट कर दिया एवं शंकरगण (द्वितीय) मुग्धतुंग एवं कृष्ण दोनों को पराजय का सामना करना पड़ा।

बालहर्ष और केयूरवर्ष

बालहर्ष और केयूरवर्ष नाम के शंकरगण (द्वितीय) के दो पुत्र थे। इनकी दो पुत्रियाँ लक्ष्मी एवं गोविन्दाम्बा थीं जो राजा राष्टकूट को ब्याही गयी थी। 910 ईस्वी के लगभग शंकरगण मुग्धतुंग की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र बालहर्ष उत्तराधिकारी बना। बनारस ताम्रलेख के अनुसार इनका कार्यकाल अल्पकालीन था। तत्पश्चात् बालहर्ष का छोटा भाई 915 ईस्वी में शासक बना। केयूरवर्ष को कारीतलाई शिलालेख के अनुसार युवराजदेव (प्रथम) के नाम से भी संबोधित किया जाता था। युवराजदेव की रानी नोहला देवी चालुक्य वंश की बेटी थी। युवराजदेव और उसकी रानी नोहला देवी दोनों ही शिव के भक्त थे। इन्होंने त्रिपुरी के निकट गोलकी मठ का निर्माण करवाया था। विद्वानों का मत है कि भेड़ाघाट

के निकट चौंसठ योगनी का मंदिर ही प्राचीन गोलकी मठ है। समीप ही रानी नोहला के नाम से नोहलेश्वर नामक मंदिर भी बनवाया गया। इनके कार्यकाल में कला, साहित्य एवं धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था।

द्वितीय लक्ष्मणराज

सन् 950 ईस्वी के लगभग प्रथम युवराज के पश्चात् त्रिपुरी की गद्‌दी पर लक्ष्मणराज (द्वितीय) आसीन हुये। बिलहरी शिलालेख के अनुसार यह एक शक्तिशाली शासक था। इसने कोसल के अधिपति को हराकर ओड़ (उड़ीसा) की विजय यात्रा की थी। यहाँ से कालियानाग की रत्न जड़ी प्रतिमा प्राप्त की थी जिसे सोमनाथ मंदिर में अर्पित किया गया था। इनके कार्यकाल में अनेक मंदिर, मठों का निर्माण हुआ था। जिसमें बैधनाथ एवं गार्गी मठ प्रमुख हैं। लक्ष्मणराज के सन् 970 ईस्वी तक शासन करने की जानकारी मिलती है।

(द्वितीय) शंकरगण

सन् 970 ईस्वी के पश्चात् लक्ष्मणराज के पश्चात् लक्ष्मणराज के पश्चात् उसका पुत्र शंकरगण (द्वितीय) गद्‌दी पर आसीन हुआ। यह परम वैष्णव था। इनका राज्यकाल अल्पकालीन रहा, इस संबंध में कोई विशेष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। युवराजदेव (द्वितीय) सन् 980 ईस्वी में शंकरगण (द्वितीय) के पश्चात् उसका छोटा भाई युवराजदेव (द्वितीय) उत्तराधिकारी बना। इनका कार्यकाल अल्पकालीन रहा। उदयपुर प्रशस्ति से जानकारी मिलती है कि परमार राजा वाक्पति मुंज ने युवराज देव (द्वितीय) को हराकर उसके सेनापति का वधकर त्रिपुरी पर अधिकार कर लिया था। युवराजदेव की कायरता के कारण त्रिपुरी के मुक्त होने के बाद मंत्रियों ने पुनः उन्हें गद्‌दी पर नहीं बैठाया बल्कि उसके पुत्र कोकल्लदेव (द्वितीय) को शासक बनाया।

कोकल्ल देव (द्वितीय)

युवराजदेव (द्वितीय) की पराजय के पश्चात् कलचुरि राजवंश के तत्कालीन मंत्रियों ने उसके पुत्र कोकल्ल देव (द्वितीय) को शासक बनाया। कोकल्लदेव (द्वितीय) ने पुनः कलचुरि राजवंश को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। इन्होंने चालुक्यवंशी नृपति पाँचवें विक्रमादित्य पर विजय प्राप्त कर राज्य विस्तार किया।

गाँगेयदेव

द्वितीय कोकल्लदेव के पश्चात् उसका पुत्र गांगेयदेव1015 शती ईस्वी में त्रिपुरी की गद्‌दी पर आसीन हुआ। गांगेयदेव से संबंधित अभिलेखों एवं ताम्रपत्रों के अनुसार यह बड़ा शक्तिशाली एवं प्रतापी शासक हुआ। अल्प अवधि में इसने कलचुरि राज्य की पताका फहराई और उत्तर भारत के राजाओं के समान सम्मान प्राप्त किया। गांगेयदेव ने चन्देलों की अधीनता से कलचुरि राजवंश को अलग कर एक स्वतंत्र राज्य घोषित कर चालुक्य शासक जयसिंह नृपति को पराजित किया। गांगेयदेव ने दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) के राजा कमलराज की सहायता से उत्कल के करवंशी राजा को जीतकर पूर्व समुद्रतट पर अपना विजय स्तंभ खड़ा करवाया। छत्तीसगढ़ के कलचुरियों के अभिलेख के अनुसार कमलराज ने उड़ीसा से लक्ष्मी की प्रतिमा लाकर गांगेयदेव को भेंट दी थी। छत्तीसगढ़ के सोमवंशी शासक महाशिवगुप्त ययाति से, गांगेयदेव का युद्ध हुआ था जिसमें गांगेयदेव की विजय हुई और इसे त्रिकलाधिपति की उपाधि से अलंकृत किया गया। इसने गंगा-यमुना अन्तवर्ती प्रदेश को जीतकर कांगड़ा तक जीतकर राज्य विस्तार किया था और प्रयाग को अपनी दूसरी राजधानी बनाया। गांगेयदेव कलचुरि राजवंश का एक महत्त्वाकांक्षी एवं शक्तिशाली महान शासक था। इन्होंने जीवनपर्यन्त कलचुरि राजवंश को विस्तारित करने एवं सुदृढ़ करने में लगा दिया। उत्कीर्ण लेख के अनुसार इनकी मृत्यु 1041 ईस्वी में हुई थी तब इनकी एक सौ रानियाँ जलकर सती हुई थीं। इन्होंने सोने के सिक्के चलवाये थे एवं शिव भक्त होने के कारण शिवालय आदि के निर्माण करवाये थे।

कर्ण

गांगेयदेव के बाद उसका पुत्र कर्ण उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने पिता से मिले साम्राज्य को अपनी पराक्रम एवं वीरता से इसमें और विस्तार किया। 1041 ईस्वी के पश्चात् कलचुरि वंश के शासक के रूप में विख्यात कर्ण राजा ने भीम को हराकर गुर्जर देश को हथिया लिया। वहीं परमारों को परास्त कर पिता का बदला लिया और उनकी राजधानी धारा पर अधिकार कर लिया। विल्हण के 'विक्रमादित्यचरित' के अनुसार चंदेल राजा देववर्मा को पराजित करने के बाद इन्हें कर्ण-कालिजगिरिपति की उपाधि मिली। पालवंशी शासक विग्रहपाल से कर्ण ने अपनी पुत्री यौवनश्री का विवाह कर उनसे संधि कर ली। 1052-53 ईस्वी में कर्ण ने ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँचकर चक्रवर्ती का पद प्राप्त कर पुनः अपना राज्याभिषेक कराया। कर्ण का राज्य इतना विशाल हो गया था कि वे उसे सम्भाल नहीं सके और साम्राज्य बिखरने लगा। उनके शत्रु पुनः सक्रिय हो गये। कर्ण ने कर्णावती नगरी बसायी थी। कर्ण योद्धा के साथ कला का पारखी भी था। इनका कार्यकाल 1041 से 1073 ईस्वी तक रहा।

यशस्कर्ण

कर्ण की पत्नी आवल्लदेवी हूण वंश की थी, उसका बेटा यशस्कर्ण उत्तराधिकारी बनाया गया। कर्ण अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह कराकर पुत्र को राजगद्दी सौंपकर वैराग्य में चले गये। पिता की तरह यशस्कर्ण भी महान योद्धा था। इसने चालुक्यवंशी शासक सातवें विक्रमादित्य को हराया था। छत्तीसगढ़ रतनपुर में कलचुरि शासन में प्रथम शासक जाजल्लदेव ने यशस्कर्ण की सहायता की थी। त्रिपुरी के कलचुरि राजवंश का साम्राज्य विरोधी शासकों की बढ़ती हुई शक्ति के कारण बिखरने लग गया था। यशस्कर्ण के समय ही कलचुरि राज्य के बहुत से प्रदेश हाथ से निकल गये। प्रयाग और काशी भी कलचुरियों की राजधानी नहीं रही।

गयाकर्ण

यशस्कर्ण का पुत्र गयाकर्ण सन 1123 ईस्वी में उत्तराधिकारी हुआ। उसके समय के तेवर एवं बहुरीबंद से दो अभिलेख प्राप्त हुये थे। चन्देल राजा मदनवर्मा के दबाव के कारण गयाकर्ण को बघेलखण्ड छोड़ देना पड़ा। छत्तीसगढ़ के शासक नृपति जो अब तक त्रिपुरी की मुख्य शाखा के अधीन राज्य करते थे वे गयाकर्ण के समय स्वतंत्र हो गये। गयाकर्ण ने रतनपुर के कलचुरि शासक रत्नदेव को जीतने के लिये बड़ी संख्या में सेना भेजी किन्तु उलटे गयाकर्ण ही परास्त हुये। गयाकर्ण ने गुहिलवंशी शासक विजयसिंह की बेटी अल्हणदेवी से विवाह रचाया था। अल्हणदेवी पाशुपत सम्प्रदाय को मानती थी उसने भेड़ाघाट में वैद्यनाथ मंदिर बनवाया।

नरसिंह और जयसिंह

कलचुरि शासक गयाकर्ण के दो पुत्र थे नरसिंह और जयसिंह। दोनों भाइयों में राम-लक्ष्मण जैसा प्रेम था। । गयाकर्ण के बाद नरसिंह उत्तराधिकारी बना। 1053 से 1063 ईस्वी तक इनका शासन काल रहा। इसके बाद उसका छोटा भाई जयसिंह त्रिपुरी का राजा बना। जयसिंह की दो रानी थी केल्हण एवं गोसल देवी। गोसल देवी ने गोसलपुर नामक नगर बसाया था। शिवरीनारायण अभिलेख के अनुसार जयसिंह ने दक्षिण कोसल पर आक्रमण किया था किन्तु जाजल्लदेव ने इन्हें परास्त किया था।

विजयसिंह

त्रिपुरी कलचुरि के शासक जयसिंह के बाद उसका पुत्र विजयसिंह उत्तराधिकारी बना। ये लगभग 1090 ईस्वी में गद्दी पर बैठे। विजयसिंह के राजत्वकाल में चारों ओर से विरोधी शासकों का दबाव बढ़ गया था। बघेलखण्ड चन्देलों के अधिकार में आ गया था। इस प्रकार त्रिपुरी का कलचुरि राजवंश जबलपुर जिले तक ही सीमित रह गया था। विजयसिंह के कार्यकाल में त्रिपुरी राज्य बिखरने लगा था और विजयसिंह त्रिपुरी कलचुरि वंश का अंतिम शासक सिद्ध हुआ। इस प्रकार त्रिपुरी राजवंश के विशाल साम्राज्य का सूर्यास्त हो गया।

रतनपुर के कलचुरि

त्रिपुरी राजवंश के कलचुरियों के अभिलेखों एवं ताम्रपत्रों के अनुसार त्रिपुरी के कलचुरियों की एक लहुरी शाखा छत्तीसगढ़ में आकर यहाँ राज्य करने लगे थे। त्रिपुरी के कोकल्ल के अठारह बेटे थे, उनमें से ज्येष्ठ पुत्र त्रिपुरी का शासक बना। उसने अपने छोटे भाइयों को निकटवर्ती मंडलों का अधिपति बनाया था। इन छोटे भाइयों में किसी एक परिवार में कलिंगराज हुआ। यह एक महत्त्वाकांक्षी और महाप्रतापी शासक था, जिसने अपने पूर्वजों की भूमि को छोड़कर छत्तीसगढ़ भू-भाग में पहुँचकर अपने पराक्रम से छत्तीसगढ़ में तुम्माण (जिला बिलासपुर) नामक स्थान पर अपनी राजधानी स्थापित कर कलचुरि राजवंश की पताका फहराई। रतनपुर के कलचुरि राजवंश के शासक एवं उनका गौरवशाली इतिहास निम्नानुसार है :-

कलिंगराज

त्रिपुरी के कलचुरियों से अलग होकर लगभग 1000 शती ईस्वी को कलिंगराज ने छत्तीसगढ़ में आक्रमण कर अपनी पराक्रम से विजय हासिल कर तुम्माण में कलचुरि राजवंश की राजधानी छत्तीसगढ़ में स्थापित की। । बिलहरी के शिलालेख के अनुसार इसके पूर्व भी कोकल्ल के बेटे मुग्धतुंग ने पूर्वी समुद्र के किनारे के देशों को जीतकर कोसल (छत्तीसगढ़) के राजा से पाली नामक क्षेत्र छीन लिया था और नौ सौ ईस्वी में तुम्माण (जिला बिलासपुर) को अपनी राजधानी बनाया था। किन्तु 950 ईस्वी में सोमवंशियों ने कलचुरियों को कोसल (छत्तीसगढ़) से खदेड़ दिया था। जिसे बाद में कलिंगराज ने पुनः हासिल कर तुम्माण में राजधानी बनायी थी। कलिंगराज ने लगभग 20 वर्षों तक शासन किया।

कमलराज

कलचुरियों का छत्तीसगढ़ में साम्राज्य स्थापित होने के बाद कलिंगराज का पुत्र कमलराज सन् 1020 ईस्वी में तुम्माण के राजसिंहासन पर विराजमान हुआ। इनके शासनकाल में त्रिपुरी के गांगेयदेव ने न केवल उसकी सहायता की थी अपितु उत्कलराज की संपत्ति लूटकर गांगेयदेव को समर्पित कर दी थी। इस उत्कल युद्ध से कमलराज का साहिल्ल नामक एक वीर योद्धा उसके साथ कोसल (छत्तीसगढ़) चला आया। इस साहिल्ल ने एवं उसके वंशजों ने पश्चात्काल में कलचुरियों की तरफ से छत्तीसगढ़ के अनेक प्रदेश अधिकार में लिये थे।

रत्नराज (रत्नदेव)

कमलराज के पश्चात् उसका पुत्र प्रथम रत्नराज (रत्नदेव) सन् 1045 ईस्वी के लगभग तुम्माण की गद्दी पर बैठा। उसने कोरोमंडल के अधिपति राजा वज्जुक या यजुवर्मा की बेटी नोनल्ला से विवाह कर छत्तीसगढ़ में कलचुरियों के प्रभाव में वृद्धि की। कलचुरि अभिलेख में रत्नराज को रत्नदेव भी संबोधित किया गया है। राजा रत्नदेव कलाप्रिय शासक थे। इन्होंने तुम्माण से राजधानी को हटाकर एक नये स्थान पर नगर बसाकर राजधानी स्थापित की जो रत्नपुर के नाम से प्रसिद्ध हुई। अपने पूर्वजों की राजधानी को भी इन्होंने बाग-बगीचों का निर्माण कर सुन्दर बनाया था किन्तु इनकी नयी राजधानी रत्नपुर को यश नामक श्रेष्ठी ने स्वरूप देकर इतना सुन्दर बनाया कि कलचुरियों की आने वाली पीढ़ी यहाँ शासन करती रही। रत्नदेव ने अपने कार्यकाल में अनेक मंदिरों का निर्माण कराया था जिसमें बंकेश्वर, रत्नेश्वर आदि देवालय प्रमुख हैं। छत्तीसगढ़ के कलचुरियों में रत्नदेव महान शासक हुआ जिनके ऐतिहासिक धरोहर, किले एवं मंदिर वास्तु आज भी विद्यमान हैं जिसमें कलचुरियों की अधिष्ठात्री देवी 'महामायादेवी' शक्तिपीठ प्रमुख है। जो रतनपुर में आज भी विद्यमान है। रत्नदेव लगभग 25 वर्षों तक शासन करते रहे।

पृथ्वीदेव (प्रथम)

कलचुरि राजवंश के महान शासक रत्नदेव के पश्चात् उसका पुत्र पृथ्वीदेव (प्रथम) गद्दी पर आसीन हुआ। पृथ्वीदेव के उत्कीर्ण लेखों के अनुसार 1069 ईस्वी में रत्नदेव की मृत्यु हुई। तत्पश्चात् 1069 ईस्वी में पृथ्वीदेव को उत्तराधिकारी

बनाया गया। ताम्रपत्रों में उसे महामण्डलेश्वर कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि ये त्रिपुरी की शाखा के समान ही कोसल में राज्य किया करते थे। इन्होंने सकल कोसलाधिपति की भी उपाधि धारण की थी और छत्तीसगढ़ में 21 हजार ग्रामों का स्वामी बन गया था। इनके दो प्रमुख मंत्री विग्रहराज और सोढ़देव थे। पृथ्वीदेव की रानी का नाम राजल्ला था। शिवभक्त होने के कारण इन्होंने तुम्माण में पृथ्वीदेवेश्वर नामक शिवमंदिर तथा रतनपुर में एक विशाल सरोवर का निर्माण करवाया था।

जाजल्लददेव (प्रथम)

कलचुरि नरेश पृथ्वीदेव का पुत्र (प्रथम) जाजल्लदेव 1095 ईस्वी में रतनपुर की गद्दी पर बैठा। ये एक शक्तिशाली एवं महत्त्वाकांक्षी शासक थे। इन्होंने साम्राज्य विस्तार के लिये बैरागढ़, लज्जिका और तलहारिमण्डल को विजित किया था तत्पश्चात् बंगाल में दण्डकपुर, आन्ध्रप्रदेश में खिमड़ी पर विजय प्राप्त की थी। इस विजय यात्रा में उनके सेनापति जगपाल ने अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया था। जिससे जाजल्लदेव ने चक्रकोट के छिन्दक नागवंशी राजा सोमेश्वर को हराकर अपने पूर्वजों का बदला लिया था। इसने राजा, रानी को कैद कर राजधानी को जला दिया था। जाजल्लदेव की कीर्ति इतनी बढ़ गयी थी कि न केवल त्रिपुरी के राजा यशस्कर्ण ने बल्कि कान्यकुब्ज और जेजाकभुक्ति तथा चन्देल राजाओं ने भी उन्हें शूर मानकर उनके साथ मित्रता की और धन भेंट किया। जाजल्लदेव एक समृद्धशाली शासक था जिसने अपने नाम पर सोने के सिक्के चलवाये थे। इनके सिक्के की पीठ पर गजशार्दूल का प्रतीक चिह्न बना हुआ मिलता है। जाजल्लदेव एक अच्छे शासक के साथ-साथ वास्तुशिल्पी भी थे, इन्होंने जाजल्लपुर नगर बसाया था जो आज जाँजगीर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ विष्णु का एक विशाल मंदिर बनवाया था। इन्होंने अपने कार्यकाल में मंदिर, मठ, सरोवर, आम्रवन आदि की रचना की थी। पाली के शिवमंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। इन्होंने अपने कार्यकाल में कलचुरि राजवंश का वैभवशाली इतिहास रचा था जिसकी स्मृति में धरोहर आज भी विद्यमान है।

रत्नदेव (द्वितीय)

कलचुरि राजवंश के जाजल्लदेव (प्रथम) के बाद उसका पुत्र रत्नदेव (द्वितीय) सन् 1127 ईस्वी में रत्नपुर की गद्दी पर बैठा। इन्होंने त्रिपुरी के मुख्य शाखा की अधीनता स्वीकार नहीं की जिससे त्रिपुरी के शासक गयाकर्ण ने इन पर आक्रमण किया था। किन्तु गयाकर्ण को पराजय का सामना करना पड़ा था। रत्नदेव ने गंगवंशी राजा अनंतवर्मा चोडगंग को भी परास्त किया था। इसके पश्चात् रत्नदेव ने अपने पराक्रम के बल पर गौड़ पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर दिया। इस युद्ध में वल्लभराज एवं पुरुषोत्तम राज नामक दो सामन्तों ने वीरता से कार्य किया था। रत्नदेव की माता लाच्छल्ला इन्हें अपने बेटों जैसा मानती थीं। वल्लभराज ने रेवन्त एवं शिवमंदिरों की स्थापना की थी एवं सरोवरों का निर्माण करवाया था। पुरुषोत्तम ने भी मठ, मंदिर आदि के निर्माण करवाये थे।

पृथ्वीदेव (द्वितीय) एवं जयसिंह

कलचुरि नरेश रत्नदेव के दो पुत्र थे द्वितीय पृथ्वीदेव और जयसिंह। कलचुरि अभिलेखों के अनुसार 1135-36 ईस्वी के लगभग रत्नदेव का उत्तराधिकारी उनके ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीदेव (द्वितीय) को बनाया गया। पृथ्वीदेव (द्वितीय) ने अपने राजत्वकाल में अनेक राजाओं को अपने अधीन किया। उसके जगपाल नामक सेनापति के राजिम शिलालेख में बताया गया है कि पृथ्वीदेव ने सरहड़गढ़ (वर्तमान सारगढ़) और मचका सिहवा (सिहावा) के क़िले जीत लिये थे। तत्पश्चात् भ्रमरबड़ (बस्तर का भाग) कान्तार, कुसुमभोग, काडाडोंगर, और काकरय (काँकेर) आदि प्रदेश जीतकर पृथ्वीदेव ने साम्राज्य का विस्तार किया। इस प्रकार छत्तीसगढ़ का बहुत बड़ा भाग अपने राज्य में मिला लिया। पृथ्वीदेव ने चक्रकोट पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया इससे गंगवंशी राजा अनंतवर्मा चोडगंग भय से समुद्र पारकर भाग गया। इसी बीच अनंतवर्मा की मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र जटेश्वर गद्दी पर बैठा। पृथ्वीदेव ने आक्रमण कर उसे भी बंदी बना लिया। इस युद्ध में पृथ्वीदेव के सामन्त ब्रह्मदेव ने अपने पराक्रम का परिचय दिया था जिसे पृथ्वीदेव ने मंत्री से विभूषित किया। द्वितीय जाजल्लदेव के समय त्रिपुरी का शासक जयसिंह था जो रत्नदेव (द्वितीय) का दूसरा पुत्र था। कलचुरि शासक जयसिंह

ने छत्तीसगढ़ पर आक्रमण किया था और जाजल्लदेव को अधीन करना चाहता था किन्तु जाजल्लदेव (द्वितीय) ने अपने सामन्तों की सहायता से उसका आक्रमण विफल कर दिया था।

जाजल्लदेव (द्वितीय)

पृथ्वीदेव (द्वितीय) के शासन काल के बाद 1167 ईस्वी के आसपास रत्नपुर की गद्दी पर जाजल्लदेव (द्वितीय) बैठा। इन्होंने अपने कार्यकाल में त्रिपुरी के शासक जयसिंहदेव द्वारा छत्तीसगढ़ में किये गये आक्रमण को विफल किया था। द्वितीय जाजल्लदेव के समय छत्तीसगढ़ में मंदिरों का निर्माण हुआ था। गंगाधर के बेटे सोमराज ने मल्लार में शिवमंदिर का निर्माण करवाया था जिससे संबंधित शिलालेख रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत है। उल्हणदेव ने शिवरीनारायण में चन्द्रचूड़ महादेव का मंदिर बनवाया था। 1167-68 ईस्वी के बाद जाजल्लदेव का कोई अभिलेख नहीं मिलता।

जगददेव

जगददेव जाजल्लदेव (द्वितीय) का बड़ा भाई था। जाजल्लदेव (द्वितीय) की मृत्यु के पश्चात् राज्य में चारों ओर अव्यवस्था फैल गयी थी, तब उनके बड़े भाई जगददेव ने पूर्व देश से आकर राज्य में शांति स्थापना के प्रयास किये थे। वे अल्पकाल के लिये रतनपुर की गद्दी पर आसीन हुये थे।

रत्नदेव (तृतीय)

जगददेव की रानी सोमल्लादेवी से एक पुत्र हुआ जो तृतीय रत्नदेव के नाम से कलचुरि राजवंश में विख्यात हुआ। रत्नदेव (तृतीय) रत्नपुर की गद्दी पर 1178 ईस्वी में बैठा। लखनेश्वर मंदिर के दीवार पर जड़े शिलालेख के अनुसार राज्य में अव्यवस्था फैली, लोग दुर्भिक्ष से भूखों मरने लगे। हाथियों की सेना कमजोर हो गयी थी और राजकोष खाली हो गया तो रत्नदेव ने ब्राह्मण गंगाधर को मंत्री बनाया। गंगाधर ने अपनी योग्यता से राज्य को सुव्यवस्थित कर दिया, शत्रुओं का नाश किया तथा सभी बाधायें दूर कर शांति स्थापित की।

प्रतापमल्ल

तृतीय रत्नदेव के बाद उसका पुत्र प्रतापमल्ल रत्नपुर की गद्दी पर आसीन हुआ। प्रतापमल्ल की अवस्था कम थी फिर भी शक्ति एवं पराक्रम में वह कम न था। प्रतापमल्ल के ताम्बे के सिक्के मिलते हैं। जिसमें सिंह की आकृति एवं एक कटार बनी हुई है। प्रतापमल्ल का शासन अल्प समय का था।

छत्तीसगढ़ में रत्नपुर कलचुरि राजवंश का इतिहास प्रतापमल्ल के बाद उल्लेखनीय नहीं है। किन्तु पन्द्रहवीं शती ईस्वी में बाहरेन्द्र नामक शासक के राज्य करने की सूचना मिलती है। इस संबंध में रतनपुर एवं कोसगई से उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुये हैं। जिसमें विक्रम संवत 1552 (1494-95 ई.)-1570 (1513 ई.) का उल्लेख है। कोसगई के शिलालेख के अनुसार सिंधन का बेटा गंभीर हुआ उसका बेटा मदनबह्मा हुआ और उसका बेटा रामचन्द्र था। रामचन्द्र के बेटे रत्नदेव की रानी गुण्डावी देवी से वाहरेन्द्र का जन्म हुआ। इसी शिलालेख के अनुसार वाहरेन्द्र ने छत्तीसगढ़ से पठानों को खदेड़ कर सोन नदी तक भगा दिया था। वाहरेन्द्र ने अपनी राजधानी रतनपुर से हटाकर कोसंगा (कोसगई) के किले में स्थापित की थी।

कल्याणसाय

कलचुरि नरेश वाहरेन्द्र के पश्चात् उसका पुत्र कल्याणसाय रत्नपुर का शासक बना। कल्याणसाय के संबंध में ज्ञात स्रोतों के आधार पर कल्याणसाय का राज्य संभवतः मुगल प्रभाव में आ गया था। मण्डला के राजा से विवाद होने के तारतम्य में कल्याणसाय को बादशाह अकबर के दरबार में 1564 ईस्वी में दिल्ली बुलवाया गया था। कल्याणसाय के साथ गोपाल राय मल्ल नामक शूरवीर भी दिल्ली गया था। कल्याणसाय ने 8 वर्षों तक दिल्ली में रहने के पश्चात्

सम्मान, उपाधियों तथा राजा के पूर्ण अधिकार के साथ 1572 ईस्वी में वापस आकर कल्याणपुर नगर बसाया था। कल्याणसाय के समकालीन दिल्ली में उन दिनों जहाँगीर होने की बात कुछ इतिहासकार कहते हैं किन्तु जिस अवधि में कल्याणसाय दिल्ली गये थे उन दिनों में दिल्ली सल्तनत के बादशाह अकबर थे। कल्याणसाय जब दिल्ली गये थे तब अपने राज्य का भार अपने पुत्र लक्ष्मणसाय को सौंप गये थे। कहा जाता है कि राजा कल्याणसाय के साथ गये गोपालराय मल्ल पहलवान की शूरवीरता से दिल्ली सल्तनत के बादशाह काफी प्रभावित हुये थे। गोपालराय बिझिया देवार जाति का था। उसे देवार जाति के लोग वीर पुरुष मानकर देवार गीत में गाते हैं।

कल्याणसाय के बाद उसका पुत्र लक्ष्मणसाय राजा बना। लक्ष्मणसाय के बाद उसके उत्तराधिकारी के रूप में तख्तसिंह का नाम मिलता है। जिसने 1685 से 1689 ईस्वी तक शासन किया और तख्तसिंह ने तख्तपुर नामक नगर की स्थापना की। उन दिनों तख्तसिंह का भाई मेरसिंह रायपुर में राज्य कर रहा था। तख्तसिंह के भाई का बेटा राजसिंह उत्तराधिकारी हुआ। राजसिंह निःसंतान था। इन्हें बड़गैया ब्राह्मण दीवान ने प्रमुख रानी से नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करने का सुझाव दिया जिससे एक पुत्र हुआ उसका नाम विश्वनाथसिंह था। विश्वनाथसिंह का विवाह रीवाँ के राजा की पुत्री के साथ हुआ था किन्तु कुछ समय बाद ही विश्वनाथसिंह ने आत्महत्या कर ली थी जिससे राजा राजसिंह ने बहुत दुखी और क्रोधित होकर नगर के उस हिस्से को तोप से उड़वा दिया था जहाँ दीवान के रिश्तेदार रहा करते थे। तत्पश्चात् राजसिंह ने रायपुर शासक के राजा के रिश्तेदार मोहनसिंह को गोद लेकर उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय लिया था कि अचानक राजसिंह की मृत्यु हो गयी उस समय मोहनसिंह शिकार खेलने गया हुआ था। अतः अवसर का लाभ उठाते हुये राजसिंह का चाचा सरदारसिंह राजा बन बैठा। सरदारसिंह 20 वर्षों तक शासन करते रहे। सरदारसिंह निःसंतान थे। उसकी मृत्यु के बाद 1732 ईस्वी में उसके भाई रघुनाथसिंह को उत्तराधिकारी बनाया गया जिनकी उम्र 60 साल की थी। रघुनाथसिंह वृद्ध होते हुये भी 8-10 साल तक रत्नपुर में शासन करते रहे। सन 1742 ईस्वी में नागपुर के भोंसला शासक रघुजी प्रथम के सेनापति भास्कर पंत ने रत्नपुर में आक्रमण किया तब वृद्ध शासक रघुनाथसिंह की रानियों ने बुर्ज से संधि के झण्डे लहराकर किले के द्वार खोलकर मराठों के हवाले कर दिया था। रघुनाथसिंह मराठा प्रतिनिधि के रूप में 1745 ईस्वी तक राज्य करते रहे। उसकी मृत्यु के पश्चात् मोहनसिंह को रतनपुर का शासक बनाया गया किन्तु उन्होंने रतनपुर के सिंहासन पर न बैठकर नागपुर के भोंसला दरबार में अपनी सेवायें दीं। जहाँ वह रघुजी (प्रथम) का प्रिय पात्र बन गया और कालान्तर में छत्तीसगढ़ भोंसला शासन का शासक बनाया गया।

रायपुर के हैहयवंशी कलचुरि

चौदहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में रतनपुर की कलचुरि शाखा से एक और शाखा निकली वह थी रायपुर की कलचुरि शाखा जो हैहयवंशी कलचुरि के नाम से विख्यात हुई। इस शाखा ने अपनी राजधानी रायपुर में स्थापित की। रायपुर के कलचुरि शाखा ब्रह्मदेव के दो शिलालेख प्राप्त हुये हैं। उनमें से एक विक्रम संवत 1458 का है, दूसरा विक्रम संवत 1470 का है। इन दोनों शिलालेखों में दी गयी वंशावली से रायपुर के चार कलचुरि राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं :-

1. लक्ष्मीदेव, 2. सिंधन, 3. रामचंद्र, 4. ब्रह्मदेव

इन राजाओं में से प्रथम दो राजाओं के नाम रतनपुर की वंशावली में भी मिलते हैं। जो वहाँ के राजा वाहर (वाहरेन्द्र) के पूर्वज थे। इससे ज्ञात होता है कि राजा सिंधन के डंधीर और रामचंद्र नामक दो बेटों में से डंधीर को रतनपुर की सत्ता एवं रामचंद्र को रायपुर की सत्ता सौंपी गयी। रामचंद्र ने रायपुर नगर बसाकर अपनी राजधानी स्थापित की। ब्रह्मदेव के खल्लारी लेख से विदित होता है कि रामचंद्र ने फणी (नाग) वंश के राजा भोणिगदेव को जीता था। रामचंद्र के समय में छत्तीसगढ़ में कवर्धा और बस्तर में दो अलग-अलग नागवंशी राजाओं का राज्य था। किन्तु भोणिगदेव किस वंश से थे स्पष्ट नहीं है। उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि ब्रह्मदेव की राजधानी खल्लाटिका (वर्तमान खल्लारी) में थी। जहाँ सन् 1415 ईस्वी में देवपाल नामक मोची ने नारायण के मंदिर का निर्माण कराया था। ब्रह्मदेव के रायपुर शिलालेख

से विदित होता है कि उसके शासनकाल में सन् 1402 ई. में रायपुर शुभस्थान में नायक हाजिराज ने हाटकेश्वर महादेव के मंदिर का निर्माण किया था। खारुन नदी के तट पर महांदेवघाट में निर्मित मंदिर ही हाटकेश्वर महादेव मंदिर है। इसी लेख में ब्रह्मदेव के प्रधान ठाकुर (मंत्री) का नाम त्रिपुरारिदेव और पुरोहित का नाम महादेव जान पड़ता है। ब्रह्मदेव के बाद के शासकों के कोई अभिलेख नहीं मिलते हैं। केवल अंतिम शासक अमरसिंहदेव का एक आरंग से मिला है। यह ताम्रपत्र विक्रम संवत 1792 में जारी किया गया था, जिसके कुछ वर्षों के बाद नागपुर के मराठों के हाथ अमरसिंह का पतन हुआ। रायपुर के हैहयवंशीय कलचुरियों का वैभवशाली इतिहास संक्षिप्त में निम्नानुसार है :-

लक्ष्मीदेव

रायपुर कलचुरि राजवंश के प्रथम शासक के रूप में लक्ष्मीदेव का नाम मिलता है। कलचुरि शिलालेख के अनुसार 14वीं शती ईस्वी के मध्य में रत्नपुर के राजा के रिश्तेदार लक्ष्मीदेव को प्रतिनिधि स्वरूप खल्लारी जिला रायपुर भेजा गया। कलचुरि राज्य के प्रतिनिधि लक्ष्मीदेव ने अनुकूल वातावरण के कारण खल्लारी में स्थापित होकर कलचुरि राजवंश की नींव डाली।

सिंधण

रायपुर कलचुरि वंश में लक्ष्मीदेव के पश्चात् सिंधण नाम का शासक हुआ। सिंधण लक्ष्मीदेव का पुत्र था। लक्ष्मीदेव के पुत्र सिंधण ने शत्रु के 18 गढ़ जीते थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सिंघण रतनपुर के राजा से बिगड़कर स्वतंत्र हो गया था। उसने रायपुर में अपनी राजधानी स्थापित की। सिंधण के दो पुत्र थे डंधीर और रामचंद्र। डंधीर कलचुरि राजवंश के रतनपुर के सिंहासन पर बैठा और रामचंद्र को रायपुर राज्य का शासक बनाया गया। इस प्रकार रायपुर में कलचुरि राजवंश के प्रथम शासक के रूप में रामचंद्र ने सत्ता स्थापित की।

रामचंद्र

हैहयवंशी कलचुरि राजवंश में रायपुर शाखा में शासक के रूप में सिंधण के छोटे पुत्र रामचंद्र का नाम मिलता है। रामचंद्र को शिलालेख में रामदेव कहा गया है। रामचंद्र के पिता सिंधण ने 18 गढ़ जीते थे। रामचंद्र ने अपने पिता द्वारा जीते इन 18 गढ़ों को अपने अधीन रखकर, शांतिपूर्ण रूप से शासन का संचालन किया। इनके कार्यकाल में रायपुर नगर की बसाहट एवं विस्तार कर इसे राजधानी का रूप प्रदान किया गया।

ब्रह्मदेव

हैहयवंशी कलचुरि राजवंश की रायपुर शाखा के शासक रामचंद्र के पश्चात् उसका पुत्र ब्रह्मदेव गद्दी पर बैठा। ब्रह्मदेव महान प्रतापी शासक था। इन्होंने अपने कार्यकाल में राज्य में शांति व्यवस्था एवं निर्माण कार्य को अत्यधिक महत्त्व दिया था। इन्हें 'राय' से अलंकृत किये जाने की जानकारी मिलती है। फलस्वरूप इन्होंने अपने नाम के आगे राय ब्रह्मदेव लगाना पसंद किया। कहा जाता है कि हैहयवंशी शासक ब्रह्मदेव राय के नाम से 'रायपुर' नाम पड़ा। खल्लारी का प्राचीन नाम खल्लाटिका था। यहाँ एक देवालय में जो शिलालेख प्राप्त हुआ है उसके अनुसार हैहयवंशी राजा हरि ब्रह्मदेव की यहाँ राजधानी थी। यहाँ नारायण मंदिर का निर्माण देवपाल नामक मोची द्वारा कराया गया था। जिसमें नारायण की मूर्ति स्थापित है, जो छत्तीसगढ़ में सामाजिक समरसता का परिचायक है। 1458 ईस्वी के शिलालेख के अनुसार राय ब्रह्मदेव के राज्यकाल में नायक हाजिराजदेव ने रायपुर में हाटकेश्वर मंदिर का निर्माण करवाया था। यह हाटकेश्वर मंदिर महादेव घाट स्थित प्राचीन शिव मंदिर है। ब्रह्मदेव के प्रधान ठाकुर (मंत्री) का नाम त्रिपुरारिदेव और पुरोहित का नाम महादेव था। इसी महादेव के नाम से खारुन नदी के इस घाट का नाम महादेव घाट रखा गया। जहाँ नायक हाजिराजदेव ने शिवमंदिर की स्थापना की थी जो आज भी हाटकेश्वर शिवमंदिर के नाम से विख्यात है।

कलचुरि राजवंशीय हैहयवंशीय रायपुर शाखा की जो नामावली पायी जाती है उसमें ब्रह्मदेव का नाम मिलता है न ही उसके पुरखों का और न ही रतनपुरी सूची में लक्ष्मीदेव का नाम पाया जाता है। यद्यपि रायपुर की वंशावली केशवदेव से आरंभ होती है जिसका समय 1410 ईस्वी लिखा हुआ पाया जाता है। परन्तु 1402 और 1414 ईस्वी के मध्य में ब्रह्मदेव का राज्य था जैसाकि शिलालेख में उल्लेख है। यदि केशवदेव का समय 1420 ईस्वी मान लिया जाये तो अलबत्ता कोई बाधा नहीं आती। अतः रायपुर के शासक हैहयवंशी राजाओं की सूची निम्नानुसार है :-

1. केशवदेव 1420 ईस्वी
2. भुवनेश्वरदेव 1438 ईस्वी
3. मानसिंहदेव 1463 ईस्वी
4. संतोषसिंह देव 1478 ईस्वी
5. सूरतसिंहदेव 1498 ईस्वी
6. सनासिंहदेव 1518 ईस्वी
7. चामण्डासिंहदेव 1528 ईस्वी
8. बंशीसिंहदेव 1563 ईस्वी
9. घनसिंहदेव 1582 ईस्वी
10. जैतसिंहदेव 1603 ईस्वी
11. फलेसिंहदेव 1615 ईस्वी
12. यादवदेव 1633 ईस्वी
13. सोमदत्तदेव 1650 ईस्वी
14. बलदेवसिंहदेव 1663 ईस्वी
15. उमेदसिंहदेव 1685 ईस्वी
16. बनवीरसिंहदेव 1705 ईस्वी
17. अमरसिंहदेव 1741 ईस्वी

अमरसिंहदेव हैहयवंशी कलचुरियों का अंतिम शासक था जिसे भोंसलों ने पराजित कर निकाल बाहर किया था। अमरसिंह का दिया हुआ ताम्रपत्र आरंग के एक लोधी के पास है जिसमें संवत 1792 अर्थात् 1735 ईस्वी की तिथि अंकित है। भोंसलों ने छत्तीसगढ़ पर जब 1741 ईस्वी में चढ़ाई की थी, भोंसलों के पिठठू राजा मोहनसिंह ने राजा अमरसिंह से कोई छेड़खानी नहीं की, किन्तु 1750 ईस्वी में रायपुर, राजिम और पास का इलाका छीन लिया गया। सन 1753 ईस्वी में राजा अमरसिंहदेव की मृत्यु हुई, उस समय उसका पुत्र शिवराजसिंह तीर्थयात्रा पर था। फलतः उसके तीर्थयात्रा के लौटने से पहले ही भोंसलों ने कब्जा हासिल कर लिया था। बिम्बाजी भोंसले छत्तीसगढ़ के राजा हुये तब हैहयवंशी राजवंश के अंतिम चिराग शिवराजसिंह को महासमुंद तहसील में स्थित एक ग्राम 'बड़गाँव' माफी में दे दिया गया। हैहयवंशीय राजपरिवार के वंशज बड़गाँव ग्राम में निवासित होने की जानकारी मिलती है। इस प्रकार छत्तीसगढ़ में कलचुरि राजवंश का गौरवशाली इतिहास मिलता है।

चक्रकोट के छिन्दक नाग वंश

छत्तीसगढ़ के इतिहास में 11वीं शती ईस्वी के प्रारंभ में बस्तर के नागवंशी राजाओं का उल्लेख मिलता है। बस्तर के नागवंशी राजाओं ने अपने राज्य की स्थापना की जो रत्नपुर के कलचुरियों के प्रतिद्वन्द्वी थे। ये नागवंशी नरेश छिन्दक कुल के थे और चक्रकोट के राजा कहलाते थे, क्योंकि उस समय बस्तर क्षेत्र को चक्रकोट कहा जाता था। जिसका बिगड़ा हुआ रूप आज का चित्रकूट है। छिन्दक नागवंशी राजा भोगावतीपुरवरेश्वर की उपाधि धारण करते थे। छिन्दकों के प्रथम राजा नृपति भूषण का उल्लेख शक संवत 945 (1053 ईस्वी) के एक शिलालेख में प्राप्त होता है। छिन्दक नागवंशी शासक नृपतिभूषण के पश्चात् धारावर्ष जगदेकभूषण के शासन करने संबंधी शिलालेख शक संवत 983 (1060 ईस्वी) का बारसूर से प्राप्त हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि महाराज जगदेकभूषण के राज्यकाल में उसके महामण्डलेश्वर चन्द्रादित्य महाराज ने बारसूर में चन्द्रादित्य समुद्र नामक तालाब खुदवाया था तथा उसके तट पर चन्द्रादितेश्वर नामक शिवमंदिर का निर्माण कराया था। धारावर्ष जगदेकभूषण के पश्चात् इस राजवंश में मधुरान्तकदेव शासक हुआ था। यह शासक नागवंशी छिन्दक कुल से था किन्तु जगदेकभूषण से इनका क्या रिश्ता था ज्ञात नहीं है।

जगदलपुर के अंतर्गत राजपुर ग्राम से शक संवत 987 (1065 ईस्वी) का एक ताम्रपत्र लेख प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार भ्रमरकोटय मंडल में स्थित राजपुर नामक ग्राम के दान का उल्लेख है। यह भ्रमरकोटय मंडल या तो चक्रकोटय मंडल का दूसरा नाम हो सकता है या इसी के अंतर्गत एक भू-भाग। मधुरान्तकदेव भी अधिक समय तक राज्य नहीं कर सका और धारावर्ष जगदेकभूषण का बेटा प्रथम सोमेश्वर गद्दी पर आसीन हुआ। सोमेश्वर का सर्वप्रथम उल्लेख सन् 1069 ईस्वी के शिलालेख में हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि सोमेश्वर का राज्यकाल लगभग 30 वर्षों (सन् 1069-1097 ईस्वी) तक था। कहा जाता है कि सोमेश्वर को विन्ध्यवासिनी देवी की कृपा से चक्रकूट का राज्य प्राप्त हुआ था। उसने मधुरान्तक का वध भी किया था। सोमेश्वर ने अपने पराक्रम से छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) के 6096 गाँवों पर अपना अधिकार किया था। इस प्रकार सोमेश्वर ने दक्षिण कोसल के एक बड़े भू-भाग पर अधिकार कर लिया था। किन्तु प्रथम जाजल्लदेव के सन् 1114 ईस्वी के एक शिलालेख के अनुसार जाजल्लदेव ने सोमेश्वर को युद्ध में हराकर उसे, उसकी रानियों एवं मंत्रियों सहित बंदी बना लिया था जिसे उनकी माता गुण्डर महादेवी के अनुरोध पर छोड़ दिया था। सोमेश्वर और जाजल्लदेव का युद्ध सन 1111 ईस्वी के पूर्व हुआ था, क्योंकि सोमेश्वर की माता गुण्डरमहादेवी के नारायणपाल शिलालेख से ज्ञात होता है कि 1111 ईस्वी में प्रथम सोमेश्वर का बेटा कन्हर राज्य कर रहा था।

बस्तर क्षेत्र के अंतर्गत जतनपाल से प्राप्त 1218 शती ईस्वी के शिलालेख एवं दन्तेवाड़ा से प्राप्त 1224 शती ईस्वी के स्तंभलेख में जगदेकभूषण महाराज नरसिंहदेव का उल्लेख है। इसी प्रकार भैरमगढ़ के एक तेलगु शिलालेख में महाराजा जगदेकभूषण को माणिक्य देवी का भक्त बताया गया है। संभव है कि यह माणिक्य देवी दन्तेश्वरी देवी ही हो। जगदेकभूषण नरसिंह के समय से ही छिन्दक वंश का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता जैसा कि एक शिलालेख में जयसिंह नामक राजा का उल्लेख है। इसके पश्चात् 14वीं शती में प्राप्त ईस्वी में टेमरा शिलालेख के अनुसार राजा हरिशचन्द्र का नाम मिलता है, जो चक्रकोट में राज्य किया करता था। इसके पश्चात् इस वंश का कोई अभिलेख नहीं मिलता।

कवर्धा के फणि (नाग) वंश

छत्तीसगढ़ के गौरवशाली इतिहास में कवर्धा के फणि (नाग) वंश की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कवर्धा के नागवंशी शासक रत्नपुर के कलचुरि वंश का प्रभुत्व मानते थे। इनमें से कुछ शासकों के उत्कीर्ण लेखों में कलचुरि संवत का प्रयोग मिलता है। कवर्धा के फणि (नाग) वंश का विवरण कवर्धा से लगभग 16 कि.मी. दूर जंगल में स्थित मड़वा महल नामक मंदिर के निकट पड़े विशाल शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख विक्रम संवत 1409 (1349 ईस्वी) में उत्कीर्ण किया गया था। इसमें तत्कालीन राजा रामचंद्र द्वारा शिवमंदिर के निर्माण कराने का उल्लेख है। इस राजा रामचंद्र ने हैहयवंशी राजकुमारी अंबिका देवी से विवाह किया था। जिससे उसके अर्जुन और हरिपाल नामक पुत्र हुये थे। मड़वा महल स्थित शिलालेख में नागवंश की उत्पति के बारे में उल्लेख हुआ है जिसके अनुसार अहिराज नागों का पहला राजा था।

उसके पश्चात् क्रमशः राजल्ल, धरणीधर, महिमदेव, सर्ववदन (शक्तिचंद्र) गोपाल देव, नलदेव और भुवनपाल हुये। भुवनपाल के बाद उसका बेटा कीर्तिपाल राजसिंहासन पर आसीन हुआ। किन्तु राजा निःसंतान होने के कारण इनका भाई जयत्रपाल राजा हुआ। जयत्रपाल के बाद क्रमशः महीपाल, विषमपाल, जहय, जनपाल, यशोराज, कन्हड़देव और लक्ष्मीवर्मा ने राज्य किया। लक्ष्मीवर्मा के दो बेटे थे, जिसमें से ज्येष्ठ पुत्र खडगदेव राजसिंहासन पर बैठा और उसकी परम्परा में क्रमशः भुवनैकमल्ल, अर्जुन, भीम और भोज नामक नरेश हुये किन्तु भोज के बाद लक्ष्मीवर्मा के पुत्र चंदन का प्रपौत्र लक्ष्मण राजा हुआ जिसका बेटा प्रशस्ति का नायक रामचंद्र था। यह राजवंश सन् 1349 ईस्वी तक राज्य करता रहा। इनके आगे का इस वंश का कोई अभिलेख न मिलने के कारण कोई इतिहास नहीं मिलता।

काँकेर का सोमवंश

छत्तीसगढ़ में शासन करने वाले राजवंशों में काँकेर के सोमवंश का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कलचुरि राजा द्वितीय पृथ्वीदेव के समय के राजिम में प्राप्त हुये कलचुरि संवत 896 ईस्वी के शिलालेख से विदित होता है कि उसके सेनापति जगपाल ने काँकेर (वर्तमान काँकेर) का प्रदेश जीता था। तब से काँकेर के राजा रत्नपुर का प्रभुत्व मानकर अपने लेखों में कलचुरि संवत का प्रयोग करने लगे थे। काँकेर के सोमवंशी राजा पम्पराज के दो ताम्रपत्र लेख में पम्पराज के पिता सोमराज और सोम राज के पिता बोपदेव का नामोल्लेख है। इसी प्रकार पम्पराज की रानी लक्ष्मीदेवी, राजकुमार बोपदेव प्रथम (मंत्री) वाधु तथा अन्य पदाधिकारियों का भी उल्लेख है।

इसी वंश के राजा भानुदेव के राज्यकाल में शक संवत 1242 (1320 ईस्वी) में उत्कीर्ण किया गया एक अन्य लेख काँकेर से प्राप्त हुआ है, जो अब रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत है। इस अभिलेख में भानुदेव से पहले की छह पीढ़ियों के राजाओं का वर्णन है। तदनुसार सबसे पहले सिंहराज हुआ, उसका बेटा व्याध्र, उसका बेटा बोपदेव, बोपदेव का बेटा कृष्ण और कृष्ण का बेटा जैतराज हुआ। जैतराज का बेटा सोमचंद्र था जो भानुदेव का पिता था। ऊपर बताया जा चुका है कि राजा पम्पराज सोमराज का पुत्र था और बोपदेव का पौत्र था। इससे विदित होता है कि बोपदेव के समय में काँकेर के राज्य की दो शाखायें हो गयी थी, जिनमें से एक में पंपराज हुआ किन्तु उसके बाद के राजाओं के बारे में कुछ भी सूचना नहीं मिलती है। दूसरी शाखा में चार-पाँच पीढ़ियों के बाद भानुदेव के समय में उसके मंत्री नायक वासुदेव ने तीन मंदिर एवं दो जलाशयों का निर्माण करवाया था।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ में विभिन्न राजवंशों का गौरवशाली इतिहास मिलता है किन्तु इन शासकों की प्रशासनिक व्यवस्था क्या थी इसका विश्लेषण किया जाना आवश्यक है।

राजवंशों की प्रशासनिक व्यवस्था

छत्तीसगढ़ के इतिहास में प्रारंभिक काल से कलचुरि काल तक के राजवंशों की प्रशासनिक व्यवस्था में शासकों की भूमिका एवं उसके शासनकाल में हुये शासन प्रबंधों के संबंध में प्राप्त स्रोतों, अभिलेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों में जो जानकारियाँ मिलती हैं, तदनुसार संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :-

छत्तीसगढ़ में गुप्तोत्तरकालीन राजवंशों, नल, शरभपुरीय, पाण्डुवंश, नागवंश, सोमवंश, कलचुरि वंश आदि के लेखों से ज्ञात होता है कि उनके शासन काल में राजा के कई विभाग होते थे, जिन्हें राष्ट्र कहा जाता था। उदाहरण के लिये जयराज, सुदेवराज और व्याध्रराज नामक शरभपुरीय राजाओं के ताम्रपत्रों एवं लेखों में 'पूर्व राष्ट्र' और मेकल के पाण्डुवंशी राजा के बह्मनी ताम्रपत्र में 'उत्तर राष्ट्र, का उल्लेख है। इन विभागों को यदि आजकल की कमिश्नरी कहा जाये तो ठीक होगा। राष्ट्र या कमिश्नरी कई विषयों में विभाजित था। जो आजकल के जिले के समान होते थे। जैसा कि महाशिवगुप्त बालार्जुन के बारदुला ताम्रपत्र में कोशीर नंदपुर विषय का और भरतबल के बह्मनी ताम्रपत्र में उत्तर राष्ट्र में स्थित पंचगर्त विषय का उल्लेख मिलता है। 'विषय' से छोटे 'आहार', 'भोग' और 'भुक्ति' होते थे परन्तु इनका परस्पर संबंध क्या था यह स्पष्ट नहीं है। भोग एवं भुक्ति में नगर-उपनगर तथा बहुत से ग्राम हुआ करते थे किन्तु उसके अंतर्गत कितने ग्रामों

का समावेश होता था उसकी संख्या के बारे में जानकारी स्पष्ट नहीं है। 'विषय' के अधिकारी को विषयपति, कभी कभी राजा को भी कहा जाता था। बालार्जुन के सेनकपाट शिलालेख के अनुसार ब्राह्मण शिवरक्षित नव्यासी नामक विषय का राजा था। भोग के अधिकारी को भोग-पति कहा जाता था। जैसा कि शरभपुरीय शासक नरेन्द्र के पिपरदुला शिलालेख में राहुदेव नामक भोगपति ने नन्दपुर भोग में स्थित शर्करापद्र नामक ग्राम का दान किया था और राजा नरेन्द्र ने इस दान का अनुमोदन किया था अर्थात् भोगपति या विषय-पति जब किसी ग्राम का दान करते थे उसे महाराजा से अनुमोदन कराना आवश्यक होता था।

कलचुरि राजवंश में देश या जनपद को कई मण्डलों में विभक्त किया गया था। जैसा कि त्रिपुरी के कलचुरि राजा कोकल्ल के 18 बेटों में से ज्येष्ठ ही त्रिपुरी का राजा हुआ था। उसने अपने छोटे भाइयों को निकटवर्ती मण्डलों का मण्डलापति बनाया था। उसी प्रकार छत्तीसगढ़ के लेखों में कोरामंडल, अमरमण्डल, मध्यमंडल, तलहारिमंडल का उल्लेख मिलता है। छत्तीसगढ़ के कलचुरि राजवंश में मंडल का अधिपति माण्डलीक अथवा मण्डलेश्वर कहलाता था। नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में बताया गया है कि माण्डलिक राजा के राज्य में 50 हजार ग्राम होते थे। माण्डलिक से बड़ा महामण्डलेश्वर होता था जो एक लाख गाँवों का अधिपति होता था। महामण्डलेश्वर सामन्त या राजा हुआ करते थे। प्रथम पृथ्वीदेव के अमोदा में प्राप्त हुये ताम्रपत्र लेख से विदित होता है कि उसकी स्थिति महामण्डलेश्वर की थी।

छत्तीसगढ़ के इतिहास से ज्ञात होता है कि यहाँ प्रथम शती ईस्वी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक राजतंत्रीय शासन पद्धति चल रही थी। राज्य प्रशासन तंत्र का प्रमुख होता था और उसका प्राधिकार सर्वोपरि होता था किन्तु उसे भी नियमों और कानूनों का पालन करते हुये लोक कल्याण के कार्य करने पड़ते थे। परन्तु राजा के दुर्गुणी एवं अयोग्य होने पर उसे गद्दी से उतार कर योग्य व्यक्ति को राजा भी बनाया जा सकता था। राजा शासन प्रबंध चलाने के लिये मंत्रियों एवं अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था। उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण भी करता था और कर्तव्य विमुख होने पर उसे दण्ड भी दिया जाता था। दूसरी-तीसरी शती ईस्वी के किरारी काष्ठ स्तंभ लेख (किरारीधोड़ी, बिलासपुर से प्राप्त) में नगररक्षी, सेनापति, प्रतिहार, गणक, गृहपति, भाण्डागारिका, हस्त्यारोह, अश्वारोह, पादमूमिक, रक्षिकमहानसिक, हस्तिमक, धावक, सौगंधक, गोमाण्डलिक, पलवीविदपालक, लेखहारक, कुल पुत्रक और महासेनानी नामक पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है।

कौटिल्य के अनुसार राज्य के सात अंग या प्रकृतियाँ होती थीं। जैसे मानव शरीर के अवयव-मस्तक, नेत्र, कर्ण, मुख, मन, हाथ और पैर। ऐसा जान पड़ता है कि छत्तीसगढ़ के कलचुरिकालीन राज्य भी राजतंत्र के सप्तांग सिद्धान्त पर आधारित थे। स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोश, दण्ड और सुहत। इन सात प्रकृति वाले राज्य को मनु ने सप्तांग राज्य कहा है। सप्तांग राज्य में राजा प्रर्मन्य के समान लोक का आधार होता है वह सर्वधर्म के अनुसार प्रजा का पालन करता है अर्थात् छत्तीसगढ़ के कलचुरि नरेश धर्म-परायण तो थे ही परन्तु प्रजा के हित कार्यों में उनकी विशेष रुचि थी। राजा राजकार्य में योग्य एवं गुणी मंत्रियों की नियुक्ति करते थे। राजिम और खरौद शिलालेखों में देवराज तथा गंगाधर नाम के मंत्रियों की योग्यता का गुणगान किया गया है। कलचुरिकालीन छत्तीसगढ़ सभी प्रकार से सम्पन्न एक वैभवशाली राज्य था भारत के प्रमुख राज्यों में उसकी गिनती होती थी। शासन व्यवस्था को चलाने के लिये सम्पूर्ण राज्य को विभिन्न मण्डलों में बाँट दिया गया था जिनमें से कोरोमंडल, ययपुर मंडल, मध्यमंडल, तलाहारिमंडल, एवडिमंडल, सागतमंडल आदि का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है। कलचुरि राजवंश के नरेशों ने छत्तीसगढ़ में तुम्माण, रतनपुर, जाजल्लपुर, विकर्णपुर, मल्लालपत्तन, तेजल्लपुर, कोशगढ़, तख्तपुर, खल्लारी आदि नगर बसाये थे वहीं शरभपुरी राजवंश में शरभपुर तथा श्रीपुर आदि नगरी स्थापित करने की जानकारी मिलती है। इसमें अधिकतर नगर एवं दुर्ग थे। कलचुरि राजा वाहरेन्द्र के शिलालेख से विदित होता है कि उसने आवश्यकतानुसार अपनी राजधानी रत्नपुर से उठाकर कोसंगा के किले में स्थापित की थी और वहाँ धनधान्य का बड़ा संग्रह किया था। कोष राज्य का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था उसके बगैर राज्य की आंतरिक सुरक्षा नहीं की जा सकती थी और न ही शत्रुओं से बचाव। कलचुरि नरेश अपने राजकोष की वृद्धि में निरन्तर

प्रयासरत रहते थे, आंतरिक आय के अतिरिक्त शत्रु राज्यों की लूट आदि से भी बहुत सी आय हो जाती थी। राजकोष का आधा भाग सेना में व्यय किया जाता था। आय का छठवाँ भाग आपत्तिकाल के लिये रखा जाता था। आय का शेष भाग दान, जनहित, प्रशासन व्यय, तथा राजपरिवार के कार्यों में समान रूप से खर्च किया जाता था। कोष और सेना के समान मित्र राजा भी सुयोग्य शासन के लिये अत्यंत आवश्यक होता है। छत्तीसगढ़ के कलचुरियों के मुख्य शत्रु बस्तर के नागवंशी और उत्कल के गंगवंशी नरेश थे। इसके विपरीत चेदि, कान्यकुब्ज और जेजाकभुक्ति के नरेश उनके मित्र थे।

कलचुरियों ने लगभग 700 वर्ष तक एकछत्र शासन किया। उनके काल की मूर्तिकला, वास्तुकला, शिल्पकला के अनुपम धरोहर आज भी विद्यमान हैं। उनके द्वारा किये गये शाासन प्रबंध तथा उनके पूर्व एवं समकालीन राजवंशों द्वारा किये गये छत्तीसगढ़ में निर्माण कार्य जलाशय, मंदिर, आदि आज भी विद्यमान हैं जो उनकी कलाप्रियता एवं जनहित में किये गये कार्य का परिचय देते हैं। इनकी प्रशासनिक क्षमता तत्कालीन छत्तीसगढ़ के राजवंशों की कुशाग्र बुद्धिमता, कुशल प्रबंधन एवं उनकी दूरदर्शिता का परिचय देकर गौरवशाली इतिहास बनाती है।

खण्ड–3 मध्यकालीन इतिहास

अध्याय 8

मराठाकालीन छत्तीसगढ़

मराठों का शासन

छत्तीसगढ़ में सात सौ वर्षों तक एकछत्र राज्य करने वाला कलचुरियों का राज 1740 ईस्वी के आसपास क्रमशः सूर्यास्त की ओर अग्रसर हो गया था। इस वंश के अंतिम शासक रघुनाथ सिंह को गद्दी पर बैठे 8 वर्ष हुये थे कि नागपुर के रघुजी राव भोंसले ने उड़ीसा और बंगाल पर चढ़ाई करने की योजना बनाई और 1742 ई. में अपने सेनापति भास्कर पंत को लगभग 30 हजार सैनिक साथ देकर अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये रवाना किया। भास्कर पंत ने सेना सहित बुंदेलखण्ड होते हुये पेंडरा की ओर से छत्तीसगढ़ में प्रवेश किया और सैनिकों सहित रत्नपुर को बिना युद्ध किये ही अपने अधिकार में ले लिया। कहा जाता है कि वास्तव में हैहयवंशी शासक रघुनाथसिंह 60 वर्ष की उम्र में गद्दी पर आसीन हुये थे, वे 8 वर्ष तक शासन करते रहे इसी बीच उनके एकमात्र पुत्र का निधन होने से वे शोकाकुल हो गये और राज्य संचालन से उनका मन उचट गया था एवं वे वृद्धावस्था के कारण भी शासन के योग्य नहीं रह गये थे। इसी बीच रघुनाथ सिंह के किले में नागपुर के भोंसले के सेनापति भास्कर पंत ने किले में आक्रमण कर तोप से एक हिस्से को उड़ा दिया। रघुनाथसिंह की दो रानियाँ थीं पहली लक्ष्मण कुँवर दूसरी पद्म कुँवर जो बस्तर नरेश भुवनेश्वरदेव की पुत्री थी। इन दोनों रानियों ने आपस में सलाह करके किले के बुर्ज से सफेद झण्डा दिखाकर लड़ाई बंद करा दी और किले के फाटक खोल दिये। इस प्रकार भोंसले के हाथ में रत्नपुर का शासन आ गया। भास्कर पंत ने रत्नपुर से एक लाख वसूल किया और सारा राजकोष एवं तोशक खाना हड़प लिया। परन्तु राजा रघुनाथसिंह पर इतनी कृपा दिखाई कि उसे नाममात्र का राजा बने रहने दिया और भोंसले शासन की ओर से कल्याणगिरी गोसाई को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर वहाँ से रवाना हो गया। राजा रघुनाथसिंह और कल्याणगिरी में ज्यादा नहीं पटी अंततः भास्कर पंत के वापस जाते ही रघुनाथसिंह ने कल्याणगिरी को निकाल बाहर किया किन्तु स्वयं भी ज्यादा दिन राज्य नहीं कर पाया। रघुनाथसिंह के बड़े भाई राजसिंह उनकी मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर बैठे वे भी ज्यादा दिन तक नहीं बैठ पाये कि उनकी मृत्यु हो गयी। राजसिंह मृत्यु के पश्चात् मोहनसिंह को गद्दी पर बैठाना चाहते थे। मोहनसिंह को अवसर मिला और शासन की बागडोर उन्होंने अपने हाथ में ले ली। मोहनसिंह (1745–1785 शती ईस्वी) का कलचुरि राजवंश की रतनपुर की गद्दी पर सन् 1745 ईस्वी में रघुजी भोंसले के निर्देश पर रघुनाथसिंह को गद्दी से उतार कर राजतिलक किया गया था। मोहनसिंह 1745–1785 ई. तक मराठा शासन के अधीन रहकर रतनपुर में राज्य करता रहा। मोहनसिंह कौन था? इस संबंध में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। बाबू रेवाराम के अनुसार मोहनसिंह कौन राजपूत था–हैहयवंशी। यह राजा रतनपुर के वास्ते हिस्सा लेने बखेड़ा करके क्षत्री से भोंसला हो गया था। वास्तविकता तो यह है कि भोंसले राजा रघुजी के पास नागपुर जाकर मोहनसिंह ने राजा की इतनी रहनुमाई की कि राजा उसके व्यवहार एवं व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसे अपना प्रियपात्र बना लिया था। फलतः रतनपुर के तत्कालीन शासक की अक्षमता एवं अयोग्यता के कारण उसे हटाकर मराठा शासन के अंतर्गत छत्तीसगढ़ को आधिपत्य में लेकर मोहनसिंह को रतनपुर की गद्दी पर आसीन कर दिया।

भोंसले राजवंश

भारतीय इतिहास में भोंसले राजवंश का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। मराठावीर क्षत्रपति शिवाजी भोंसले वंश में पैदा हुये थे। एक मराठी इतिहासकार के अनुसार 'चित्तोड़ त्याग देने के बाद सिसौदिया शाखा ने 'भोसे' या भोसवत नामक ग्राम में अपनी बस्ती स्थापित की थी, अतएव ये 'भोसे' से 'भोंसले' कहलाये। अतः इससे प्रमाणित होता है कि भोंसले वंश के आदिपुरुष चित्तौड़ के सिसौदिया वंशी राजपूत ही थे। नागपुर के भोंसलों का विस्तृत इतिहास परसोजी भोंसला से आरंभ होता है। परसोजी प्रपितामह बाबाजी के भाई थे। परसोजी से नागपुर के भोंसलों का वंश चला। छत्रपति शिवाजी के पराक्रमी एवं शक्तिशाली होने के साथ ही सन् 1641 ईस्वी के बीच मराठों के हृदय में ऐसी लालसा हुई कि पूरे भारतवर्ष में मराठों का एकछत्र साम्राज्य स्थापित हो जाये। इसे 'हिन्दु पद पदशाही' की संज्ञा दी जाये, इसी भावना से प्रेरित होकर मराठों ने शिवाजी को 'छत्रपति' की उपाधि से अलंकृत किया। शिवाजी की सेना में एक बड़ा शूरवीर और आज्ञाकारी सैनिक साबाजी भोंसले था। यह शिवाजी के वंश की एक शाखा का प्रतिनिधित्व भी करता था तथा यह परसोजी का भाई था। परसोजी आगे चलकर नागपुर के भोंसले राज्य का संस्थापक बना। शिवाजी ने साबा जी की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे 'सेना साहब सूबा' की उपाधि से विभूषित किया और उसे गोंडवाना और बरार से चौथ वसूलने के लिये अधिकार पत्र दे दिया। साबाजी ने अपने भाई परसोजी को इन दोनों राज्यों में चौथ वसूलने का कार्य सौंपा। सन् 1699 ईस्वी में छत्रपति शिवाजी का निधन हो गया तब इसने शिवाजी के उत्तराधिकारी से इस अधिकार पत्र का नवीनीकरण करा लिया और छत्तीसगढ़ क्षेत्र का उल्लेख कराते हुये आंध्रप्रदेश को भी शामिल करा लिया। 'सेना साहब सूबा' का अधिकार क्षेत्र विस्तृत हो गया। ज्ञात हो कि शिवाजी के शासनकाल में परसों जी एक कुशल घुड़सवारों का सरदार था जो बरार क्षेत्र में लूटमार मचाकर नियंत्रित करता था। उन दिनों मुगलों एवं मराठों की वैमनस्यता 'साँप और नेवले' के स्तर की थी।

मुगल शासक औरंगजेब ने शिवाजी के निधन हो जाने के बाद उसके पुत्र संभाजी को मरवा डाला था तथा संभाजी के पुत्र शाहू को कैद कर रखा था। लेकिन जब सन् 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु हो गयी तब उसके उत्तराधिकारी शाहू जी को स्वराज्य का पूर्ण हक प्रदान कर तथा दक्षिणी प्रदेशों से चौथ वसूल करने का अधिकार देकर उसे घर वापस चले जाने की अनुमति दे दी। दिल्ली से वापस होने के साथ ही नर्मदा नदी के तट पर परसोजी भोंसला 15 हजार सैनिक सवार लेकर उससे जा मिला। शाहू ने इसका प्रतिदान इस प्रकार दिया कि जब उसे सतारा की गद्दी प्राप्त हो गयी तब उसने परसोजी को 'सेना साहब सूबा' का पद प्रदान करते हुये बरार, चाँदा, और गोंडवाना प्रान्त से चौथ वसूल करने हेतु अधिकार पत्र दिये। सन् 1715 ई. में परसोजी का निधन हो जाने पर उसका पुत्र कान्होजी, मराठा शासन का उत्तराधिकारी बना।

इस समय तक नागपुर के भोंसला परिवार में तीन शाखायें फूट चुकी थीं। कान्होजी को जब पुत्ररत्न की प्राप्ति नहीं हुई तब उसने अपने भाई बापूजी के पुत्र रघुजी जिसका जन्म 1698 ई. में सतारा जिले में पाण्डववाड़ी ग्राम में हुआ था, का पुत्रवत पालन किया। इसी बीच रघुजी स्वयं भी अपने काका कान्होजी की देखरेख में सैनिक शिक्षा प्राप्त करता रहा और संगठन का कार्य सीखता रहा। लेकिन कान्होजी को इसी बीच पुत्र की प्राप्ति हो गयी तब रघुजी ने पाया कि अब उसको पूर्व जैसा स्नेह एवं सम्मान नहीं मिल रहा था। अतएव वह अपने काका (कान्होजी) का आश्रय छोड़कर सौ सैनिकों सहित देवगढ़ के राजा चाँद सुल्तान के पास चला गया। जहाँ उसे यथेष्ठ आदर मिला परन्तु वहाँ भी वे ज्यादा दिन नहीं रुक पाये और वापस सतारा पहुँच गये। इधर नागपुर स्थित भोंसलों की तीनों शाखाओं में परस्पर एकता नहीं थी सरंजाम के संबंध में आपस में बहुत झगड़े होने लगे थे। फलतः छत्रपति शाहू ने सरंजाम का वितरण समानता के आधार पर कर दिया और ऐसी व्यवस्था कर दी कि एक–दूसरे के अधिकार क्षेत्र में कोई उपद्रव न करे। उधर सतारा में रघुजी ने छत्रपति शाहू की निकटता प्राप्त कर उसे खूब प्रसन्न कर लिया। इसी समय घटी घटना में शेर के शिकार में शाहू की जान बचाने का अवसर रघुजी को मिला तब से शाहू उसे और अधिक मानने लगा और शाहू ने अपनी छोटी रानी की चचेरी बहन शालू बाई जो शिर्के खानदान की थी उससे रघुजी का विवाह कर अपना संबंधी बना लिया। सन् 1734 ई. के लगभग शाहू एवं कान्होजी में अनबन हो गयी। कान्होजी ने विद्रोह कर दिया। अतः उसे दबाने के लिये

उसके भतीजे रघुजी को ही भेजना पड़ा। सन् 1725 ई. में देउरगाँव नामक स्थान में चाचा–भतीजे का युद्ध हुआ और कान्होजी बंदी बना लिया गया। इससे प्रसन्न होकर शाहू ने रघुजी को 'सेना साहब सूबा' का पद प्रदान कर किया।

रघुजी राव भोंसला एवं मुगल

छत्रपति शाहू जी ने रघुजी को 'सेना साहब सूबा' का पद प्रदान किया था उस समय शाहू ने यह शर्त करा ली थी कि प्रतिवर्ष उसे नौ लाख रुपये नजराना देना होगा और राज्य की सेवा के लिये 15 हजार जवानों की सेना तैयार करेगा, तब उसे (सन् 1730 ई. में) गोंडवाना से चौथ वसूल करने का अधिकार पत्र मिला। सेना साहब सूबा के पद पर रघुजी (प्रथम) की जिन दिनों नियुक्ति की गयी थी, उन दिनों नागपुर में गोड़ों का राज्य था और राजा था चाँद सुल्तान जो राजा बख्तबुलंद का पुत्र था। बख्त बुलंद मुसलमानी नाम है जो इसका गोड़ से धर्म परिवर्तन कराकर औरंगजेब द्वारा रखा गया था। चाँद सुल्तान की सन्1735 ई. में अचानक मृत्यु हो गयी तो उसके नाजायज पुत्र वलीशाह ने गद्दी के लिये झगड़ा शुरू कर गद्दी के जायज उत्तराधिकारी मीर बहादुर को मरवा डाला। उस समय मीर बहादुर के दो छोटे भाई अकबर शाह और बुरहानशाह नाबालिग थे, ये कुछ करने में लाचार थे। ऐसी विषम परिस्थिति में माँ रतन कुँवर ने रघुजी से मदद माँगी। इस मदद के बदले उसने रघुजी को 10 लाख रुपये प्रदान किये और गोंडवाना राज्य का तीसरा हिस्सा प्रदान किया। यह घटना सन्1737 ई. की है, जब रघुजीको एकाएक लाभ प्राप्त हो गया और वह गोंड़ से परिवर्तित मुसलमान नाबालिग राजाओं का संरक्षक बन कर नागपुर में निवास करने लगा। इसी बीच एक आकस्मिक घटना घटी कि अकबर और बुरहानपुरशाह दोनों भाई आपस में लड़ पड़े तब अकबर को विष देकर मरवा दिया गया, बदले में अकबर का हिस्सा रघुजी को मिला। इतिहासकार ग्रांट डफ के अनुसार बुरहानशाह को रतनपुर की जागीर दी गयी, जिसकी आय से उनका जीवन निर्वाह होता रहा। बुरहानशाह के वंशज 18वीं शती ईस्वी के अंत तक नागपुर के दरबार में रहकर स्थानीय जागीरों पर आश्रित रहकर उपभोग करते रहे। परिणामस्वरूप सन्1741ई. में रघुजी (प्रथम) नागपुर राज्य का वैधानिक शासक बन गया, इससे उसे मनोवांछित लाभ यह हुआ कि उड़ीसा और बंगाल पर चढ़ाई करने के लिये उसे छत्तीसगढ़ प्रवेश द्वार के रूप में प्राप्त हो गया। जैसा कि पूर्व में उल्लेख हुआ है कि रघुजी उड़ीसा और बंगाल में आक्रमण हेतु छत्तीसगढ़ से होकर आगे बढ़े थे।

रघुजी भोंसले

भोंसले राजा रघुजी बड़े निपुण एवं अग्रसोची शासक थे। ये कुशाग्र बुद्धि होने के कारण एक कुशल शासक थे। इनकी दो ब्याहता रानी थीं। मुधोजी और बिम्बा जी बड़ी रानी से पैदा हुये। जानोजी तथा सावाजी छोटी रानी से पैदा हुये थे। रघुजी ने अपने राज्य को चार भागों में बाँटकर अपने चारों पुत्रों को उनके हिस्से का राज्य सौंप दिया था। जानो जी को नागपुर का राज्य, मुधोजी को चाँदा का राज्य, सावजी को दारवा और बरार और बिम्बाजी को छत्तीसगढ़ का राज्य बँटवारे में दिया गया। सन् 1755 ई. में रघुजी का निधन हो गया, उस समय उनकी आयु 60 वर्ष की थी। रघुजी की मृत्यु के समय उसकी 13 रानियाँ थीं जिसमें से दो ब्याहता और पटरानियाँ थीं। रघुजी की मृत्यु के समय उनकी चिता में 6 रानियाँ सती हुई थीं। रघुजी के निधन के बाद उनके चारों पुत्रों को बँटवारे में मिले राज्य को पूना के पेशवा ने मान्यता प्रदान की। क्योंकि नागपुर के भोंसले स्वतंत्र रहने के बावजूद पूना के पेशवा की सार्वभौमिकता अर्थात् केन्द्रीय अधिकार एवं नियंत्रण उन पर था। रघुजी के बाद पेशवा ने जानो जी को 'सेना साहब सूबा' का पद प्रदान किया था जबकि मुधोजी को 'सेना धुरन्धर' के पद से विभूषित किया गया। किन्तु जानोजी और मुधोजी का पारस्परिक मनमुटाव होने लगा और दोनों भाई आपस में लड़ पड़े। इसमें मुधोजी की हार हुई और वह भागकर चाँदा चला गया। बिम्बाजी, मुधोजी का पक्षधर था अतएव उसे भी भाई के साथ चाँदा जाना पड़ा। रतनपुर का राज्य बिम्बाजी को बँटवारे में प्राप्त हुआ था जिसकी राज्य व्यवस्था दीवान नीलकंठ द्वारा की जाती थी। बाद में उसके स्थान परधोंडो महादेव को दीवान नियुक्त किया गया। इस नये दीवान के साथ कई मराठे सरदार छत्तीसगढ़ भेजे गये। जिनमें प्रमुख थे :– रामचंद्र बक्षी,

माधवरामचंद्र मजुमदार, कृष्णचन्द्र उपाध्ये, मशार निल्हे, हरबाजी पंत–फड़नवीस, कृष्णाजी मोहिते कादर खाँ और अहमद खाँ आदि बिम्बाजी भी बाद में रतनपुर चले गये। मोहनसिंह जो रघुजी के काफी करीब माने जाने थे, रघुजी की मृत्यु के बाद भोंसलों से स्वतंत्र होने की चेष्टा करने लगे और बिम्बाजी के कट्टर विरोधी बन बैठे। सन् 1758 ई. में छत्तीसगढ़ राज्य बिम्बाजी से छीन लेने के लिये रघुजी भोंसले ने रायपुर के समीप सेना एकत्र की लेकिन भाग्य ने साथ नहीं दिया, वे अचानक बीमार पड़ गये जिसमें उनकी मृत्यु हो गयी।

हैहयवंशी कलचुरि (लहुरी शाखा) राजवंश का अंत

छत्तीसगढ़ में 700 वर्षों तक एकछत्र राज्य करने वाले कलचुरि राजवंश की हैहयवंशी कलचुरि (लहुरी शाखा) रायपुर के वंशज के अंतिम शासक अमरसिंह राज्य कर रहा था। उसे न तो भोंसले शासकों की ओर से भास्कर पंत ने छेड़ा और न ही मोहनसिंह ने छेड़ा, फलस्वरूप 1750 ई. तक एकछत्र राज्य करता रहा। किन्तु रघुजी के मृत्यु के बाद मराठों ने इन्हे पदच्युत कर दिया और रायपुर, राजिम, तथा पाटन ये तीन परगने जागीर के रूप में अमरसिंह को प्रदान किये। जिसके बदले अमरसिंह को सात हजार रुपये मराठों को देना पड़ा। कलचुरि शासक अमरसिंह की 1753 ई. में मृत्यु हो गयी। मृत्यु के समय उनका पुत्र शिवराजसिंह तीर्थयात्रा पर गया हुआ था उसके लौटने के पहले ही अवसर का लाभ उठाकर मराठों ने उनके तीनों परगनों को हथिया लिया। इस प्रकार हैहयवंशी कलचुरि रायपुर राजवंश का अंत हो गया।

बिम्बाजी जब छत्तीसगढ़ के शासक बने तब उसने सन् 1757 ई. में शिवराजसिंह को बड़गाँव नामक गाँव (महासमुंद तहसील में स्थित) माफी में दिया और परगनों के अंतर्गत प्रति गाँव पीछे एक रुपया वसूल करने का अधिकार प्रदान कर दिया जो सन 1822 ईस्वी तक चालू रहा। तत्पश्चात् शिवराजसिंह के पुत्र रघुनाथसिंह को प्रति गाँव एक रुपया के बदले पुरैना, नाँदगाँव एवं पालेसर गाँव बिम्बाजी ने उसके जीवन व्यापन के लिये माफी में दे दिये। इस प्रकार छत्तीसगढ़ में हैहयवंशी कलचुरि शासक (रायपुर शाखा) का अंत हो गया। कलचुरि शासकों ने 700 वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन कर गौरवशाली इतिहास रचा, वही राजवंश 17वीं शताब्दी के अंत में सूर्यास्त की ओर अग्रसर हो गया। परिणामस्वरूप छत्तीसगढ़ में नये राजवंश की स्थापना हुई, जिसे छत्तीसगढ़ के इतिहास में मराठा राजवंश कहा जाता है।

बिम्बाजी भोंसले (1757–1787 शती ईस्वी)

मराठा शासक बिम्बाजी भोंसले के छत्तीसगढ़ में 1757–1787 शती ईस्वी लगभग 30 वर्षों तक शासन करने की जानकारी मिलती है। बिम्बाजी भोंसले छत्तीसगढ़ में मराठा साम्राज्य का संस्थापक था। अपने भाई मुधोजी, नागपुर के अधीनस्थ होते हुये भी एक स्वतंत्र शासक था। बिम्बाजी का पृथक् दरबार, पृथक् सेना, और पृथक् सलाहकार थे। जिसके कारण नागपुर शासन किसी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। बिम्बाजी ने राज शासन के कुशल संचालन के लिये विशेष पदों पर मराठों की नियुक्ति की। प्रारंभ में तो शासन में नियंत्रण करने के लिये छत्तीसगढ़ की जनता पर दमन किया किन्तु बाद में उदारता का व्यवहार कर जनता में लोकप्रिय भी हो गये। रतनपुर की पहाड़ी पर इन्होंने राममंदिर की स्थापना की जिसके नाम से यह पहाड़ी आज भी रामटेकड़ी एवं रामपहाड़ी के नाम से विख्यात है। भोंसले सामन्त भास्कर पंत द्वारा रतनपुर के किले का दरवाजा तोप से उड़ाया गया था उस हिस्से का इन्होंने जीर्णोद्धार करवाया जो सेमर दरवाजा के नाम से विख्यात है। बिम्बाजी को रतनपुर राज्य से 3 लाख रुपये की वार्षिक लगान की आय थी वहीं पूरे छत्तीसगढ़ में 6 लाख रुपये की वार्षिक आय मराठा शासन को प्राप्त होती थी।

बिम्बाजी और जमींदारी

बिम्बाजी को लगभग 1769 ईस्वी में भासले शासक नागपुर से उलझना पड़ा था। उस समय छत्तीसगढ़ का शासन दीवान के भरोसे चलता रहा। इसका लाभ उठाकर छोटी–छोटी रियासतों एवं जमींदारों ने सिर उठाना प्रारंभ कर

दिया था। ये भोंसले शासन से स्वतंत्र होना चाहते थे क्योंकि इस शासन में भोंसले साम्राज्य का कड़ा विरोध करने वाले जमींदारों में कोरबा का जमींदार फत्तेसिंह प्रमुख था। वह कभी चाँपा पर तो कभी छूरी पर चढाई करता था। अत कोरबा जमींदार को दबाने के लिये बिम्बाजी को कड़ा परिश्रम करना पड़ा। उसे नियंत्रण में करने के लिये अरपा नदी (बिलासपुर) के तट पर एक किले का निर्माण करवाया परन्तु यह कार्य अधूरा रहा। अंत में कोरबा जमींदारी में सेना भेजकर उसे परास्त कर नियंत्रित किया तथा उसे दो हजार रुपये वार्षिक लगान बढ़ाकर दण्डित किया। रायपुर राज्य के सिरपुर जमींदार ने भी विरोध करना प्रारंभ किया तो इस जमींदारी को सोनाखान जमींदारी में मिला दिया। इससे सोनाखान के जमींदार ने रुष्ट होकर सिरपुर जमींदारी गुल्लु के जमींदार जोहरसिंह गोड़ को दे दी। परन्तु ये भी भोंसले शासन के विरोधी निकले। तब इससे सिरपुर जमींदारी छिनकर तरेंगा के अग्रवाल दाउ को भेंटकर दी और इसे 'ताहुतदार' का पद प्रदान किया गया। धमधा के गोड़ जमींदार रेवाराय ने भी भोंसलों से विद्रोह किया किन्तु वह मराठों से पराजित इसलिये हो गया कि एक गद्दार कर्मचारी ने किले का दरवाजा खोल दिया। फलतः मराठा सेना ने किले में घुस उसे पराजित कर दिया। खैरागढ़ के राजा खड्गराय ने भी सन् 1755 ई. में स्वाधीनता का झण्डा फहराया और लाँजीं पर हमला कर दिया परन्तु उसे भी पराजय का सामना करना पड़ा और 15 सौ रुपये का वार्षिक लगान अधिरोपित किया गया। सन् 1759 ई. में खड्गराय की मृत्यु हो गयी तब उसे पुत्र टिकैतराय को गद्दी देने के उपलक्ष्य में यह लगान बढ़ाकर 8 हजार रुपये वार्षिक कर दिया गया। उधर डोंगरगढ़ के जमींदार ने मराठा शासन का विरोध किया तो टिकैतराय ने नाँदगाँव के राजा मोतीराम की मदद से उसे दबा दिया। नतीजा यह हुआ कि डोंगरगढ़ राज्य को खैरागढ़ में मिला दिया गया, और वार्षिक लगान की राशि बढ़ाकर 44 हजार रुपये कर दी गयी। टिकैतराय ने अपनी मृत्यु के पश्चात् नाबालिग पुत्र ब्रजपालसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया। तब डोगरगढ़ के जमींदार एवं नाँदगाँव के राजा आपस में झगड़ने लगे फलस्वरूप डोंगरगढ़ जमींदारी को खैरागढ़ एवं नाँदगाँव में बराबर हिस्से में बाँट दिया गया। इधर बिम्बाजी को रतनपुर राज्य का हिस्सा मिला उसमें नीलकंठ को दीवान नियुक्त किया गया था। नीलकंठ ने सन् 1756 ई. में बस्तर पर चढ़ाई कर दी, जब वहाँ का शासक दलपतदेव था। दलपतदेव परास्त होने पर बस्तर से भागकर जैपुर जमींदारी में चला गया। इससे नीलकंठ क्रोधित होकर बस्तर राजघराने के कुछ व्यक्तियों को बंदी बनाकर ले आया। राजा दलपतदेव की मृत्यु हो गयी और उसके पुत्र दयादेव ने मराठों की अधीनता स्वीकार कर ली। उसे मराठों ने बस्तर की सत्ता सौंप दी। भोंसला शासकों का ध्यान सरगुजा रियासत पर गया और 1758 ईस्वी में सरगुजा रिसासत पर हमला बोल दिया। उस समय सरगुजा का राजा अजीतसिंह था। अजीतसिंह ने मराठा शक्ति के सामने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। अतः सरगुजा रियासत की उदयपुर, चाँद–भखार, जशपुर एवं कोरिया जमींदारियों को अधिकार में ले लिया तथा पेण्डरा जमींदारी पर भी भोंसलों ने चढ़ाई कर अपने अधीनस्थ कर लिया। इस प्रकार मराठों ने छत्तीसगढ़ में शनैः–शनैः अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। इन्होंने राजनीति की अपेक्षा शोषण को अधिक महत्त्व दिया। जमींदारों से नजराना वसूल कर उन्होंने सरगुजा, सारंगढ़, कवर्धा, राजनाँदगाँव, खैरागढ़, छुईखदान आदि के शासकों को 'राजा' पद प्रदान कर दिया। रायगढ़ के राजा दरियायसिंह को 'राजा' पद की मान्यता दे दी। इसके पूर्व यह राज्य सारगढ़ के अधिकार में था। इधर छुईखदान में तुलसीदास को, कवर्धा में महाबलीसिंह को मराठों ने 'राजा' की उपाधि दी। सन् 1778 ई. में बालौद को भी मराठों ने हासिल कर लिया। छत्तीसगढ़ के मराठा शासन में जिन व्यक्तियों ने अमलदारी वापस करने में विशेष रूप से योगदान दिया उनमें रायपुर के रामचंद्र दानी और जगन्नाथ, लवन के जगतसिंह, धमतरी के विचपुरी गुसाई, दुर्ग जिले के मिन्होरी गाँव का परगनिहा, दाढ़ी का गोड़ जमींदार, जामुल का बनिया, नंदकठी के अग्रवाल, तरेंगा के ताहुतदार, पेंडरा के ध्यानसिंह आदि प्रमुख थे। छत्तीसगढ़ में बिम्बाजी ने अपने जीवनपर्यन्त मराठा शासन का विस्तार करने में लगाया था। इस साम्राज्य को स्थापित करने के लिये बिम्बाजी ने जमींदारो एवं रियासतों का शोषण भी किया था। बिम्बाजी की दो रानियाँ थीं–आनंदीबाई और उमाबाई। बिम्बाजी की मृत्यु 1787 ई. में रतनपुर में हुई थी। उस समय छोटी रानी उमाबाई, बिम्बाजी की चिता में जलकर सती हो गयी और बड़ी रानी आनंदीबाई ने बिम्बाजी का राजकाज सम्भाल लिया।

आनंदीबाई

छत्तीसगढ़ में मराठा शासन का साम्राज्य विस्तार करने वाले बिम्बाजी एक कुशल प्रशासक थे। इन्होंने मराठा शासन को छत्तीसगढ़ में स्थापित कर सुदृढ़ता प्रदान की थी। किन्तु बिम्बाजी निःसंतान थे। अतः इनका कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण इनकी मृत्युपरान्त इतने बड़े शासन को सम्भालने वाला कोई न था। ऐसी विषम परिस्थिति में उनकी बड़ी रानी आनंदीबाई ने राजकाज सम्भाल लिया। ये एक स्त्री होते हुये भी कुशल प्रशासिका थीं। आनंदीबाई ने अपने भतीजे चिमनाबापू को जिसका मूल नाम खण्डोजी था। उसे गोद लेकर 'मराठा शासन' में 'सेना धुरन्धर' के पद से अलंकृत किया। किन्तु उसे मुख्यालय नागपुर में रखा। आनंदीबाई को शक था कि यदि उसे रतनपुर में रखा जाता तो उसके लिये भारी पड़ सकता था और सत्ता उसके हाथ से चली जाती। किन्तु चिमनाबापू (खण्डोजी) की एकाएक चार माह बाद ही सन् 1789 ई. में मृत्यु हो गयी। कहा जाता है कि इसकी मृत्यु के पीछे उसके छोटे भाई रघुजी (द्वितीय) का हाथ था। उसे ऐसा लगने लगा था कि कही चिमनाबापू नागपुर राज्य का दावेदार न बन जाये। क्योंकि चिमनाबापू ने अपने छोटे भाई रघुजी (द्वितीय) से झगड़ा शुरु कर दिया था कि उसे छत्तीसगढ़ और उड़ीसा का एक स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया जाये। इसी कारण से उसे रघुजी नागपुर से दूर चाँदा में रखना चाहते थे। रघुजी की माताजी चिमनाबापू की मौत को संदेह की दृष्टि से देखती थी, इसलिये वह सुरक्षा की दृष्टि से अपने छोटे पुत्र व्यंकोजी को नागपुर से दूर कटक लेकर चली गयी।

छत्तीसगढ़ में रतनपुर की शासिका आनंदीबाई नागपुर के प्रभाव से मुक्त होना चाहती थी। वह छत्तीसगढ़ में स्वतंत्र रूप से राज्य करना चाहती थी। किन्तु रघुजी ने चिमनाबापू की मृत्यु के बाद अपने विश्वासपात्र यशवंत कालू को रतनपुर का सूबा नियुक्त कर आनंदीबाई की योजना में पानी फेर दिया। इधर यशवंत कालू के रतनपुर पहुँचने के पहले ही आनंदीबाई ने एक छोटी सी सेना गठित की जिसके सरदार थे–कृष्णभट्ट पाध्ये, महिपतराव काशी, महायजी भोंसले, हरवाजी पंत, एवं रामचंद्र बक्षी आदि। जब रघुजी को इसकी जानकारी मिली तो उसने भवानीशंकर और नत्थुजी भोंसला नामक दो सरदार भी यशवंत कालू के साथ भेजे। दोनों पक्षों में युद्ध हुआ जिसमें आनंदीबाई ने यशवंत कालू को परास्त कर दिया। रघुजी ने राजनीति के दाँव खेले उसने आनंदीबाई के विश्वासपात्र महीपत दिनकर को सूबा बनाकर रतनपुर भेजा उसने रतनपुर आकर आनंदीबाई से मिलकर समझौता करा दिया और रतनपुर राज्य का सूबा एवं सारा कामकाज आनंदीबाई की सलाह से चलाने और उसकी सलाह से बाध्य रहे। इस प्रकार आनंदीबाई छत्तीसगढ़ की रानी बन गयी और राज्य की बागडोर रघुजी के हाथ में ही रही।

आनंदीबाई जहाँ कुशल प्रशासक थी वहीं स्थापत्य कला प्रेमी भी थी। इसने अपने पति बिम्बाजी द्वारा रतनपुर के रामटेकड़ी में बनवाये गये रामचंद्र मंदिर के सामने एक छोटा सा मंदिर बनवाया जिसमे अपने स्व. पति (बिम्बाजी) की स्मृति में उनकी एक प्रतिमा स्थापित की। रामपहाड़ी (रामटेकड़ी) की पूर्व दिशा में एक सुन्दर जलाशय का निर्माण करवाया जो रानी ताबाल के नाम से विख्यात है। खारुन नदी के तट पर खूँटाघाट के पास संगमेश्वर शिवमंदिर बनवाया जो अब डुबान में आ गया है। आनंदीबाई रतनपुर किले के भीतर श्री लक्ष्मीनारायण का एक मंदिर भी बनवाया गया है। आनंदीबाई की 1801 ईस्वी में मृत्यु हो गयी।

रघुजी (द्वितीय)

मराठा शासकों में रघुजी (द्वितीय) बड़ा महत्त्वाकांक्षी शासक था। अपने पिता मुधोजी तथा चाचा बिम्बाजी की मृत्यु के बाद 'सेना साहब सूबा' का पद ग्रहण कर वह एकछत्र भोंसला वंश का शासक बन गया। उसने चिमनाबापू को जानबूझकर रतनपुर के सूबा से दूर नागपुर में रखा जो आनंदीबाई के मनमाफिक कार्य था। चिमनाबापू की मृत्यु के बाद अपने विश्वास-पात्र यशवंत कालू को रतनपुर का सूबा नियुक्त कर भेजा था, जिसे रानी आनंदीबाई ने सेना गठित कर, परास्त कर दिया था। तब रघुजी ने राजनिति के दाँव खेलकर आनंदीबाई विश्वासपात्र महिपत दिनकर को सूबा नियुक्त कर रतनपुर भेजा जिसने आनंदीबाई एवं रघुजी से समझौता कराया था। सूबा का कार्य आनंदीबाई की सलाह पर किया जाना निश्चित

हुआ। इस तरह रघु जी ने अपनी कुटनीति की चाल से रानी को खुश कर दिया और राज्य की बागडोर अपने हाथ में ही रखी। इधर महिपत दिनकर रतनपुर राज्य का प्रबंध ठीक करके विद्रोह दबाने संबलपुर चला गया और विजयी होकर लौटा उसकी इस वीरता से रघुजी भयभीत न होकर महिपत दिनकर को तत्काल हटाकर उसके छोटे भाई विट्ठल दिनकर को उसके स्थान पर सूबा नियुक्त कर भेजा। इसने आते ही सरगुजा और कोरिया पर आक्रमण कर मराठा राज्य में मिला लिया। इसी बीच रघुजी (द्वितीय) के छोटे भाई व्यंकोजी ने छत्तीसगढ़ राज्य का भ्रमण किया था किन्तु इसने राजकाज में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। सन् 1811 ई. में वाराणसी में व्यंकोजी की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार रघुजी पुनः भोंसले शासन का एकमात्र शासक रह गया।

भोंसले शासन की आँतरिक स्थिति

आनंदीबाई की मृत्यु 1801 ई. में हुई थी, उस समय से लेकर 1818 ई. में जब अप्पासाहब भोंसले को नागपुर की गद्दी से उतार दिया गया था, तब छत्तीसगढ़ का शासन सूत्र 'सुबे' के हाथ में रहा। सूबा को शासन के प्रत्येक विभाग के समस्त अधिकार प्राप्त थे। रतनपुर में ही सुबे का मुकाम रहा करता था। सूबा के अधीन महाविशदार रहा करते थे। मराठा शासन अंग्रेजों के हाथो में जाने से पूर्व तक छह सूबे शासन तंत्र संभाले थे जो इस प्रकार हैं :–

1. विठ्ठल दिनकर, 2. केशवपंत, 3. कारूपंत, 4. भीखा भाउ,
5. सखाराम बापू, 6. यादव दिनकर

यद्यपि विठ्ठल दिनकर के पूर्व महिपत दिनकर, यशवंत कालू, रानाजी भोंसला, मोहनसिंह आदि का नाम भी सम्मिलित होना चाहिये। रायपुर के कृष्णराव फड़नवीस एवं व्यंकट पाण्डुरंग भी सूबा के पद पर आसीन थे। कोई भी सूबा अपने पद पर जब तक बना रह सकता था तब तक नागपुर शासन की इच्छा रहती थी। किसी भी सूबा को अपने स्थायी होने का भरोसा नहीं रहता था। उसे किसी भी समय हटाया जा सकता था। इसकी परिणती रही कि इस अनिश्चितता के कारण सूबे कम से कम समय में नैतिक या अनैतिक ढंग से धन एकत्र करने में लगे रहते थे। मराठा शासन में लोक हित एवं लोक कल्याण तथा राज्य की प्रगति की ओर कोई ध्यान न देकर मात्र शोषण कर धन अर्जित करना इनका उद्देश्य हो गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि छत्तीसगढ़ की जनता में रोष व्याप्त हो गया और एक सूबा सखाराम बापू को एक व्यक्ति ने गोली मार दी क्योंकि उसने बड़ी रकम लेकर उच्चपद देने का वादा किया था। नागपुर के भवानीपंत, यशवंत कालू और मुधोजी के संबंध में भी इसी ढंग से धन एकत्र करने की घटनाओं की जानकारी मिलती है। याटू नामक एक अंग्रेज 1766 ई. में हीरे की खान की खोज में घुमता हुआ सम्बलपुर पहुँचा था। वह लिखता है– "जिस समय भोंसले के सूबा को धन की जरुरत पड़ती थी, उस समय वह अपने अधीनस्थ जमींदार से सैनिक बल पर अपना काम निकाल लेता था।" परिणाम यह हुआ कि छत्तीसगढ़ के प्रायः सभी जमींदार मराठा शासन के शत्रु बन बैठे। कृषकों पर सूबा, कमाविशदार, जमींदार, एवं सिपाही सबकी हुकूमत चलती थी। इनके शोषण एवं अत्याचारों ने लोक कहावत का रूप ले लिया था–लोग अत्याचारी से कहते थे कि 'क्या भोंसलाशाही चल रही है'।

मराठा शासन काल में छत्तीसगढ़ की क्या स्थिति थी एवं इनकी आंतरिक व्यवस्था क्या थी इस पर अब प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। मराठा शासन की सदैव यह इच्छा रही कि छत्तीसगढ़ के शासन तंत्र में 'मराठाकरण' हो जाये। यही कारण है कि नागपुर के मराठा शासकों ने छत्तीसगढ़ राज्य के उच्च पदों पर मराठों को नियुक्ति दी थी। अकेले रायपुर जिले के धमतरी तहसील के 200 से उपर पुराने गौटिया को बेदखल कर मराठे सिपाहियों या महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों को प्रदत्त किया था। राजिम इलाके में बिम्बाजी ने अपने साले हनुमंतराव को 84 गाँवों की जमींदारी दे दी। बिलासपुर जिले में बेलमुड़ी, धौराभाँठा, चिचिरवा आदि अनेक गाँव मराठों को दिये गये थे। बिम्बाजी ने नर्मदा नदी के उद्गम स्थल अमरकंटक में एक मंदिर एवं कुण्ड का निर्माण कराया था जहाँ नियमित पूजा हेतु महाराष्ट्रियन पुजारी को नियुक्ति दी गयी थी। बिम्बाजी ने अमरकंटक में नर्मदामाई का मंदिर बनवाया था। राजिम के राजिवलोचन मंदिर के खर्च के लिये

एक गाँव चढ़ा दिया था। रायपुर के दुधाधारी मठ को भी उसने 1799 ई. में एक दानपत्र कुछ गाँवों के संबंध में लिख दिया, जिस पर उसके कामदार नारायणराव विट्ठल के हस्ताक्षर हैं। रतनपुर में दिव्रसकर परिवार को धर्माधिकारी नियुक्त किया गया था। इसी दिव्रसकर परिवार को श्रीकृष्ण जन्मोत्सव मनाने के लिये कई गाँव माफी में दिये थे, जिसमें गनियारी, भुंडा, भरारी आदि ग्राम प्रमुख हैं। रमदई नामक गाँव केवल दातौन तथा पतरी के लिये मराठा शासकों द्वारा माफी में दिये गये थे। छत्तीसगढ़ को सबसे अधिक हानि मराठों की सेना से हुई थी। इन्होंने फसल को कई बार घोड़ों से रौंदकर नुकसान पहुँचाया था। मराठों की एक सेना स्थायी रूप से रखी गयी थी जिसका सारा व्यय छत्तीसगढ़ को उठाना पड़ता था। मराठाकाल में ठगों एवं पिण्डारियों ने भी अनेक बार लूटमार कर नुकसान पहुँचाया था। मराठों ने इन्हें प्रश्रय दिया था। पिण्डारी जिस स्थान पर रुकते थे उस स्थान को पेण्डरा एवं पण्डरिया ग्राम का नाम दिया गया।

अध्याय 9

छत्तीसगढ़ का स्थानीय प्रशासन : रियासतें एवं जमींदारियाँ

रियासतें

छत्तीसगढ़ का इतिहास जितना प्रशस्त है उतना ही प्राचीन है। छत्तीसगढ़ के स्थानीय प्रशासन में प्राचीन रियासतें एवं जमींदारियाँ ही इस राज्य की अस्मिता रही है। विभिन्न राजवंशों का उद्भव एवं विकास इस अंचल में हुआ। ये राजवंश अपने शासनकाल में अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु संघर्षरत रहे। ये राजवंश परिस्थितिजन्य कभी लघु होते थे कभी विशाल। कभी ये जमींदारियाँ संगठित होकर रियासत का रूप लेतीं तो कभी रियासत बिखरकर जमींदारी रह जाती। इनका स्वरूप परिवर्तशील रहा। हैहयवंशी कलचुरि राज्य की समाप्ति पर मराठों के हाथ में सत्ता आ गयी और मराठों से अंग्रेजी शासन ने बागडोर सम्भाली। 18वीं शती ईस्वी के उत्तरार्ध में रियासतें सिमटने लगीं। मराठा शासन के समय ये 19 के आसपास थीं किन्तु ब्रिटिश शासन में 5 रियासतें उड़िया भाषा–भाषी होने के कारण उड़ीसा प्रान्त (सम्बलपुर) में मिला दी गयी। ये रियासत थीं कालाहण्डी, पटना, रेराखोल, भामड़ा, एवं सोनपुर। शेष रियायतें जो अंग्रेजी शासन में आ गयी थीं उनमें बस्तर, काँकेर, राजनाँदगाँव, खैरागढ़, छुईखदान, कवर्धा, सक्ती, रायगढ़, सारंगढ, सरगुजा, उदयपुर, चाँगभखार, कोरिया, जशपुर आदि प्रमुख हैं। जिसका संक्षिप्त में विवरण निम्नानुसार है :–

बस्तर

छत्तीसगढ़ की प्राचीन रियासतों में बस्तर की रियासत प्रमुख है। सघन वृक्षों से आच्छादित यह भू–भाग लगभग 39 हजार वर्ग किलोमीटर में विस्तृत था। इस प्राचीन रियासत की सीमा इस प्रकार थी–उत्तर में काँकेर रियासत और रायपुर, पूर्व में जैपुर (आंध्रप्रदेश) दक्षिण में भद्राचलम तालुका, और पश्चिम में चाँदा स्थित था। बस्तर के नामकरण के संबंध में किंवदन्ती है कि इस राज्य की नींव डालने वालों को प्रायः बाँस के तले निवास करना पड़ता था। इसी से यह क्षेत्र बाँस–तर (नीचे) अर्थात् बाँस्तर से बस्तर हो गया। बस्तर वन प्रदेश होने के कारण यहाँ के वनवासी आदिमयुग की सभ्यता में निवास करते हैं इसी कारण इन्हें आदिवासी कहा जाता है। बस्तर क्षेत्र में प्राप्त शिलालेख, स्वर्ण मुद्राओं एवं ताम्रमुद्राओं से ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आये हैं। सबसे पहले नलवंशी शासकों का साम्राज्य होने की जानकारी मिलती है। नलवंशी शासकों का शासन लगभग चौथी–पाँचवीं शती ईस्वी के आसपास था। इसके बाद बस्तर के 500 वर्षों के इतिहास का कोई स्रोत उपलब्ध नहीं होता। तत्पश्चात् राष्ट्रकूट, चालुक्य और उड़ीसा के गंग आदि राजवंशों की जानकारी मिलती है। इसके बाद बस्तर में नागवंशी राजाओं का अधिकार हो गया। उस समय बस्तर के चक्रकोट नाम से संबोधित किया जाता था। बस्तर के चक्रकोट में छिन्दकनाग के शासकों का साम्राज्य था। बस्तर में नागवंशी राजाओं के पश्चात् काकतीयवंशी राजाओं के राज्य करने की जानकारी मिलती है। काकतीय और दुर्गा पर्यायवाची नाम है। इस वंश के आदिपुरुष प्रतापरुद्र काकतीय नाम की देवी के पूजक थे। आन्ध्रप्रदेश की एकशिला नामक नगरी में काकती देवी का एक प्रसिद्ध मंदिर था। बस्तर क्षेत्र में काकतीय वंश का गौरवशाली इतिहास मिलता है। काकतीय वंश के आदिपुरुष प्रतापरुद्रदेव को उसके पिता ने युवराज का पद प्रदान कर विजय यात्रा को भेजा था। उसने अपने पराक्रम से अनेक राज्यों में विजय

प्राप्त की थी। सन् 1323 ई. में बाह्य आक्रमणकारियों ने वारंगल पर चढ़ाई करके प्रतापरुद्र को वहाँ से भागने के लिये विवश कर दिया। तब प्रतापरुद्र भटकते–भटकते एक छोटी–सी सेना लेकर बस्तर आये। बस्तर में उन दिनों छोटे–छोटे जमींदारों का शासन था। इन्हें परास्त कर बस्तर की सत्ता अधीन कर वे राजा बन बैठे किन्तु थोड़े समय ही शासन कर वापस वारंगल चले गये जहाँ इनकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् इनके भाई अन्नमदेव वारंगल से आकर बस्तर की सत्ता सम्भाली। उन्होंने 14वीं शती के पूर्वार्द्ध तक बस्तर में राज्य किया। ज्ञात स्रोतो के आधार पर बस्तर में राज्य करने वाले राजाओं की सूची इस प्रकार है :–

अन्नमदेव 1323 ईस्वी,

हमीरदेव 1358 ईस्वी,

मयराजदेव 1379 ईस्वी,

पुरुषोत्तमदेव 1408 ईस्वी,

जयसिंहदेव 1429 ईस्वी,

नरसिंहदेव 1457 ईस्वी,

जगदीश रायदेव 1524 ईस्वी,

वीरनारायणदेव 1548 ईस्वी,

वीरसिंहदेव, दृगपालसिंह देव, राजपालदेव 1760 ईस्वी,

दलपतदेव, दरयावदेव 1775 ईस्वी,

महिपालदेव 1800 ईस्वी,

भोपालदेव 1842 ईस्वी,

भेरमदेव 1852 ईस्वी तथा

अंतिम शासक के रूप में महाराजा प्रवीरचंद्र भंजदेव का नाम आता है। बस्तर के अधिकांश आन्दोलन भोपाल देव के पुत्र भेरमदेव के सत्तारुढ़ होने पर हुए थे। भोपालदेव ने भोपालपटनम नामक बस्ती बसायी थी। भेरमदेव के शासनकाल में हुये विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासन ने हस्तक्षेप संधि स्थापित की और अंग्रेजी शासन ने यहीं से अपना पैर बस्तर में जमाया। बस्तर के प्राचीन रियासत के दीवान पद पर परम्परा से हटकर गोपीनाथ कापड़दार की ब्रिटिश शासन ने नियुक्ति की थी। यह गोपीनाथ यादववंशी था। काकतीय वंश के अंतिम शासक के रूप में प्रवीरचंद्र भंजदेव का नाम आता है जो अजानबाहु एवं माता दन्तेश्वरी के परम भक्त थे। ये अपनी उदारता के कारण जनता में लोकप्रिय शासक हुये थे। अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि आदिवासी बहुल क्षेत्र में विभिन्न राजवंशों ने शासन किया किन्तु मूलतः बस्तर की गौरवशाली सत्ता आदिवासियों के हाथ में रही। जिसकी परिणति अंततः माँझी सरकार के रूप में सामने आयी थी। इस अंचल में शासकों ने मंदिर, महल, जलाशय, आदि स्मारक के निर्माण करवाये थे, जो धरोहर के रूप में विद्यमान हैं। बस्तर क्षेत्र में अंचल की प्रसिद्ध अधिष्ठात्री देवी माँ दन्तेश्वरी का मंदिर स्थापित है। बस्तर का दशहरा पूरे राज्य में प्रसिद्ध है जो अंचल की अस्मिता है।

काँकेर

छत्तीसगढ़ में काँकेर रियासत एवं जमींदारियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। काँकेर राज्य का क्षेत्रफल लगभग 2144 वर्ग किलोमीटर है। इसकी सीमा उत्तर में दुर्ग और रायपुर जिला, दक्षिण में बस्तर और पश्चिम मे चाँदा स्थित है। काँकेर रियासत अधिकांशतः वन एवं पहाड़ियों से आच्छादित है। ज्ञात स्रोतों के आधार पर प्राचीन काल से ऋषि–मुनियों की पसंदगी का क्षेत्र माना जाता रहा है। यहाँ के सघन वन एवं शांतिपूर्ण वातावरण तपस्वियों के लिये आकर्षण का केन्द्र रहा है।

जनश्रुति है कि कंक ऋषि के कारण इस स्थान का नाम काँकेर पड़ा। काँकेर राजवंश सोमवंशी क्षत्रिय थे। कहा जाता है कि जगन्नाथ के राजा कान्हरदेव को कुष्ठ रोग होने के कारण अपना राजपाट छोड़ना पड़ा था। कान्हरदेव स्वास्थ्य लाभ के लिये घुमते-घुमते काँकेर पहुँचे। उन्होंने वहाँ एक पोखरी में स्नान किया जिसके पार्श्व में आज कर्णेश्वर मंदिर स्थित है। उनका कुष्ठ रोग ठीक हो गया, इस चमत्कार से वे अति प्रसन्न हुये और सिहावा में ही बसने का मन बना लिया तथा 18वीं पीढ़ी तक शासन करते रहे। सिहावा में एक शिलालेख शक संवत 1114 (सन् 1192 ई०) का प्राप्त हुआ है। जिसमें इस राजवंश के कुछ समय तक शासन करने का उल्लेख है। कहते हैं कि इसी राजवंश के तीसरे राजा ने काँकेर परगना को अपने राज्य में सम्मिलित कर सिहावा से काँकेर राजधानी उठा लाया। जो प्राचीन काल में कंकण कहलाता था। कलचुरि राजा पृथ्वीदेव (द्वितीय) के राजिम से प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है कि पृथ्वीदेव के सेनापति जगपाल ने काँकेर प्रदेश को जीतकर अधिकार में कर लिया था। उसी समय से राज्य के लेखों में कलचुरि शब्द का प्रयोग होने लगा था। काँकेर के सोमवंश के राजा भानुदेव के राज्यकाल में सन् 1320 में उत्कीर्ण शिलालेख काँकेर से प्राप्त हुआ है। इसमें भानुदेव के पूर्व की 6 पीढ़ियों के नाम है :-

सिंहराज, व्याघ्रराज, बोपदेव, कृष्ण, जैतराज, एवं सोमराज।

सोमराज भानुदेव का पिता था। सन् 1213-1214 ईस्वी में प्राप्त पंपराज के शिलालेख में पंपराज को बोपदेव का पौत्र और सोमराज का पुत्र बताया गया है। पंपराज की पीढ़ी का आगे का कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होता। एक शिलालेख में बोपदेव के पुत्र का नाम कृष्ण आता है। चूँकि पंपराज निःसंतान था। अतः इसी वंश से एक नई शाखा फूट निकली थी जिसका प्रतिनिधित्व कृष्ण ने किया है। प्राचीन प्रशस्तियों से जानकारी मिलती है कि रुद्रप्रताप नामक राजा ने धमतरी में महानदी के किनारे एक शिवमंदिर का निर्माण करवाया था जिसका नाम रुद्रेश्वर महादेव है एवं उनके नाम से गाँव का नाम रुद्री भी है। यह राजा काँकेर के राजाओं में से एक था। धमतरी में प्राचीन किला था जिसके अवशेष एवं बाहरी खाई आज भी दिखलाई देते हैं। इनकी चौथी पीढ़ी में हरपालदेव नामक राजा ने अपनी कन्या का विवाह बस्तर नरेश के साथ किया था और उसे सिहावा क्षेत्र दे दिया था। हरपालदेव की चौथी पीढ़ी में भूपदेव नाम राजा हुआ था। इनके राज्य काल में मराठों ने बस्तर में चढ़ाई की थी। तब भूपदेव ने अपने रिश्तेदारों के नाते बस्तर के राजा की सहायता की थी। जिसमें इनकी पराजय हुई थी और इन्हें काँकेर छोड़कर भागना पड़ा था। ये धमतरी तहसील में झेरिया नामक ग्राम में रानी के साथ चले गये। वहाँ उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम पद्मसिंह रखा गया। सन् 1818 ई. में नागपुर के रेसीडेंट ने 5 सौ रुपये वार्षिक कर आरोपित कर इनका काँकेर राज्य वापस कर दिया। पद्मसिंह गद्दी पर आसीन हुये। इन्होंने 25-30 वर्ष तक शासन किया। सन् 1853 ईस्वी में पद्मसिंह के बाद नरहरिदेव गद्दी पर आसीन हुये। इन्होंने 1853 ई. से 1903 ई. तक लगभग 50 वर्ष तक शासन किये। सन् 1904 ई. में सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी शासन कायम हो गया।

राजनाँदगाँव

छत्तीसगढ़ की प्राचीन रियासतों में राजनाँदगाँव को रियासत प्रमुख माना जाता है। लगभग 1307 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत राजनाँदगाँव रियासत की स्थिति चाँदा और दुर्ग जिले के मध्य में थी। यह रियासत पाँडादह, पत्ता, मोहगाँव एवं छुईखदान के कुछ हिस्से को लेकर बनायी गयी थी। इसके पहले ये मराठा काल में भोंसले के आधिपत्य की जमींदारियाँ थीं। इस रियासत के संबंध में जनश्रुति इस प्रकार है कि 18वीं शती के पूर्वार्द्ध में पंजाब का प्रहलाददास नामक एक बैरागी जो शाल-दुशालों का व्यापारी था, व्यापार करते हुये रतनपुर में आकर बस गया। इसका व्यापार इतना फला-फूला कि यह धनवान हो गया। इसकी मृत्यु के बाद उसका शिष्य हरिदास जो जगन्नाथपुरी का ब्राह्मणकुमार था जब रतनपुर पहुँचा तो रतनपुर के बिम्बाजी भोंसले की रानियों ने उसके गुणों से उसे गुरु बना लिया। उसे गुरु दक्षिणा के रूप में दो रुपये वार्षिक प्रति गाँव वसूल करने का अधिकार प्रदान किया। उसने साहूकारी प्रारंभ कर दी। पाण्डादह के जमींदार को उसकी जमींदारी बंधक रखकर ऋण दिया उसकी वापसी न होने पर जमींदारी पर अधिकार कर लिया। हरिदास ने अपने प्रमुख शिष्य रामदास को जमींदारी का प्रबंधक नियुक्त किया। पाण्डादह के बाद नाँदगाँव की जमींदारी को भी इसी

तरह हथिया लिया क्योंकि वहाँ के मुसलमान जमींदार ने ऋण नहीं चुकाया था। भोंसलों एवं अंग्रेजों ने अपनी सुविधा के लिये नागपुर से कलकत्ता तक ग्रेट इस्टर्न रोड राष्ट्रीय राजमार्ग बनवाया था। कामठी के व्यापारी भी नाँदगाँव आकर बस व्यापार के उद्देश्य से गये। तब पाण्डादह से अपनी गद्दी उठाकर बैरागी महन्त नाँदगाँव में राजमार्ग के पास आकर बस गये। संभवतः राजमार्ग से जुड़ने के कारण यह स्थान नाँदगाँव से राजनाँदगाँव हो गया और उसी समय से राजनाँदगाँव कहलाने लगा। संभवतः यह परिवर्तन महंत घासीदास के समय हुआ था। राजनाँदगाँव की जमींदारी हस्तगत करने के बाद महंत रामदास का निधन हो गया। उसके बाद शिष्य रघुवरदास जमींदार बने। उसकी आकस्मिक मृत्यु के बाद उसके शिष्य हिमाचल दास को महंती एवं जमींदारी मिली। हिमाचल दास के बाद महन्त मौजीदास जमींदार बने। जिन्होंने खैरागढ़ राज्य के सहयोग से खोल्वा में डोंगरगढ़ के बागी जमींदार को हराने का कार्य किया फलस्वरूप उसे डोंगरगढ़ का परगना प्राप्त हो गया। इस प्रकार राजनाँदगाँव की रियासत चार परगनों को लेकर गठित की गयी। राजनाँदगाँव छत्तीसगढ़ की प्रमुख जमींदारी थी जो महन्त जमींदारों द्वारा संचालित थी। इन जमींदार राजाओं में महन्त घासीदास, महन्त सर्वेश्वरदास, एवं बलरामदास हुये जिन्होंने क्रमशः महन्त घासीदास ने रायपुर मे संग्रहालय, सर्वेश्वरदास ने रायपुर में पुस्तकालय एवं महन्त बलरामदास ने जल प्रदाय योजना स्थापित की। इसी वंशानुक्रम में राजनाँदगाँव के अंतिम शासक का नाम दिग्विजयसिंह था।

खैरागढ़

छत्तीसगढ़ के गढ़ों में एक गढ़ खैरागढ़ है। खैर अर्थात् कत्था के वृक्षों से आच्छादित होने के कारण इस क्षेत्र का नाम खैर से खैरागढ़ पड़ने की जनश्रुति है। लगभग 1497 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत खैरागढ़ रियासत क्षेत्र की प्राचीन रियासतों में से एक है। खैरागढ़ का राजवंश छोटा नागपुर के राजवंशी राजपूत राजा सभासिंह के वंशज थे। सभासिंह के दो पुत्र थे, इनमें छोटे पुत्र का नाम लक्ष्मीनिधि था जो खोलवा आया और बस गया। उस समय खोलवा का जमींदार श्यामधन था। श्यामधन के बाद उसके पुत्र दरियावसिंह ने गद्दी सम्भाली। उसके बाद उसके पुत्र अनुपसिंह ने राजपाट सम्भाला। उस समय खैरागढ़ में 132 गाँव थे। अनुपसिंह के बाद उसका पुत्र माधवसिंह हुआ। उसके बाद उसके पुत्र खरंगराय ने गद्दी सम्भाली। खरंगराय की राजधानी खोलवा में थी। खरंगराय के बाद उसका बेटा टिकैतराय हुआ। इनके काल में टिकौली 5 हजार कर दी गयी। इसने अपने पराक्रम से डोंगरगढ़ की जमींदारी हस्तगत कर ली थी। टिकैतराय के उसका पुत्र दृग्पाल सिंह हुआ। राजनाँदगाँव के राजा के दावे के कारण डोंगरगढ़ जमींदारी को दो भागों में बाँटा गया। सन 1833 ई. में दृग्पालसिंह की मृत्यु के बाद उसका भाई महिपालसिंह गद्दी पर बैठा। किन्तु उसकी आकस्मिक मृत्यु के बाद उसके पुत्र लाल फतहसिंह को गद्दी मिली। आज भी खैरागढ़ में 'लाल' राजशाही परिवार के वंशज निवास करते हैं। राजशाही परिवार से राजा वीरेन्द्र बहादुर सिंह एवं शिवेन्द्र बहादुर सिंह का नाम उल्लेखनीय है।

कवर्धा

कबीरधाम के नाम से चर्चित इस क्षेत्र का नाम बोलचाल में कबीरधाम से कवर्धा हो गया। कवर्धा प्राचीन रियासतों में से एक था। इसका कुल क्षेत्रफल 1197 वर्ग कि.मी. में विस्तृत था। इससे पहले कवर्धा खैरागढ़ तालुका कहलाता था। कवर्धा राजवंश का संबंध मंडला के गोड़ राजपरिवार से था। उन्हीं के वंशज पंडरिया जमींदारी के शासक थे। यह प्रथा प्रचलन में थी कि यदि कवर्धा या पंडरिया के शासक घराने में कोई उत्तराधिकारी जन्म न ले तो एक–दूसरे के परिवार से बालक गोद ले लेते थे और उसे उत्तराधिकारी बना दिया जाता था। प्राप्त जानकारी के अनुसार पहले कवर्धा रियासत भोंदा जमींदार के अधिकार में थी। जो मंडला के गोड़ राजा के अधीन इस जमींदारी का उपयोग करता था। उस समय पृथ्वीसिंह पंडरिया का जमींदार था। उसने अपने भाई महाबलीसिंह को भोंदा जमींदार के स्थान पर जमींदारी सौंपी। भोंदा को मंडला भागने के लिये मजबूर कर दिया। महाबलीसिंह को नागपुर के भोंसला राजा रघुजी के समर्थन में 50 वर्षों तक कवर्धा में शासन करने का अवसर मिला। उसके बाद उसके पुत्र उजियार सिंह ने 47 वर्षों तक शासन

किया। उजियारसिंह के बाद टोकसिंह राजा हुआ उसकी आकस्मिक मृत्यु के बाद उसकी राजमाता (विधवा रानी) ने राजकार्य सम्भाला। यह कबीर पंथियों की पुण्यस्थली थी। कवर्धा जनपद के चेरागाँव के मण्डवा महल के शिलालेख में 24 नागवंशी शासकों की वंशावली मिलती हैं। कवर्धा के छपरी गाँव में मंडवा महल एवं भोरमदेव मंदिर स्थित है। भोरमदेव को कलाकृति के आधार पर छत्तीसगढ़ का खजुराहो कहा जाता है।

सक्ती

छत्तीसगढ़ की छोटी रियासतों में सक्ती उल्लेखनीय है। इसका क्षेत्रफल 207 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत था। इस रियासत का राजा राजगोड़ था। इस रियासत के नामकरण के संबंध में जनश्रुति है कि जंगल में शिकार खेलने गए राजा के शिकारी कुत्ते का एक हिरण द्वारा पीछा किया जा रहा था। राजा ने इस भूमि की शक्ति से प्रभावित होकर इस रियासत का नामकरण शक्ति रख दिया जो बोलचाल में सक्ती हो गया। कहा जाता है कि हरी और गुजर नामक दो भाई थे, जो सम्बलपुर के कल्याणशाह के यहाँ सैनिक थे। इन दोनों की काठ की तलवार थी। राजा को जब इसकी जानकारी मिली तो वह क्रोधित हो उठा। ऐसे अनुपयोगी हथियार रखने की सजा दी गयी। दशहरा के अवसर पर देवी को भैंसा की बलि दी जाती थी। अतः इन दोनों भाइयों को काठ की तलवार से भैंसा की बलि देने का आदेश दिया गया। इन्होंने आदेश का पालन करते हुये देवी। समक्ष भैंसा का सिर एक ही बार में अलग कर दिया। उनकी इस बहादुरी से राजा ने प्रसन्न होकर मुँह माँगा ईनाम देने की घोषणा की। इन दोनो भाइयों ने कहा कि हम एक दिन में जितना चलेंगे उतनी भूमि हमे भेंट में दी जाये। राजा मान गये, इन दोनों ने 207 वर्ग किमोमीटर चलकर भूमि में अधिकार पा लिया जो सक्ती रियासत के रूप में स्थापित हुई। दशहरा पर्व में आज भी इस अंचल में काठ की तलवार की पूजा करने की प्रथा प्रचलित है। छोटा भाई गुंजर ने तो विवाह नहीं किया किन्तु बड़े भाई हरी की सातवीं पीढ़ी के राजा शिवसिंह निसंतान थे उसकी मृत्यु के बाद उसकी विधवा माता तेजकुंवरी ने शिवसिंह के चचेरे भाई कलन्दरसिंह को गोद में लेकर उसे उत्तराधिकारी बनाया। भोंसला शासन के जाते ही 1824 ईस्वी में सक्ती को अंग्रेजी शासन में मिला लिया गया।

रायगढ़

रायगढ़ रियासत दक्षिण में महानदी को पार कर सारगढ़ रियासत, उत्तर में उदयपुर, जशपुर और गाँगपुर रियासतें तथा पश्चिम में बिलासपुर जिले की सीमा से लगी थी। इस रियासत का कुल क्षेत्रफल 2229 वर्ग किलोमीटर था। ज्ञात स्रोतों के आधार पर रायगढ़ में गोड़ राजवंशों का शासन था। यह राजवंश चाँदा राजवंश के प्राचीन गोड़ से संबंध रखते थे। कहा जाता है कि मदनसिंह चाँदा जिले के बैरागढ़ गाँव से अपने मामा के गाँव फुलझर आया था। फिर रायगढ़ रियासत के एक गाँव बंगा चला गया एवं वहाँ से कुछ समय बाद रायगढ़ पहुँचा और वहाँ का राजा बन गया, कैसे राजा बना जानकारी अप्राप्त है। राजा मदनसिंह के बाद उसका पुत्र तखतसिंह हुआ उसके बाद बैठसिंह, बैठसिंह के बाद दिलिपसिंह राजा हुआ। दिलिप सिंह के बाद जुहारसिंह राजा हुआ। सन् 1800 ईस्वी में ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक समझौता किया जिसके फलस्वरूप उसे संबलपुर के मराठों की अधीनता छोड़नी पड़ी। जुहारसिंह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र देवनाथसिंह ने सत्ता सम्भाली। सन् 1854 ई. में यह रियासत अंग्रेजी राज्य के अंतर्गत आ गयी।

सारंगढ़

प्राचीन रियासतों में सारंगढ़ का नाम उल्लेखनीय है। सारंगढ़ के उत्तर में महानदी और चन्द्रपुर की जमींदारी, दक्षिण में फुलझर जमींदारी, पूर्व में सम्बलपुर की बरगढ़ तहसील, पश्चिम में रायपुर जिले का भटगाँव और बिलईगढ़ जमींदारी थी। इस रियासत का क्षेत्रफल 8।0 कि.मी. के आसपास था। कहा जाता है कि सारंगढ़ जिले के राजा लाँजी नामक स्थान से आये थे। 17वीं एवं 18वीं शती ईस्वी में मराठे उड़ीसा और बंगाल पर आक्रमण किया करते थे। वे इसी रास्ते से होकर जाते थे। कहा जाता है कि फुलझर के जमींदार ने मराठों पर आक्रमण कर दिया था तब सारंगढ़ के राजा ने मराठों की मदद की थी इससे रघुजी भोंसले ने प्रसन्न होकर उसे रतनपुर के अधीनता एक राज्य बना दिया

था। इस रियासत को सम्बलपुर की आधीनता वाली रियासत में शामिल कर दिया था जिसका राजा कल्याणसाय था। कल्याण साय की मृत्यु होने के बाद उसका पुत्र विश्वनाथसाय उत्तराधिकारी बना। विश्वनाथसाय दयालु स्वभाव का शासक था। कहा जाता है कि सन् 1878 ई. में बंगाल गर्वनर जनरल एलेकजेण्डर इलियट किसी महत्त्वपूर्ण कार्य से नागपुर जा रहे थे कि छत्तीसगढ़ (रास्ते में) उनकी मृत्यु हो गयी। उस अंग्रेज के शव को गाड़ने के लिये कोई भी जमींदार जमीन देने के लिये तैयार नहीं हुये ऐसी स्थिति में सारंगढ़ के शासक विश्वनाथ साय ने भूमि प्रदान की। सेमरागाँव में आज भी उसकी समाधि है। सन् 1808 ई. में विश्वनाथसिंह के निधन के बाद उसका पुत्र राज्याधिकारी बना। उसने केवल 7 वर्षों तक शासन किया इसके बाद उसके दो पुत्र भीखमसाय और टीकमसाय की अल्प आयु में मृत्यु हो जाने पर इसके काका गजराजसिंह को गद्दी मिली। गजराजसिंह के बाद उसके पुत्र संग्रामसिंह ने सन् 1830 ई. में गद्दी सम्भाली थी। यह 42 वर्षों तक शासन करता रहा। इनके कार्यकाल में मराठा शासन का अन्त हो गया और अंग्रेजी शासन में इसे मिला दिया गया।

सरगुजा

सरगुजा का शाब्दिक अर्थ 'स्वर्ग–जा' से किया जाता है जिसका अर्थ 'स्वर्ग की अनुजा', अर्थात् 'स्वर्ग की पुत्री'। रामायणकाल में यह क्षेत्र झारखण्ड के अंतर्गत समाहित था। इसे 'डाडोर' नाम से पुकारा जाता है। सरगुजा रियासत की छत्तीसगढ़ की प्राचीन रियासतों में गणना की जाती है। इस रियासत का क्षेत्रफल 9134 वर्ग किलोमीटर था। सन् 1909 ई. तक यह बंगाल प्रदेश में छोटा नागपुर की रियासतों में सम्मिलित थी। इसके उत्तर में मिरजापुर जिला एवं रीवाँ रियासत, पूर्व में पलामु तथा राँची जिला, दक्षिण में जशपुर और उदयपुर की रियासतें तथा बिलासपुर जिला और पश्चिम में कोरिया रियासत स्थित थी। सरगुजा रियासत की उत्पत्ति के ऐतिहासिक तथ्य 194 ईस्वी से उपलब्ध होने के कारण छत्तीसगढ़ की प्राचीन रियासतों में इनका नाम प्रमुख है। खैरनार, कँवर, गोड़, कोरवा, कोडाकू, किरात तथा मुण्डा आदि द्रविड़ जातियाँ थीं। जिसमें गोड़ वंश के शासक प्रमुख प्रशासक थे। इसे गोण्डवाना का एक हिस्सा माना जाता था। इन जातियों में संगठन नहीं था। ये आपस में लड़ते थे। सन् 194 ईस्वी में सीमावर्ती पलामु के कुंडरी ग्राम के एक रक्सेल राजपूत वंश ने आक्रमण कर इन्हें पराजित किया और इस रियासत को हस्तगत कर लिया। इसी वंश के राजा विष्णु प्रतापसिंह ने इन पर चढ़ाई कर आसपास के समस्त इलाकों को वहाँ के तत्कालीन राजा सायनीसिंह के पुत्र से छीन कर अपने राज्य का विस्तार कर लिया तथा रामगढ़ पहाड़ पर किले का भी निर्माण कराया। इसने 35 वर्षों तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के बाद, उसका पुत्र देवराजसिंह सन् 230 ई. में सिंहासनारूढ़ हुआ था। तब से लगातार 1740 वर्षों तक सरगुजा राज्य इसी रक्सेल वंश के राजाओं के अधिकार में रहा। इसी बीच इनकी 114 पीढ़ियाँ हुईं। जो राजा विष्णु प्रतापसिंह से लेकर महाराजा रामानुजशरण सिंहदेव तक था। इस रियासत में 1858 ई. में नागपुर के मराठा शासकों ने भी आक्रमण किये किन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। यह एक स्वतंत्र राज्य ही बना रहा। सन् 1947 ई. में इसका विलीनीकरण भारत में हो गया। इस प्रकार 1751 ईस्वी तक सरगुजा केवल एक ही राजवंश के आधीन रहा। सरगुजा के राजपरिवार में सिंहदेव राज परिवार आज भी विद्यमान है।

चाँगभखार

चाँगभखार रियासत लगभग 1156 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत थी। सन् 1905 ई. तक यह भी छोटा नागपुर की रियासतों में शामिल थी। कोरिया रियासत ने इसे पूर्व में तथा रीवाँ रियासत ने उसे उत्तर–पश्चिम और दक्षिण दिशा से घेर रखा था। प्रारंभ से कोरिया राजवंश के शासक यहाँ शासन करते रहे। सन् 1848 ई. में कोरिया से यह रियासत सर्वथा अलग हो गयी। इस रियासत के शासकों में मानसिंह, जनजीत सिंह, बलभद्रसिंह एवं महाबीरसिंह का नाम मिलता है। महाबीर सिंह ने सन 1900 ई. में राजगद्दी प्राप्त की एवं सन् 1932 ई. में इनकी मृत्यु हो गयी तदोपरान्त श्री कृष्ण प्रतापसिंहदेव को गोद ले लिया गया। जो बाद में शासक बने।

उदयपुर

उदयपुर रियासत एक स्वतंत्र रियासत थी किन्तु 194 ईस्वी में रक्सेल राजपूत वंश ने आक्रमण कर सरगुजा रियासत को अपने अधीन कर लिया था, उदयपुर की रियासत भी उनके अधीनस्थ जागीरदारी बन गयी थी। उदयपुर रियासत का क्षेत्रफल 1578 वर्ग किलोमीटर था। इसकी सीमा इस प्रकार थी। उत्तर में सरगुजा, पूर्व में जशपुर और रायगढ़, दक्षिण में रायगढ़ और पश्चिम में बिलासपुर जिला स्थित था। सरगुजा की शेष रियासत भी सन् 1818 ई. में नागपुर के भोंसले राजा मुधोजी से की गयी संधि के अंतर्गत अंग्रेज सरकार के अधिकार में आ गई थी। इस हस्तान्तरण के समय उदयपुर का तत्कालीन जागीरदार कल्याणसिंह सरगुजा के मार्फत अंग्रेज सरकार को टकौली देने लगा। सन् 1852 ई. में उदयपुर के जमींदार को अपने भाइयों सहित हत्या की सजा होने के कारण उनकी उदयपुर की जागीरदारी अंग्रेजी सरकार ने हस्तगत कर ली। वर्तमान में उदयपुर सरगुजा के अंतर्गत है। उदयपुर के समीप महेशपुर में प्राचीन ऋषभदेव जैन मंदिर का अवशेष मिला है।

कोरिया

कोरिया रियासत भी छोटा नागपुर की अन्य रियासतों में शामिल थी और उसे भी बंगाल प्रान्त के नियंत्रण में रखा गया था। इस रियासत का कुल क्षेत्रफल 2446 वर्ग किलोमीटर था। इसकी सीमा इस प्रकार थी। उत्तर में रीवाँ रियासत, दक्षिण में बिलासपुर जिला, पूर्व में सरगुजा रियासत, और पश्चिम में चाँगभखार और रीवाँ रियासत का भाग स्थित था। कोरिया रियासत पूर्व मे एक कोल प्रधान के अधीन थी। उसकी राजधानी चिरमिरी के पश्चिम दिशा में 9 कि.मी. की दूरी पर कोरिया गढ़ पहाड़ी पर स्थित थी। पहाड़ी में आज भी किले के अवशेष बिखरे पड़े हैं। ज्ञात स्रोतों के आधार पर 18 सौ वर्ष पूर्व यहाँ एक कोलवंशीय राजा था। धारा मल्लाहशाह नामक चौहान क्षत्री जो अपने साथियों के साथ जगन्नाथपुरी की यात्रा करके लौट रहा था उसे यह स्थान पसंद आया और उसने कोल राजा से राज्य हथिया लिया। इस चौहान राजा ने कोरिया पहाड़ी से राजधानी हटाकर 'नगर' नामक गाव में राजधानी बनायी परन्तु वहाँ से भी राजधानी को हटाकर सोनहट गाँव में ले आये। लेकिन वहाँ भी उसे अच्छा नहीं लगा और अंत में बैकुंठपुर में अपनी राजधानी स्थापित की। कालान्तर में यह भोंसले शासन के अंतर्गत आ गया। सन् 1818 ई. में अप्पासाहब भोंसले ने संधि की मर्जी के अनुसार इसे अंग्रेजों के अधिकार में दे दिया तब से कोरिया रियासत अंग्रेजो के अधीन हो गयी।

जशपुर

छत्तीसगढ़ में जशपुर एक प्राचीन रियासत थी। इस रियासत का क्षेत्रफल 2922 वर्ग किलोमीटर था। यह भी 1905 ई. तक बंगाल प्रान्त के अंतर्गत छोटा नागपुर की रियासत में शामिल थी। इस रियासत के उत्तर और पश्चिम में सरगुजा रियासत, पूर्व में राँची और दक्षिण में गाँगपुर, उदयपुर और रायगढ़ की रियासतें थीं। जशपुर पूर्व काल में डोमो के अधीन था। डोम वंश के अंतिम शासक राजभान को जशपुर के अंतिम राजा के पूर्व पुरुष सुजानराय ने मार भगाया था। सुजानराय सोनपुर के राजपूत राजा का ज्येष्ठ पुत्र था। ये राजपुताना के बाँसवाड़ा नामक स्थान से आये थे और अपने को सूर्यवंशी बताते थे। सुजानराय एक समय आखेट के लिये गया हुआ था कि उसके छोटे भाई को गद्दी पर बिठा दिया गया। सुजानराय के वापस आने पर छोटे भाई ने गद्दी छोड़नी चाही परन्तु सुजानराय इससे सहमत नहीं हुआ। उसने संन्यास ग्रहण कर लिया और भ्रमण के लिये निकल गया। इसी बीच वह खुड़िया पहुँचा तब उसे ज्ञात हुआ कि वहाँ की प्रजा डोम राजा को गद्दी से उतारना चाहती थी। तब सुजानराय ने इस अवसर का लाभ उठाकर राजा की हत्या कर वह वहाँ का राजा बन बैठा। तत्पश्चात् वह नागपुर के मराठों का जागीरदार बन गया। सन् 1818 ई. में यह जागीर भी सरगुजा रियासत की अन्य जागीरों के समान भोंसले शासक मुधोजी द्वारा की गयी संधि के अंतर्गत अंग्रेजी शासन के अधीनस्थ हो गयी।

छत्तीसगढ़ की जमींदारियाँ

छत्तीसगढ़ के स्थानीय प्रशासन में जमींदारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इन जमींदारियों का संक्षिप्त में विवरण इस प्रकार है :–

कोरबा

छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले में सबसे बड़ी जमींदारी थी। इसका क्षेत्रफल लगभग 1284 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत था। इसके अंतर्गत 341 ग्राम थे। अंग्रेज साहब चीजम के अनुसार रतनपुर के राजा बाहरसाय ने इसे सन् 1526 ई. के आसपास सरगुजा नरेश से छीन लिया था। इसी समय इसने कोसगई–छुरी के पठानों को हराया था। रतनपुर से दूर रहने के कारण यह एक स्वतंत्र जमींदारी थी। श्रीमती धनराज कुँवर यहाँ की अंतिम जमींदारिन थी। यह जमीदारी सघन वनों से आच्छादित थी। यहाँ लोहे एवं कोयले की खदाने थी। कबीरपंथियों का पुण्य स्थली कुदुरमाल भी यही पास में स्थित है।

केन्दा

केन्दा जमींदारी 445 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत थी। इसके अंतर्गत 92 ग्राम थे। कहा जाता है कि हाथों से मसलकर तिली से तेल निकालकर मशाल जलाने वाले वीर जसकरण को उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर रतनपुर नरेश द्वारा केन्दा जमींदारी ईनाम में दी गयी थी। जसकरण पेण्डरा जमींदार हिन्दुसिंह का पुत्र था। हिन्दुसिंह के घराने की तीसरी पीढ़ी में जो जमींदार हुये थे उसके दो पुत्रों में से संवत सिंह को रतनपुर नरेश तखतसिंह ने सन् 1691 ई. में केन्दा जमींदारी दी थी। अरपा नदी में जितनी घाटियाँ हैं ये केन्दा जमींदारी के अंतर्गत थीं। मराठा शासन में भी यह जमींदारी संवतसिंह के वंशजों के हाथ में ही रही।

कंतेली

यह बहुत छोटी सी जमींदारी थी। इसका कुल क्षेत्रफल 38 वर्ग कि.मी. तक था। इसमें 44 ग्राम आते थे। यह ठाकुरों की जमींदारी थी एवं यह मुंगेली जमींदारी का एक भाग था। जो रतनपुर नरेश कल्याणसाय द्वारा इसके अंतिम जमींदार पुखराज सिंह के पूर्वज तरवरसिंह को दी गयी थी।

उपरोड़ा

उपरोड़ा जमींदारी लगभग 672 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत थी। इसके ग्रामों की संख्या 86 थी। पेंडरा जमींदार हिन्दुसिंह के दो पुत्र थे, पुरनमल एवं चुरामन। चुरामन के पुत्र का नाम हिम्मतसिंह था। कहा जाता है कि एक अत्याचारी ब्राह्मण अधिकारी की हत्या के कारण बंदी हिम्मतसिंह को नौकर की मोहरी की मधुरता से प्रसन्न होकरे रिहा कर रतनपुर नरेश ने उसे उपरोड़ा चौरासी का जमींदार नियुक्त किया था। यह घटना 1584 ई. की है। मराठाकाल में यह जमींदारी अजमेरसिंह एवं शिवसिंह के अधिकार में दी गयी थी।

मातिन

लगभग 816 वर्ग कि.मी. में विस्तृत मातिन जमींदारी के अंतर्गत गाँवों की संख्या 109 थी। इस जमींदारी के जमींदार राजगोड़ थे। इनका संबंध भी पेण्डरा जमींदार परिवार से था। सन् 1699 ई. में हिम्मतसिंह के छोटे पुत्र कल्याणसिंह ने मातिन जमींदारी पर जबरदस्ती अपना अधिकार कर लिया था और रतनपुर के राजा राजसिंह ने कल्याणसिंह को वहाँ का जमींदार नियुक्त किया था। तब से इसी वंश के अधिकार में यह जमींदारी रही।

चाँपा

चाँपा जमींदारी लगभग 258 कि.मी. क्षेत्र में विस्तृत थी। इसके ग्रामों की संख्या 64 थी। यह जमींदारी बिलासपुर जिले के पूर्व भाग में हसदों नदी के दोनों तट पर विस्तृत थी। इसके पूर्व पुरुष रामसिंह को रतनपुर नरेश बाहरसाय ने प्रदान किया था। कहा जाता है कि इस जमींदारी का नाम मदनपुर चौरासी था। जिसकी प्राचीन धरोहर हसदों नदी के तट पर विद्यमान है। इस जमींदारी में कबीरपंथी एवं सतनाम दोनों सम्प्रदाय के अनुयायी निवास करते थे।

छुरी

इस जमींदारी का कुल रकबा लगभग 449 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत था। जिनमें ग्रामों की संख्या 143 थी। इस जमींदारी में कंवर लोगों की संख्या अधिक होने के कारण इसे 'कंवरान' जमींदारी कहा जाता था। छुरी से 7 कि.मी. दूर कोस गई नामक पहाड़ी है जहाँ एक किला है जिसका 16वीं शती ईस्वी में राजा बाहरसाय ने निर्माण करवाया था एवं अपना कोषागार इसी कोसगई किले में रखा था। प्रधान भुवनसिंह यहाँ के अंतिम जमींदार थे। मराठों ने इस जमींदारी से 1200 रु. वार्षिक टकौली बाँधी थी।

लाफा

इस जमींदारी का कुल क्षेत्रफल 639 वर्ग कि. मी. था। छत्तीसगढ़ के प्राचीन गढ़ों में लाफागढ़ एक गढ़ है। इस जमींदारी में ग्रामों की संख्या 86 थी। इस जमींदारी में पाली का प्राचीन शिवमंदिर एवं रतनपुर की प्राचीन राजधानी तुम्माण का खण्डहर विद्यमान है। लाफागढ़ के जमींदार रतनपुर के महत्त्वपूर्ण सैनिक अधिकारी होते थे। यहाँ पहाड़ी पर चितुरगढ़ का प्राचीन किला इस अंचल का अभेद किला माना जाता था। जो लगभग 3250 फीट की ऊँचाई पर स्थित था। मराठाकाल में इसकी वार्षिक टकौली 730 रुपये थी।

पंडरिया

इस जमींदारी का कुल क्षेत्रफल 730 वर्ग कि. मी. तक विस्तृत था। इस जमींदारी का सदर मुकाम कामठी नामक ग्राम में था। जो इस समय घने जंगल के मध्य में है। कामठी में प्राचीन बस्ती के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। पंडरिया जमींदारी की पूर्वी सीमा पर स्वेतगंगा नाम का एक गाँव है। यहाँ एक प्राचीन मंदिर है। इस जिले में पंडरिया ही ऐसी जमींदारी है जो हैहयवंशी राजाओं की 'चौरासी' में कभी नहीं रही। छत्तीसगढ़ में यह भी एक गढ़ है। कहा जाता है कि पहले गढ़ा–मंडला का एक लोधी जमींदार के अधीन था। सन 1546 ई. में इसने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। अंत में उसे शामसिंह जो पंडरिया के अतिम जमींदार के पूर्वज थे, से पराजित होना पड़ा था। पंडरिया जमींदारी उस समय मुकुटधर प्रतापगढ़ के नाम से प्रसिद्ध थी। दलसाय जो शामसिंह के बाद उसकी सातवीं पीढ़ी में हुआ, उसके दो पुत्र पृथ्वीसिंह एवं महाबली सिंह हुये। महाबली को 1760 ईस्वी में कवर्धा का राज्य मिला। पंडरिया जमींदारी के अंतिम जमींदार की 16वीं पीढ़ी पहले से इसके अधिकार में थी। इसका वैवाहिक संबंध सारंगढ़ नरेश, फुलझर, तथा कंतेली जमींदारों से था। सहसपुर जमींदारी के अधिकारी भी पडरिया परिवार के हैं। पंडरिया के समीप ग्राम बकेला, पयरा में जैन धर्म की यक्ष–यक्षणियों की प्राचीन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

बिलाईगढ़

बिलाईगढ़ जमींदारी का कुल क्षेत्रफल लगभग 168 कि. मी. में विस्तृत था। इसके ग्रामों की संख्या 74 थी। पूर्व काल में इसके जमींदार भैना जाति के थे। भैना जाति आदिवासी वर्ग की सूची में आती है। भैनों की ईष्ट देवी धमतरी की बिलाई माता थी। इसी के नाम से इस क्षेत्र का नाम बिलाईगढ़ पड़ा। 12 गाँव के समूह को बरहों कहा जाता है। बरहों का अधिकारी फुलझर में निवास करता था। जहाँ गोड़वंशीय फुलझर जमींदार रहा करते थे। कहा जाता है कि 1700 ईस्वी में रतनपुर राजा के पास शिकायत पहुँचने लगी कि इस रास्ते में जो तीर्थ यात्री जगन्नाथपुरी की यात्रा पर जाते

थे, उन्हें पहाड़ी गोड़ सताते थे। अतः गोड़ों के नायक माँझी भेरवार को बिलाईगढ़ और कटंगी क्षेत्र इस शर्त पर प्रदान कर दिया गया कि वे उस मार्ग में आने वाले तीर्थ यात्रियों की रक्षा करेंगे। परिणाम अच्छा निकला, माँझी ने तीर्थ यात्रियों की सुरक्षा की और दो सौ साल तक उसकी पीढ़ी राज करती रही। माँझी की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र गुमानसिंह और मुखीराम आपस में लड़ पड़े। दोनों में बँटवारा हो गया। मुखीराम को बिलाईगढ़ और गुमानसिंह को कटंगी का क्षेत्र मिला। किन्तु गुमान सिंह के कोई संतान न होने के कारण दोनों क्षेत्र फिर आपस में मिल गये। मराठा शासन के बाद बिलाईगढ़ जमींदारी अंग्रेजों के हाँथ में आ गयी।

भटगाँव

भटगाँव जमींदारी का क्षेत्रफल लगभग 96 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत था। ग्रामों की संख्या 160 थी। यहाँ का जमींदार बिन्झवार जाति का था। इसके पूर्व पुरुष जोगीराय रतनपुर नरेश कल्याणसाय के साथ दिल्ली गया था। जहाँ उसे (राजा को) मुगल बादशाह जहाँगीर की प्रभुत्ता स्वीकार करने के लिये जाना पड़ा था। किन्तु कुछ वर्षों के बाद रतनपुर के राजा कुपित हो गये तथा इसका परिवार रतनपुर से भागकर नदी के पार जंगल में चला गया। जहाँ संबलपुर नरेश राज्य था। भटगाँव जमींदारी का निर्माण इसी परिवार के द्वारा किया गया था। आगे चलकर इसमें किकरदा तालुका जोड़ दिया गया। 17वीं शती ई. में जमींदारी रतनपुर के अधिकार में आ गयी। राज्य ने इसके जमींदारी हक को स्वीकार कर इसे पाँच पीढ़ी तक टकौली नहीं बाँधी। मराठा शासन में 400 रु. वार्षिक टिकौली बाँधी गयी।

फिंगेश्वर

इस जमींदारी का क्षेत्रफल लगभग 270 वर्ग कि. मी. तक विस्तृत था। इसके ग्रामों की संख्या 86 थी। यहाँ गोड़ों की जमींदारी थी जो सैकड़ों वर्ष तक इनके पास रही। 16वीं शती ईस्वी में रतनपुर के हैहयवंशी राजाओं की सूची में इस गोंड़ जमींदारी फिंगेश्वर के नाम का उल्लेख मिलता है। मराठों ने इस जमींदारी की वार्षिक टकौली पाँच सौ रुपया बाँधी थी।

देवरी

इस जमींदारी का कुल क्षेत्रफल लगभग 112 वर्ग कि. मी. में विस्तृत था। इसकी जमींदारी बंझवार जाति के हाथ में थी। संभवतः सोनाखान जमींदारी के संबंधी रहे हैं। स्वतंत्रता संग्राम के समय जमींदार महाराजसाय ने सोनाखान के विरुद्ध अंग्रेजों को सहायता दी थी। सोनाखान का जमींदार इसका भतीजा था लेकिन सोनाखान के पुत्र गोविन्दसिंह ने इसका बदला शीघ्र चुका दिया और उसे मार डाला। अंग्रेजो के पास जाने के पूर्व यह जमींदारी बिन्झवारों के हाथ में थी।

बिन्द्रानवागढ़

इस जमींदारी का क्षेत्रफल 2340 वर्ग कि.मी. में विस्तृत था। इसके ग्रामों की संख्या 446 के आसपास थी। 36 गढ़ों में यह भी एक प्रमुख गढ़ था। इस जमींदारी के संगठन के समय इसका नाम नवागढ़ रखा गया था किन्तु नवागढ़ नामक एक और गढ़ होने के कारण इसके नाम के आगे बेन्दरा (इस क्षेत्र में बन्दरों की बहुतायत होने के कारण) जोड़कर बेन्दरा–नवागढ़ अर्थात् बेन्दरानवागढ़ रखा गया। जो बोलचाल में बिन्द्रानवागढ़ हो गया। यह गढ़ पहले पटना महाराज के अधिकार में था। बाद में यह राजगोड़ों के अधिकार में आ गया। यह कैसे आया इसकी जनश्रुति इस प्रकार है। लाँजीगढ़ के गणपति की एक शाखा राजा सिंगलसाय के नेतृत्व में छुरा में आकर बस गयी थी। छुरा उस समय मरदा जमींदारी के भंजिया जाति के जमींदार के कब्जे में था। उसे इस बात की आशंका थी कि सिंगलसाय इसकी जमींदारी को हथिया लेगा। अतः उसे विष देकर मरवा डाला। सिगलसाय की पत्नी गर्भवती थी जो भागकर पटना चली गयी। वहाँ दासी बनकर काम करने लगी, वहाँ उसे एक़ पुत्र हुआ जिसका नाम धुरवा (कचरा) रखा गया। यह बालक बचपन में ही इतना शूरवीर था कि इसकी चर्चा होने लगी। यह अपनी वीरता के लिये शत्रुओं में चुनौती बन गया। राजा ने प्रसन्न होकर इसे मरदा

की जमींदारी सौंप दी। इसने मरदा जमींदार की हत्या कर अपने पिता की हत्या का बदला लिया और सारी सपंत्ति छीन कर आसपास के भू–पतियों को भी पराजित कर इस जमींदारी में मिला लिया। इस प्रकार वह बिन्द्रानवागढ़ का जमींदार बन गया।

खरियार जमींदारी

खरियार जमींदारी का क्षेत्रफल लगभग 1834 वर्ग कि. मी. में विस्तृत था। इसके अंतर्गत 606 ग्राम थे। खरियार जमींदारी के जयपुर (बिहार) के महाराजा ने अपनी पुत्री का ब्याह पटना के महाराजा प्रतापदेव के छोटे राजकुमार के साथ सम्पन्न किया था। उसे यह जमींदारी दहेज में प्राप्त हुई। इसी वंश के अधिकार में यह जमींदारी चलती रही। इस जमींदारी के जमींदार चौहान क्षत्रिय थे। इस जमींदारी में खैालगढ़, गौरागढ़ और कुमरागढ़ के इलाके शामिल थे। अंग्रेजी शासन में यह उड़ीसा प्रान्त में चली गयी।

कटंगी

इस जमींदारी का क्षेत्रफल 80 कि. मी. के आसपास था। इसके ग्रामों की संख्या 42 थी। रतनपुर नरेश (हैहयवंशी) द्वारा कटंगी जमींदारी लगभग 270 वर्ष पूर्व गोड़ों के नायक माँझी परिवार भेरवार को इस शर्त पर दे दी गयी थी कि इस जमींदारी से होकर जाने वाले जगन्नाथपुरी के तीर्थयात्रियों की रक्षा करेंगे। जिसका पालन माँझी निष्ठापूर्वक कार्य करते रहे और इस जमींदारी को सम्भालते रहे। माँझी की मृत्यु के बाद उसके बेटों में संपति को लेकर झगड़ा हुआ जिसमें गुमानसिंह को कटंगी की जमींदारी मिली और गुमानसिंह का कोई वंशज न होने के कारण इस जमींदारी को बिलाईगढ़ में मिला दिया गया।

नर्रा

यह बहुत छोटी–सी जमींदारी थी। इसका कुल क्षेत्रफल 30 कि. मी. के आसपास था। इसमें ग्रामों की संख्या 16 थी। यह जमींदारी पहले खरियार जमींदारी का इलाका था जिसे 270 वर्ष पहले खरियार जमींदार ने अपनी पुत्री को दहेज में दिया था

कौड़िया

इस जमींदारी का क्षेत्रफल लगभग 442 वर्ग कि. मी. था। इसमें ग्रामों की संख्या 155 थी। पहले कौड़िया तालुका खालसा तालुका था और हैहयवंशी राजघराने के अधिकार में था। इसी राजघराने के वंशज इसके जमींदार और तालुकेदार कहलाने लगे थे। अंतिम जमींदार के रणजीतसिंह की मृत्यु होने तथा जमींदार निसंतान होने के कारण उसकी विधवा पत्नी विष्णुप्रिया देवी ने इस जमींदारी को सम्भाला।

औंधी

इस औंधी जमींदारी का क्षेत्रफल लगभग 120 कि. मी. था। ग्रामों की संख्या 43 थी। यह जमींदारी पनवाडा जमींदारी का एक अंग थी। इसे बँटवारे में अलग कर दिया गया। परन्तु जमींदार के निसंतान होने के कारण यह जमींदारी पनवाड़ा जमींदारी में शामिल कर दी गई।

फुलझर

इस जमीदारी का क्षेत्रफल 1263 कि. मी. के आसपास था। इसमें ग्रामों की संख्या 527 थी। इस जमींदारी के जमींदार राजवंशी गोड़ थे। कहा जाता है कि इस वंश के हटराजसाय ने 270 वर्ष पूर्व इस इलाके के आदिवासी

राजा को पराजित कर अपने अधिकार में कर लिया था। इस राजवंश की चौथी पीढ़ी में त्रिभुवन साय नामक राजा के राजत्व काल में इसकी लहुरी शाखायें सारंगढ़, रायगढ़, सक्ती और सुअरमाल में जाकर जम गयी। इससे स्पष्ट होता है कि छत्तीसगढ़ की अधिकांश जमींदारियाँ और रियासतों के शासक फुलझर जमींदार के वंशज थे और वे फुलझर जमींदार को अपना वंशज मानते थे।

बरबसपुर

इस जमींदारी का क्षेत्रफल कुल 48 वर्ग कि. मी. था। इसके ग्रामों की संख्या 23 थी। बरबसपुर जमींदारी पूर्व में गंडई जमींदारी का एक भाग थी। इस जमींदारी में धुर–गोड़ जमीदार थे। बाजीराम भोंसला के राजत्वकाल में इसे गंडई से अलग कर दिया गया और जमींदार को ठाकुर की पदवी दी गयी।

सुअरमाल

इस जमींदारी का कुल क्षेत्रफल 298 वर्ग कि. मी. के आसपास था। इसके ग्रामों की संख्या 102 थी। पहले यह जमींदारी हैहयवंशी राजाओं के राजत्वकाल में खालसा तालुक था। यहाँ के तालुकेदार ने विद्रोह किया था। तब यह जमींदारी गोड़ जमींदार को प्रदान कर दी गयी। तब से यह जमींदारी 13–14 पीढ़ी तक इनके कब्जे में रही। इस जमींदारी का नाम सुअरमाल इसलिये पड़ा क्योंकि यहाँ के प्रथम जमींदार पूरनराय ने एक उपद्रवी सुअर को मार गिराया था तब से इसका नाम सुअरमार पड़ा और बोलचाल में सुअरमाल हो गया।

खुज्जी

इस जमींदारी का कुल क्षेत्रफल 94 वर्ग कि. मी. था। ग्रामों की संख्या 33 थी। लगभग 200 वर्ष पहले गोड़ राजाओं ने इसे एक मुसलमान सैनिक को जिसने इसे नागपुर के भोंसला राजा रघुजी के आक्रमण के विरुद्ध सहायता पहुँचायी थी। उसे पुरस्कार के रूप में प्रदान किया गया था।

गंडई

इस जमींदारी का कुल क्षेत्रफल 249 वर्ग कि. मी. था। इसके ग्रामों की संख्या 86 थी। कहा जाता है कि गढ़ मंडला के राजा ने अपने एक संबंधी लिंगाधर धुर गोड़ को यह जमींदारी प्रदान कर दी थी। इसे पड़ोसियों ने राजा की पदवी दे दी। इसी वंश के मुखी ठाकुर ने जमींदारी के तीन हिस्से करके तीनों पुत्रों में बाँट दिया। सन् 1828 ई. में इसका पुष्टिकरण हो गया। बँटवारे में दिये गये दो हिस्से सिलहटी बरबसपुर को जमींदारी का दर्जा दिया गया। राजा बख्तसिंह पर टकौली न पटाने पर भोंसलों ने आक्रमण कर दिया तो वे कवर्धा भाग गये। कुछ वर्षों बाद खैरागढ़ के जमींदार ने आक्रमण किया उस समय राजा तरवरसिंह की माता राजकाज सम्भालती थी। तरवरसिंह के बाद उसके पुत्र रणवीरसिंह का दावा इसलिये खारिज कर दिया गया कि वह राजा का अवैध पुत्र था क्योंकि उसकी माता ब्याहता नहीं थी। किन्तु रणवीरसिंह ने मुकदमा चलाकर अपना हक प्राप्त कर लिया और इस जमींदारी का खोलवा क्षेत्र एवं 21 ग्राम खैरागढ़ के अधिकार में आ गये।

कोराचा

कोराचा का क्षेत्रफल 306 वर्ग कि. मी. था। इसके अंतर्गत ग्रामों की संख्या 77 थी। इसका जमींदार मुसलमान था। पहले यह पनवाड़ा जमींदारी में थी बाद में बंटवारे में यह अलग जमींदारी कोराचा नाम से बनी।

गुण्डरदेही

इस जमींदारी का क्षेत्रफल 124 वर्ग कि. मी. था। इसके ग्रामों की संख्या 148 थी। इस जमींदारी ने 1525 ईस्वी में बस्तर राजा द्वारा किये गये आक्रमण का सामना करने में रतनपुर को सहायता पहुँचायी थी, उसे ईनाम में यह जमींदारी दी गयी थी। इसके साथ ही राजोली, अरमोरी, अर्जुन्दा, गुरेड़ा तालुका भी ईनाम में दिये गये। इसका तत्कालीन

जमींदार माखनसिंह था जो एक असर्फी टिकौली में देता था। यह व्यवस्था भीखमराय दीवान तक चली। जब हैहयवंशी राज्य समाप्त हो गया तब बिम्बाजी ने चारों तालुकों को जमींदारी से बाहर कर दिया।

पड़पोड़ी

इस जमींदारी का क्षेत्रफल 42 वर्ग कि. मी. था। इसके अंतर्गत 24 ग्राम थे। इस जमींदारी के जमींदार धमधा के गोड़ राजा थे। 18वीं शती ईस्वी में विद्रोह करने के कारण यह जमींदारी गोड़ों से निकालकर एक राजपूत परिवार को दे दी गयी।

ठाकुरटोला

इस जमींदारी का क्षेत्रफल 280 वर्ग कि. मी. तक विस्तृत था। इसके ग्रामों की संख्या 81 थी। इस जमींदारी के पूर्व जमींदार को उनकी आचरणहीनता के कारण हटा दिया गया। 1842 ईस्वी में मराठों ने इसे चमारराय के पूर्व पुरुष को प्रदान कर दिया। यह जमींदारी राजगोड़ों से संबंध रखती थी।

सहसपुर लोहारा

सहसपुर लोहारा जमींदारी का क्षेत्रफल लगभग 219 वर्ग कि. मी. था। इसके ग्रामों की संख्या 88 के आसपास थी। पहले यह कवर्धा रियासत का एक भाग था। इसे कवर्धा के राजा महाबलीसिंह द्वारा बैजनाथ सोनसिंह को प्रदान कर दिया गया। जो उसी के वंश के बेल करिया गोड़ थे। सहसपुर लोहारा अलग अलग गाँव हैं। इन दोनों के मध्य 2 कि. मी. लम्बा एक तालाब था। कहा जाता है कि हैहयवंशी राजाओं के आदि पुरुष सहस्त्रार्जुन के नाम से बसाया गया था। यहाँ से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख के अनुसार राजा यशोराज, उनकी रानी लक्ष्मीदेवी, उनकी संतान भोजदेव, राजदेव और कुमारी जसल्लादेवी का नाम उत्कीर्ण मिलता है।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ में प्रशासनिक ईकाई के रूप में जमींदारियों का विवरण मिलता है जो वास्तव में यहाँ के प्रशासक थे। परिस्थितियों वश इनका स्वरूप बदलता रहा और कभी ये रियासतों का स्वरूप लेतीं तो कभी अलग होकर जमींदारियाँ ही रह जातीं। छत्तीसगढ़ के गौरवशाली इतिहास में इन जमींदारियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

खण्ड–4 आधुनिक इतिहास
अध्याय 10
ब्रिटिश काल का इतिहास (1818 शती ईस्वी से)

मुगलकाल में 'गोंडवाना' कहलाने वाला छत्तीसगढ़ क्षेत्र मराठाकाल में ही ब्रिटिश शासकों के नियंत्रण में आ गया था। मराठाकाल के अंतिम चरण में मराठा शासक अप्पा साहब (सन् 1818 ई.) को सीताबर्डी (नागपुर) युद्ध में परास्त होना पड़ा था। ब्रिटिश शासक चाहते तो छत्तीसगढ़ को भी नागपुर में शामिल कर साम्राज्य स्थापित कर सकते थे, किन्तु उनकी दूरदृष्टि ने साम्राज्य विस्तार को ज्यादा महत्त्व दिया और छत्तीसगढ़ को अलग नियंत्रण में रखा। ब्रिटिश शासन ने अप्पाराव को पुरुषाजी की विधवा दुर्गाबाई को पुत्र गोद लेने के लिये कहा। रघुजी द्वितीय की पुत्री भानुबाई के 10 वर्षीय पुत्र बाजीवा को 16 जून, 1818 ई. को गोद लिया गया और इस उत्तराधिकारी का नाम बाजीवा से बदलकर रघुजी बापू साहब रखा गया। जो मराठाकालीन इतिहास में रघुजी तृतीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस बालक के व्यस्क होने तक मराठा शासन नागपुर और छत्तीसगढ़ के अंग्रेजी शासन के संरक्षण में चला गया। अंग्रेजी शाासन ने रेजीडेन्ट जेनकिंग को नागपुर हुकूमत का संरक्षक नियुक्त किया। छत्तीसगढ़ भू–भाग के लिये प्रशासन संचालन हेतु अलग से ब्रिटिश सुप्रिन्टेन्डेंट की नियुक्ति हुई। सन 1818 ई. से 1830 ई. तक ब्रिटिश काल माना जाता है।

ब्रिटिशकाल

सन् 1818 ई. से 1830 ई. की अवधि में छत्तीसगढ़ क्षेत्र में प्रशासन के लिये ब्रिटिश सुप्रिन्टेन्डेंट के रूप में निम्न अधिकारियों को नियुक्त किया गया था।

ब्रिटिशकाल में छत्तीसगढ़ में पदस्थ सुप्रिन्टेन्डेन्ट

1. एडमण्ड, 2. कर्नल एगन्यू , 3. कैप्टन हण्टर , 4. कैप्टन सैंडिस, 5. केप्टन बिलकिन्सन, 6. केप्टन क्राफर्ड आदि प्रमुख हुये।

इनके छत्तीसगढ़ में कार्यकाल का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है :–

1. सुप्रिन्टेन्डेन्ट एडमण्ड (1818 शती ईस्वी)

छत्तीसगढ़ में प्रथम सुप्रिन्टेन्डेन्ट के रूप में ब्रिटिश शासन की ओर से नागपुर स्थित ब्रिटिश रेजीडेन्ट जेनकिंग ने एडमण्ड को नियुक्त किया था। इस प्रकार सन् 1818 ई. में छत्तीसगढ़ ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आ गया। यद्यपि प्रशासन के क्षेत्र में भू–राजस्व, न्याय, पुलिस इत्यादि प्रभावित रहे। क्योंकि एडमण्ड का कार्यकाल अल्पकालीन था। एडमण्ड के कार्यकाल में डोंगरगढ़ के जमींदार ने अप्पा साहब भोंसले की प्रेरणा से अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की बिगुल फूँकी थी। एडमण्ड ने खैरागढ़ के जमींदार से सहयोग लेकर विद्रोह को दबा दिया। अंग्रेजी शासन ने इस सहयोग के लिये ईनाम स्वरूप खैरागढ़ के जमींदार को डोंगरगढ़ की जमींदारी प्रदान की थी।

कर्नल एगन्यू (1818 से 1825 ई.)

ब्रिटिश सुप्रिन्टेन्डेन्ट कैप्टन एडमण्ड के आकस्मिक निधन के बाद कर्नल एगन्यू को छत्तीसगढ़ का प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त किया गया। छत्तीसगढ़ में नियुक्त हुये सुप्रिन्टेन्डेन्ट कर्नल एगन्यू एक योग्य एवं कुशल प्रशासक थे। उनकी प्रशासनिक क्षमता से तत्कालीन गर्वनरं जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज बहुत प्रभावित हुये थे। कर्नल एगन्यू के कार्यकाल में छत्तीसगढ़ अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हुये थे जिनका विवरण निम्नानुसार है :–

1. रायपुर को छत्तीसगढ़ की राजधानी बनाया गया

ब्रिटिश काल में 1818 ई. में कर्नल एगन्यू के कार्यकाल की एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है कि उन्होंने कलचुरियों की राजधानी रतनपुर से राजधानी हटाकर रायपुर में स्थापित की। नागपुर से रायपुर का सीधा सड़क सम्पर्क होने तथा प्रशासन की दृष्टि से रायपुर सुविधाजनक होने के कारण इसे केन्द्र बिन्दु मानकर 1818 ईस्वी में ब्रिटिश अधीक्षक का मुख्यालय बनाया गया। कर्नल एगन्यू ने अपना निवास स्थान सिविल लाईन्स स्थित उस बंगले को बनाया था जो कलेक्टर बंगला के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा आज मुख्यमंत्री निवास के नाम से जाना जाता है।

2. छत्तीसगढ़ के परगनों का पुनर्गठन

कर्नन एगन्यू ने कुशल प्रशासन हेतु छत्तीसगढ़ के परगनों का पुनर्गठन किया। मराठाकाल में छत्तीसगढ़ में 27 परगनें थे। जिसे पुनर्गठित कर आपस में मिलाकर 8 परगने बनाये गये। ये 8 परगने भौगोलिक आधार पर क्षेत्र को लेकर बनाये गये थे। इनका क्षेत्रफल 288 कि. मी. लम्बा एवं 192 कि. मी. चौड़ा था। पुनर्गठित परगनों में रायपुर, रतनपुर, राजनाँदगाँव, नवागढ़ और खरौद था। बाद में बालौद को भी शामिल कर इनकी संख्या 9 कर दी गयी। प्रत्येक परगने में नियुक्त परगना अधिकारी को कमाविशदार कहा जाता था। कमाविशदार परगने का जिम्मेदार अधिकारी होता था। वह प्रशासनिक व्यवस्था अपने अधीनस्थों की मदद से करता था।

3. जल प्रबंधन व्यवस्था

कर्नल एगन्यू ने छत्तीसगढ़ के भौगोलिक क्षेत्र का सर्वेक्षण कराकर प्रवाहित नदियों के जल प्रंबंधन के अनुसार सिंचाई के उत्तम साधन हेतु नहर एवं स्टाप डेम का समुचित स्थानों में निर्माण करवाया। प्रमुख नदियों से नहरें निकालने की योजना भी इनके कार्यकाल में तैयार की गयी एवं कुछ नहरें निकाली गईं जिससे सिंचाई की व्यवस्था की गयी। राजधानी रायपुर में पेयजल प्रमुख समस्या थी अतः खारुन नदी के तट पर जल संग्रहण एवं शुद्धिकरण संयंत्र स्थापित किया गया जो भाटागाँव रायपुर में जल शोधन केन्द्र के रूप में आज भी स्थापित है। रायपुर में सबसे उच्च भूमि छोटापारा में एक जल संग्रहण केन्द्र जिसे नलधर कहा जाता है बनवाया गया जिससे पूरे नगर की जलपूर्ति की जाती थी। भूमिगत जलसंग्रहण (टैंक) आज भी नलघर में संरक्षित है उसे उन दिनों जल संग्रहण के लिये बनवाया गया था।

4. भू–राजस्व व्यवस्था में सुधार कार्य

कर्नल एगन्यू ने छत्तीसगढ़ में सिंचाई की उत्तम व्यवस्था करने के बाद भू–राजस्व व्यवस्था में आवश्यक सुधार कार्य किये। जिससे छत्तीसगढ़ की राजस्व आय सन 1818 ई. में 331,470 रुपये से बढ़कर 1825 ई. में 4,03,224 रुपये वार्षिक हो गयी थी। कर्नल एगन्यू की सूझबूझ से खजाने में राजस्व की आय बढ़ी। इन्होंने भू–राजस्व व्यवस्था में निम्नांकित सुधार किये :–

(क). छत्तीसगढ़ में भू–राजस्व का निर्धारण भूमि का स्थिति के अनुसार आंकलन कराकर किया गया। इसमें भूमि का क्षेत्र, उसकी प्रगति और किसानों के साधनों को आधार बनाकर किया गया।

(ब) छत्तीसगढ़ की भूमि को 8 परगनों में विभक्त कर प्रत्येक परगना में प्रभारी अधिकारी के रूप में कमाविशदार को नियुक्त किया गया। कमाविशदार को उच्च वेतनमान दिया गया ताकि वह ईमानदारी एवं निष्ठा से कार्य कर राजस्व आय में वृद्धि कर सके। उसके सहयोगियों के रूप में परगनों में अमीन तथा 25–30 गाँवों के लिये एक पण्ड्या नामक राजस्व अधिकारी नियुक्त किया गया।

(ग) राजस्व भुगतान में सरलीकरण करके तीन आसान किस्तों में लगान अदायगी करने का प्रावधान बनाकर आदेश प्रसारित किये गये। इस आदेश के अनुसार लगान की प्रथम किस्त आधा भाग 25 नवम्बर तक, दूसरी किस्त एक चौथाई 5 फरवरी तक तथा शेष तीसरी एवं अंतिम किस्त की अदायगी का प्रावधान रखा गया।

(घ) कर्नल एगन्यू ने मराठाकाल में प्रचलित पटेल के पद को समाप्त कर दिया एवं गौटियापद को कायम रखा गया।

(ङ) भू–राजस्व (लगान) गाँव के गौटिया को वसूल करने का अधिकार दिया गया। इस कार्य के बदले में गौटिया को मुफ्त भूमि प्रदान की गयी। भूमि की आय गौठिया द्वारा दान देने, एवं ब्रिटिश अधिकारियों के आगमन व्यवस्था पर खर्च की जाती थी।

(फ) भू–राजस्व व्यवस्था का कड़ाई से पालन करने के लिये सतत निगरानी की जाती थी।

आर्थिक विकास कार्य

मराठा काल में वित्तीय स्थिति बदतर हो चली थी। जमींदार कर्ज के कारण दूसरे जमींदारों को जमींदारी सौंपने लगे थे। मराठाकाल में आर्थिक संसाधन कमजोर हो चले थे। तब ब्रिटिश अधीक्षक कर्नल एगन्यू ने छत्तीसगढ़ क्षेत्र में निम्नलिखित आर्थिक सुधार किये :–

(अ) मुद्रा विनियम क्षेत्र में विषमताओं को समाप्त कर उसमें एकरूपता लाने का प्रयास किया गया।

(ब) आर्थिक क्षेत्र में वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि को प्रोत्साहन दिया गया!

(स) छत्तीसगढ़ के किसानों में वस्तुओं के उत्पादन में रुचि पैदा करना ताकि अधिकाधिक उत्पादन कर सकें।

(द) आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये प्रशासन और जनता के बीच तालमेल स्थापित करना।

उपरोक्त आर्थिक सुधारों से छत्तीसगढ़ की अर्थ व्यवस्था में व्यापक सुधार इनके कार्यकाल में हुआ था।

विद्रोहियों का दमन

कर्नल एगन्यू के कार्यकाल में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध निम्न विद्रोह हुये जिनका इन्होंने कुशलता से दमन कर दिया था :–

1. सोनाखान जमींदारी में विद्रोह

ब्रिटिश काल में छत्तीसगढ़ की जमींदारियों में सोनाखान जमींदार का नाम उल्लेखनीय है। कर्नल एगन्यू के प्रशासन काल में सोनाखान के जमींदार रामाराय ने सन् 1819 ईस्वी में विद्रोह का बिगुल फूँका था। सन् 1818 ई. में तृतीय मराठायुद्ध के समापन के साथ ही सोनाखान जमींदारी अंग्रेजी शासन के नियंत्रण में आ गयी थी। तब से सोनाखान का जमींदार रामाराय विदेशी आधिपत्य के नियंत्रण से आक्रोशित हो उठा था और क्रुध होकर खालसा के 300 ग्रामों पर कब्जा कर लिया। तब नागपुर से जेनकिन्स ने ब्रिटिश कंपनी के अधिकारियों को पत्र लिखा था–'सोनाखान का जमींदार परिवार विदेशी प्रभुत्ता को पसन्द नहीं करता है। रामाराय के पिता स्वयं रामाराव छत्तीसगढ़ में ब्रिटिश शासन के लिये आतंक हैं, रेजीडेन्स जेनकिन्स एवं कर्नल एगन्यू की रिपोर्ट पर ब्रिटिश कंपनी के वाइसराय के निर्देश पर कैप्टन मैक्सन को सेना की टुकड़ी देकर विद्रोह के दमन के लिये सोनाखान भेजा गया। सोनाखान के समीप ब्रिटिश सेना द्वारा रामाराय

की सेना को पराजित कर कैप्टन मैक्सन ने सोनाखान में कब्जा कर लिया किन्तु रामाराय से इस शर्त पर संधि कर ली गयी कि वह जीवन पर्यन्त नागपुर सरकार (ब्रिटिश शासन) के विरुद्ध किसी विद्रोह व षड्यंत्र में भाग नहीं लेगा और रामाराय को पुनः सोनाखान की गद्दी सौंप दी गयी।

2. परलकोट जमींदारी का विद्रोह

सन् 1824 ई. में कर्नल एगन्यू के प्रशासन के समय ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बस्तर राज्य के उत्तर–पश्चिम में परलकोट में स्थित जमींदारी के जमींदार गेन्दसिंह ने विद्रोह किया था। परलकोट जमींदारी में अबुझमाड़िया आदिवासियों ने ब्रिटिश शासन की शोषण नीति के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल फूँका। जिसका नेतृत्व जमींदार गेन्दसिंह ने किया। कर्नल एगन्यू ने इस विद्रोह का दमन करने के लिये चान्दा से ब्रिटिश सेना बुलवायी, जिसमें मराठा और अंग्रेज दोनों की टुकड़ी थी। इस संयुक्त सेना ने परलकोट को घेर कर गेन्दसिंह को बन्दी बना लिया। 20 जनवरी, 1825 ई. को परलकोट में ही गेन्दसिंह को फाँसी दे दी गयी। यह कर्नल एगन्यू के कार्यकाल की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी क्योंकि कर्नल एगन्यू ने इस घटना के बाद ही त्यागपत्र दे दिया था। एक जानकारी के अनुसार इस घटना से वे बहुत ज्यादा व्यथित हुये थे क्योंकि परलकोट के जमींदार गेन्दसिंह को दिया जाने वाला मृत्युदण्ड न्यायसंगत नहीं था।

कैप्टन हंटर का कार्यकाल (1825 ईस्वी)

कर्नल एगन्यू के आकस्मिक त्यागपत्र देने के कारण ब्रिटिश सरकार को कैप्टन हंटर को कर्नल एगन्यू के स्थान पर छत्तीसगढ़ का सुप्रिन्टेन्डेन्ट बनाकर भेजा गया। इनका कार्यकाल अल्प अवधि का रहा। इनके कार्यकाल में कोई महत्त्वपूर्ण घटना या कार्य उल्लेखनीय नहीं पाया जाता। अल्प समय में ही इन्हें हटाकर इनके स्थान पर सैंडिस को नियुक्त किया गया।

कैप्टन सैंडिस का कार्यकाल (1825 से 1828 ईस्वी)

कैप्टन हंटर के कार्यों से ब्रिटिश शासन सतुष्ट नहीं था अतः उनके स्थान पर कैप्टन सैंडिस को छत्तीसगढ़ का प्रभारी नियुक्ति किया गया। इनकी नियुक्ति छत्तीसगढ़ के अधीक्षक के रूप में की गयी। कैप्टन सैंडिस एक अच्छा प्रशासक था। इनके कार्यकाल की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि इस प्रकार है :–

1. छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी भाषा को शासकीय कार्य में दर्जा देना

कैप्टन सैंडिस छत्तीसगढ़ के प्रथम प्रशासक थे जिन्होने अपने कार्यकाल में छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सर्वप्रथम अंग्रेजी भाषा को सरकारी काम–काज में माध्यम बनाया एवं इसे भाषा के रूप में दर्जा दिया। इसके पूर्व सभी सरकारी कार्य स्थानीय भाषा में होता था।

2. अंग्रेजी वर्ष (कैलेण्डर) को मान्यता

कैप्टन सैंडिस ने छत्तीसगढ़ भू–भाग पर सर्वप्रथम अंग्रेजी वर्ष (कैलेण्डर) को मान्यता प्रदान की। अँग्रेजी कैलेण्डर वर्ष जनवरी से दिसम्बर को लागू किया गया। शासकीय कार्य में इसे लेख करने के निर्देश दिये गये। छत्तीसगढ़ में अँग्रेजी 0कैलेण्डर वर्ष 1826 ई. से लागू किया गया था।

3. संचार साधनों की व्यवस्था

कैप्टन सैंडिस ने छत्तीसगढ़ में सर्वप्रथम संचार साधनों की व्यवस्था की। संचार के रूप में डाक–तार विभाग की स्थापना कर इसका विस्तार किया।

4. केन्द्रीय प्रशासन में परिवर्तन

ब्रिटिश शासन के निर्देश पर कैप्टन सैंडिस ने 13 दिसम्बर 1826 को अंग्रेजों और रघुजी तृतीय के मध्य समझौता कराया। इस समझौते के अनुसार नागपुर जिले का शासन प्रयोग के रूप में रघुजी तृतीय को सौंप दिया गया। नागपुर के अधीनस्थ भागों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और छत्तीसगढ़ क्षेत्र में अंग्रेजी शासन का नियंत्रण पूर्ववत बना रहा।

5. बस्तर और करौंद राज्य के मध्य समझौता

कैप्टन सैंडिस के कार्यकाल की यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है। छत्तीसगढ़ के बस्तर राज्य और करौंद राज्य के मध्य अक्सर झड़प होती थी, जिससे दोनों राज्यों में अशांति बनी रहती थी। अतः इन दोनों राज्यों के मध्य कैप्टन सैंडिस ने समझौता कराया।

कैप्टन बिलकिन्सन (1828 ईस्वी)

कैप्टन सैंडिस के बाद कैप्टन बिलकिन्सन को छत्तीसगढ़ का प्रभारी बनाया गया। इनका कार्यकाल एक वर्ष का रहा। इनके कार्यकाल में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ।

कैप्टन क्राफर्ड (1828 से 1829 ई.)

सन् 1828 ई. में बिलकिन्सन के बाद कैप्टन क्राफर्ड को छत्तीसगढ़ का ब्रिटिश अधीक्षक नियुक्त किया गया। इसके प्रशासन काल में 27 दिसम्बर, 1829 ई. को अंग्रेजों और भोंसले शासक रघुजी तृतीय के मध्य एक नया समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार नागपुर एवं उसके अधीनस्थ भू–भागों का प्रशासन रघुजी तृतीय को सौंप दिया गया।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ में उपरोक्त ब्रिटिश प्रशासकों ने अपने कुशल प्रशासन में राजस्व, जल प्रबंधन, सिंचाई, शिक्षा एवं स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में परिवर्तन कर सुधार कार्य किये। अंग्रेज शासक दूरदृष्टि रखते थे उन्होंने साम्राज्य का विस्तार और सुदृढ़ता का अक्षरसः पालन किया तथा छत्तीसगढ़ को संरक्षण काल में अलग कर अपने हाथों में सत्ता की बागडोर दिसम्बर, 1885 ई. में रघुजी तृतीय के मृत्यु के बाद पुनः हस्तगत कर ली।

छत्तीसगढ़ में ब्रिटिश शासन की स्थापना

मराठा शासन के अंतिम चिराग रघुजी तृतीय का 11 दिसम्बर, 1853 को निधन हो गया। रघुजी तृतीय निःसंतान थे। उन्होंने मृत्यु के पूर्व अंग्रेजी रेजीडेन्स से कई बार उत्तराधिकारी गोद लेने के लिये अनुमति माँगी, किन्तु ब्रिटिश शासन उसे टालता रहा और मृत्यु पूर्व तक उसे अनुमति नहीं दी गयी। यह ब्रिटिश शासन की कुटनीतिक चाल थी। 11 दिसम्बर, 1853 को रघुजी तृतीय की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के अभाव में साम्राज्यवादी एवं हड़पनीति के उन्नायक ब्रिटिश वाइसराय लार्ड डलहौजी ने 28 जनवरी, 1854 को यह घोषणा की कि नागपुर के तख्त का कोई हकदार न होने के कारण नागपुर का सारा राज्य अँग्रेजी कंपनी के कब्जे में आ गया है।

इस प्रकार लार्ड डलहौजी के निर्देश पर ब्रिटिश रेजीडेन्स ने रघुजी तृतीय की मृत्यु दिनांक 11 दिसम्बर, 1953 ई. को ही सायंकाल 6 बजे नागपुर राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया था, किन्तु 28 जनवरी, 1854 ई. को लार्ड डलहौजी की घोषणा के बाद नागपुर साम्राज्य का विधिवत विलय 13 मार्च, 1854 ई. को हुआ। अतः 13 मार्च, 1854 ई. के दिन से ही नागपुर के साथ–साथ छत्तीसगढ़ भी ब्रिटिश शासन में शामिल हो गया।

एक फरवरी, 1853 को अंतिम जिलेदार गोपालराव ने अंग्रेजी शासन के प्रतिनिधि को छत्तीसगढ़ का शासन भार सौंप दिया। ब्रिटिश शासन ने छत्तीसगढ़ में सर्वप्रथम डिप्टी कमिश्नर चार्ल्स इलियट को नियुक्त किया।

इस प्रकार 1854 ई. में नागपुर व उसके अधीनस्थ भू–भाग को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिये जाने से छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी शासन की स्थापना हुई। भारत की आजादी के पूर्व अर्थात् 14 अगस्त, 1947 तक छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी सत्ता कायम थी।

ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक व्यवस्था

छत्तीसगढ़ में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत उनकी प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालना आवश्यक है। 11 दिसम्बर, 1853 ई. को मराठा शासक रघुजी तृतीय की मृत्यु हो गयी थी। रघुजी के निःसंतान होने के कारण उत्तराधिकारी के अभाव में अंगेजी शासन को सुअवसर प्राप्त हो गया। साम्राज्यवादी गर्वनर जनरल लार्ड डलहौजी ने नागपुर और उसके अधीनस्थ राज्य छत्तीसगढ़ को ब्रिटिश शासन में शामिल कर लिया जिसकी विधिवत घोषणा 13 मार्च, 1854 को अंग्रेजी शासन द्वारा की गयी। अतएव इसी घोषणा के साथ ही छत्तीसगढ़ अंग्रेजी साम्राज्य में शामिल हो गया। इस प्रकार 31 जनवरी, 1855 तक ही छत्तीसगढ़ में मराठा शासन रहा। छत्तीसगढ़ के मराठा शासकों में अंतिम शासक मराठा जिलेदार गोपालराव ने एक फरवरी, 1855 को अंग्रेजी शासन के प्रतिनिधि को छत्तीसगढ़ का प्रशासन सौंप दिया। ब्रिटिश शासन ने चार्ल्स इलियट को छत्तीसगढ़ का प्रथम डिप्टी कमिश्नर नियुक्त किया।

प्रशासनिक व्यवस्था : (डिप्टी कमिश्नर एवं सहायक की नियुक्ति)

छत्तीसगढ़ को ब्रिटिश शासन में शामिल किये जाने के बाद यहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये अंग्रेजी शासन ने डिप्टी कमिश्नर और सहायक कमिश्नर की नियुक्ति की थी। छत्तीसगढ़ में प्रथम डिप्टी कमिश्नर के रूप में चार्ल्स इलियट को नियुक्त किया गया। जिसका मुख्यालय रायपुर में रखा गया। जहाँ से पूरे छत्तीसगढ़ को प्रशासन को संचालित किया जाता था। डिप्टी कमिश्नर को प्रशासन में सहयोग देने के लिये एक सहायक कमिश्नर को नियुक्त किया गया था। अंग्रेजी शासन ने सहायक कमिश्नर एवं अतिरिक्त कमिश्नर के पदों पर भारतीय को नियुक्त करने का प्रावधान किया था ताकि प्रशासन में उनकी भागीदारी से सुगमता आ सके। इसी कारण मराठा शासन के अंतिम जिलेदार गोपालराव को बिलासपुर का अतिरिक्त कमिश्नर एवं मोहिबुल हसन को रायपुर का अतिरिक्त कमिश्नर का पद दिया गया।

प्रशासनिक ईकाई : (तहसीलों का गठन)

छत्तीसगढ़ में डिप्टी कमिश्नर चार्ल्स इलियट ने प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के लिए प्रशासनिक ईकाई के रूप में तीन तहसीलों का गठन किया। सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ को तीन तहसीलों में विभक्त किया गया :– 1. रायपुर, 2. धमतरी, 3. रतनपुर। इसके बाद एक फरवरी, 1857 को इन तीन तहसीलों को बढ़ाकर पाँच कर दिया गया। जिसमें नवागढ़ एवं धमधा को जोड़ा गया। जुलाई 1857 में इसमें आंशिक परिवर्तन किया गया धमधा के स्थान पर दुर्ग को तहसील का दर्जा दिया गया एवं दुर्ग में तहसील मुख्यालय बनाया गया। इन तहसीलों में एक–एक तहसीलदार नियुक्त किया गया। जो इस प्रशासनिक ईकाई के प्रमुख थे। तहसीलदार के पद पर अंग्रेजों की नियुक्ति की गयी।

परगनों का पुनर्गठन

छत्तीसगढ़ में मराठाकाल में जो परगने थे, उसे डिप्टी कमिश्नर चार्ल्स इलियट ने सुविधा की दृष्टि से पुनर्गठित किया। प्रत्येक परगने में कमाविशदार पर नायब तहसीलदार की पद स्थापना की गयी। नायब तहसीलदारों का पद भारतीयों के लिये आरक्षित किया गया। मराठा शासन में तीन परगने राजरो, लवन, और खल्लारी थे। इनके स्थान पर चार नये परगने बनाये गये जो क्रमशः गुल्लु, सिमगा, मारो और बीजापुर थे।

मध्यप्रान्त का गठन

ईस्ट इंडिया कंपनी शासन ने अपनी साम्राज्यवाद नीति के अंतर्गत कुछ राज्यों का गठन प्रशासन की दृष्टि से किया जाना उचित समझा। फलस्वरूप 2 नवम्बर, 1861 को औपचारिक रूप से भारत के गर्वनर जनरल ने 'मध्य प्रान्त,' (सेन्ट्रल प्राँविस) राज्य गठन करने की घोषणा की। ब्रिटिश शासन का प्रस्ताव इस प्रकार था ''सागर–नर्मदा राज्य क्षेत्र जो नागपुर प्रान्त से लगा हुआ, एक ऐसा संयुक्त क्षेत्र जिसका कुल क्षेत्रफल 135 वर्ग किलोमीटर था जिसकी जनसंख्या 60 लाख से अधिक थी। इसका राजस्व साढ़े सात लाख पौण्ड वार्षिक के लगभग था। यद्यपि इस क्षेत्र में अन्तर जाति, भाषा और आचार–विचार की विभिन्नता विद्यमान है तो भी इसमें व्याप्त जिले, जातियाँ तथा वर्गों में से अनेक या तो एक समान है या उनमें आपस में ठोस सादृश्य तथा एकरूपता है।'' इस प्रस्ताव में वे जिले भी बतलाये गये जो मध्यप्रान्त में शामिल किये गये थे। नागपुर, चान्दा, छिन्दवाड़ा, रायपुर बस्तर तथा कुरोन्दा के अधीनस्थ सिरोचा, सागर, दमोह, जबलपुर, मण्डला, सिवनी, बैतुल, नरसिंहपुर, और होशंगाबाद आदि थे। इस मध्यप्रान्त का मुख्यालय अर्थात् राजधानी 'नागपुर' में रखा गया। इसके प्रशासन के लिये एक वरिष्ठ अधिकारी को चीफ कमिश्नर के पद पर नियुक्त किया गया। इस प्रकार छत्तीसगढ़ भी 2 नवम्बर, 1861 से मध्यप्रान्त का एक हिस्सा बन गया। डिप्टी कमिश्नर चार्ल्स इलियट अब चीफ कमिश्नर के अधीनस्थ हो गया।

छत्तीसगढ़ संभाग का गठन

मध्यप्रान्त के गठन के बाद कुशल प्रशासन हेतु संभागों का गठन किया गया जिसके अंतर्गत सन 1862 ई. में छत्तीसगढ़ को एक संभाग बनाया गया। संभाग का मुख्यालय रायपुर को बनाया गया। छत्तीसगढ़ संभाग में सम्बलपुर का क्षेत्र शामिल किया गया। इस प्रकार 1862 ई. से छत्तीसगढ़ में 1905 ई. तक यहाँ के प्रशासन एवं दिशा–निर्देशों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

जिलों का गठन

छत्तीसगढ़ को मध्यप्रान्त के गठन के बाद दो जिलों में विभक्त किया गया: (1) रायपुर और (2) बिलासपुर जिला बनाया गया। ये जिले 1862 ई. में छत्तीसगढ़ संभाग के कमिश्नर के अधीनस्थ रखे गये। रायपुर एवं बिलासपुर में एक–एक डिप्टी कमिश्नर रखा गया। सन् 1862 ई. में सम्बलपुर को नया जिला बनाकर वहाँ पर डिप्टी कमिश्नर की नियुक्ति की गयी।

भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार पुनर्गठन

ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन ने विशेष भौगोलिक पुनर्गठन व प्रशासनिक परिवर्तन पर विचार कर सन् 1905 ई. में सम्बलपुर जिला और उड़ीसा की पाँच रिसासतें कालाहण्डी, पटना, रेड़ाखोल, बामड़ा, और सोनपुर, बंगाल प्रान्त में शामिल कर दी गयी। इसके बदले में छोटा नागपुर, झारखण्ड क्षेत्र की पाँच रियासतें जिसमें हिन्दी भाषा का प्रचलन था जैसे सरगुजा, उदयपुर, कोरिया, जशपुर, और चाँगभखार जो पूर्व में बंगाल प्रान्त में थे उसे पृथक कर मध्यप्रान्त में मिला दिया गया इस प्रकार ब्रिटिश शासन ने छत्तीसगढ़ की प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन किया था। छत्तीसगढ़ में जिलों का पुनर्गठन किया गया। जिसके अंतर्गत 1905 ई. से 1906 ई. के मध्य एक नया जिला दुर्ग जिले को बनाया गया। ब्रिटिश शासन ने इसके बाद कोई प्रशासनिक परिवर्तन नहीं किया।

ब्रिटिश राजस्व व्यवस्था

ब्रिटिश शासन में मराठाकाल में प्रचलित भू–राजस्व व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किये गये। भू–राजस्व की पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर नवीन राजस्व संहिता तैयार की गयी। इस नवीन राजस्व संहिता को भू–राजस्व की व्यवस्था

में लागू किया गया। सन् 1854 में ब्रिटिश शासन ने तीन साला बन्दोबस्त आरंभ किया। यह व्यवस्था 8 साल तक अर्थात् 1854 ई. से 1862 ई. तक चलती रही। सन् 1862 ई. से एक नये बन्दोस्त की व्यवस्था आरंभ की गयी। इस नये बन्दोबस्त के अनुसार भू–राजस्व पटाने वालों को भू–स्वामित्वाधिकार प्रदान किये गये। प्रायः गाँव के मालगुजार या गौटियों को भू–स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हुआ। ऐसे कृषक जो अपनी भूमि पर 12 वर्षों से काबिज थे, उन्हें स्वामित्व प्रदान किया गया। रायपुर, बिलासपुर एवं दुर्ग जिले में भू–राजस्व बन्दोबस्त किया गया। बिलासपुर जिले में पहला बन्दोबस्त 1868 ई. में चीजम साहब ने किया। चीजम साहब के अनुसार गाँव के अन्दरुनी प्रबन्ध के क्षेत्र में वे पूर्ण स्वतंत्र थे। जैसे किसानों को बसाने या उन्हें अधिकारच्युत करने, लगान वृद्धि करने आदि। बन्दोबस्त प्रतिवेदन में मालगुजार तथा किसानों को अलग–अलग अधिकार बताये गये। जाँच पड़ताल के बाद गाँव के गौटियों और मालगुजारों को मालगुजारी के अधिकार दिये गये। सन् 1889 ई. को रायपुर जिले का दूसरा बन्दोबस्त मिस्टर फूलर ने किया था। रायपुर जिले में तीसरा बन्दोबस्त 1897 ई. में शुरू हुआ जो 1911 ई. में पूर्ण किया गया। रायपुर जिले का अंतिम एवं चौथा बन्दोबस्त 14 नवम्बर, 1929 को आरंभ किया जो 1931 में पूर्ण किया गया। जो तीस वर्षों के लिये था। इधर बिलासपुर में दूसरा बन्दोबस्त सन् 1880 में आई.एस. बेरी ने किया था, जो 12 वर्षों तक के लिये था। ब्रिटिश शासन ने राजस्व की दृष्टि से सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ क्षेत्र को तीन भागों में विभक्त किया :–

1. खालसा, 2. जमींदारी, 3. ताहुतदारी।

लोरमी, तरेंगा, सिरपुर, लवन, सिहावा, खल्लारी और संजारी में ताहुतदारी बनाये गये। खालसा एवं जमींदारी पूर्ववत रहे।

सन् 1856 ई. में राजस्व विभाग में नये अधिकारियों की नियुक्ति की गई। राजस्व अधिकारी के नये पद इस प्रकार थे :–

1. रिस्तदार, 2. नायब रिस्तदार, 3. मुहासिफ, 4. दफ्तरी, 5. तासिल बाकी, 6. नवीस, 7. परगना, 8. मोहर्रिर, 9. नाजिर (कोषालय का खजान्ची) सियानवीस, एवं फौतदार का पद निर्मित कर उनकी नियुक्ति की गयी।

आय के मद

अंग्रेजी शासन काल में 1854 ई. के पूर्व आय के सात मद थे। इनमें टकौली, भू–राजस्व, आबकारी, पंसारी, कलाली, सेवाय और दिगर सेवाय आदि थे जिन्हें सीमित कर केवल 4 मद बनाये गये। वे हैं क्रमशः 1. भू–राजस्व, 2. आबकारी, 3. सायर और 4. पंडरी। इन सभी करों की अदायगी नगद किये जाने का प्रावधान रखा था।

मुद्रा व्यवस्था

ब्रिटिश शासन ने छत्तीसगढ़ में साम्राज्य स्थापित होते ही प्रचलित मराठाकालीन मुद्राओं एवं रुपयों का चलन तत्कालीन रूप से बंद कर दिया और उसके स्थान पर ईस्ट इंडिया कंपनी के सिक्के एवं रुपयों को कानूनी तौर पर लागू किया। एक मई, 1855 को ईस्ट इंडिया कंपनी का नया सिक्का जारी किया गया। यद्यपि मराठाकालीन नागपुरी सिक्के को बदलने के लिये 6 माह का समय निर्धारित कर दिया गया। कंपनी प्रशासन की इस मुद्रा व्यवस्था से आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इस नयी मुद्रा प्रणाली से ब्रिटिश काल में विनिमय एवं व्यापारिक कार्यों में सुगमता आयी।

पुलिस व्यवस्था

ब्रिटिशकाल में पुलिस व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन किया गया। मराठाकाल में पुलिस व्यवस्था दोषपूर्ण थी उसे नये ढंग से सुव्यवस्थित किया गया। सन् 1855 ई. में छत्तीसगढ़ के भू–भाग को अंग्रेजी शासन में शामिल किया गया था। उस समय पुलिस विभाग में मात्र 149 कर्मचारी थे। डिप्टी कमीश्नर इलियट ने चीफ कमीश्नर से पुलिस बल में वृद्धि व पुलिस व्यवस्था में सुधार लिये जाने की माँग की। प्रशासनिक व्यवस्था एवं सुरक्षा की दृष्टि से इस माँग

को स्वीकार कर एक सितम्बर 1856 में सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ को चार भागों में बाँट दिया गया। ये चार भाग रायपुर सदर, रायपुर तहसील, धमतरी तहसील, और रतनपुर तहसील थे। प्रत्येक भाग व तहसील में 15 पुलिस थाने बनाये गये। एक फरवरी 1857 को इस व्यवस्था को पुनर्व्यवस्थित कर 5 भागों में बाँट दिया गया रायपुर, धमतरी, धमधा, नवागढ़, एवं रतनपुर। सन् 1858 ई. में पंजाब पुलिस मैनुअल को छत्तीसगढ़ पुलिस मैनुअल के अनुसार छत्तीसगढ़ पुलिस कर्मचारियों को मिलने वाली पोषाक, हथियार, ड्रील और उनके अनुशासन संबंधी नियम बनाये गये। सन 1862 ई. में पुलिस व्यवस्था के क्षेत्र में नवीन सुधार किये गये। इसके अनुसार प्रत्येक जिले में पुलिस अधीक्षक, सहायक अधीक्षक, और प्रत्येक थाने में निरीक्षक, उप निरीक्षक, प्रधान आरक्षक एवं आरक्षक के पद निर्मित किये गये थे। इस प्रकार छत्तीसगढ़ पुलिस विभाग को संगठित एवं सुव्यवस्थित ब्रिटिश शासन द्वारा किया गया। ये पद आज भी छत्तीसगढ़ पुलिस प्रशासन में व्यवस्थित हैं।

न्याय व्यवस्था

ब्रिटिश काल के पूर्व मराठाकाल में न्याय व्यवस्था पंगु एवं दोषपूर्ण थी। न्याय व्यवस्था को अंग्रेजी शासन ने नये सिरे से सुव्यवस्थित कर नवीन न्याय व्यवस्था लागू की। इस कार्य के लिये पृथक् से न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति न कर इसका दायित्व जिला अधिकारी (कलेक्टर) और उसके सहायकों को सौंपा गया। कमिश्नर समय–समय पर डिप्टी कमिश्नर को न्यायिक कार्यों से संबंधित निर्देश देता था। दीवानी मामलों की सुनवाई तहसीलदार किया करते थे। किन्तु सितम्बर, 1856 में उन्हे न्यायिक कार्यों से पृथक् कर उनके कार्य भू–राजस्व वसूली तक ही केन्द्रित कर दिये गये। दीवानी मामलों में अपील की व्यवस्था थी। अपील संबंधी कार्यों के लिये संभागीय कमिश्नर को अधिकृत किया गया। जनवरी 1863 को अंतिम अपीली न्यायालय का प्रावधान किया गया। इसके लिये पृथक् से एक न्यायिक कमिश्नर की व्यवस्था ब्रिटिश शासन ने की थी। फौजदारी प्रकरणों में डिप्टी कमिश्नर एवं तहसीलदार को फैसले देने के अधिकार थे। कमिश्नर को अंतिम फैसला करने का अधिकार था। जो आजीवन कारावास का दण्ड दे सकता था। मुत्यु दण्ड देने के लिये गर्वनर जनरल की अनुमति आवश्यक थी।

जेल व्यवस्था

छत्तीसगढ़ में कैदियों को 1854 ई. के पूर्व जेल में रखने की कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी। कैदियों के लिये रायपुर नगर में छोटा सा कारागार था। उस कारागार में 200 कैदियों के रखा जा सकता था। कैदियों को 1858 ई. के पूर्व राशन दिये जाने का प्रावधान था। डिप्टी कमीश्नर इलियट ने जेल व्यवस्था में ठोस सुधार किये। जेल में राशन के स्थान पर 'मैस' प्रारंभ किया। जेल परिसर में विस्तार किया गया। सन 1885–86 ई. में बिलासपुर में जेल की स्थापना की, फिर नये जेल परिसर का निर्माण करवाया गया। वर्ष 1861 ई. में रायपुर कारागार में विचाराधीन कैदियों की संख्या 293 थी। रायपुर जेल को केन्द्रीय जेल का स्वरूप देकर 700 कैदियों के लायक बनवाया गया। कैदियों के स्वास्थ्य परीक्षण एवं चिकित्सा हेतु एक सिविल सर्जन की नियुक्ति करके जेल व्यवस्था में आवश्यक सुधार किये थे।

डाक घर की व्यवस्था

ब्रिटिश शासन ने छत्तीसगढ़ में साम्राज्य स्थापित करने के बाद एक नवीन डाक–तार की व्यवस्था की। अंग्रेजी शासन ने डाक लाने–ले जाने के लिये डाकिया अथवा हरकारे की व्यवस्था की। घोड़ी पर चढ़कर डाक वितरित करने की व्यवस्था की गयी। इसके पूर्व यह व्यवस्था न होने पर महीनों डाक नहीं बँट पाती थी। इस कार्य में तहसील एवं परगना के अधिकारियों का सहयोग लिया जाता था। रायपुर में एक डाकघर की स्थापना की गयी। इस डाकघर में एक अंग्रेजी लेखक, एक मुस्तैदी, तथा एक चपरासी की पदस्थापना की गयी। डाकघर में पतों पर स्टाम्प (मुहर) लगाने के बाद ही वितरित करने का कार्य किया जाता था इन स्टाम्पों में ब्रिटिश शासिका महारानी विक्टोरिया का चित्र अंकित था जिसकी

कीमत एक आना थी। सन् 1857 ई. में लेफ्टिनेन्ट स्मिथ को रायपुर डाकघर का प्रथम पोस्टमास्टर नियुक्त किया गया। लेफ्टिनेन्ट स्मिथ भारतीय क्रांतिकारियों के विद्रोही समाचार संबंधी पत्रों पर नजर रखते थे।

यातायात संबंधी सुधार

छत्तीसगढ़ में आवागमन की सुगमता के लिये अंग्रेजी शासन ने व्यापक सुधार किये। 1854 ई. से पूर्व छत्तीसगढ़ में यातायात की स्थिति ठीक नहीं थी। आने–जाने अथवा यातायात के लिये पहले बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, भैंसागाड़ी, पालकी आदि का उपयोग किया जाता था। तीर्थ स्थलों में प्रायः पैदल यात्रायें की जाती थीं। जिसमें यात्रियों को अत्यधिक समय लगता था। ब्रिटिश शासन ने इस दिशा में क्रांतिकारी सुधार किये थे। सन् 1818 ई. से 1830 ई. में ही ब्रिटिश नियंत्रण काल में नागपुर से कलकत्ता को जोड़ने वाली सड़क मार्ग का कार्य प्रारंभ किया था। जो ग्रेट ईस्टर्न अर्थात् जी. ई. रोड के रूप में जाना जाता है। कर्नल एगन्यू ने इस कार्य को प्रारंभ करवाया था। कैप्टन ब्लेक की अधीनता में 300 रुपये मासिक वेतन पर छत्तीसगढ़ में सड़क निर्माण के लिये मि. फिरोज की नियुक्ति की गयी थी। इस कार्य का देखभाल एवं रिपोर्ट प्राप्त करने के लिये एक अंग्रेज अधिकारी कैप्टन फारेस्टर को अधिकृत किया गया था। अंग्रेजी गर्वनर जनरल लार्ड डलहौजी के कार्यकाल में यातायात प्रबंध एक महत्त्वपूर्ण सुधार कार्य था। इन्होंने देश भर में यातायात सुधार कार्य हेतु सड़क, पुल, एवं भवन आदि का निर्माण कार्य प्रारंभ किया। इसके लिये पृथक् से लोक निर्माण विभाग की स्थापना की गयी। जिसने पुरानी सड़कों की मरम्मत की। सड़कों का निर्माण कार्य किया गया। रायपुर से जगदलपुर एवं बस्तर से भद्राचलम (आंध्रप्रदेश), रायपुर से कालाहांडी (उड़ीसा) को जोड़ने वाली सड़क का निर्माण किया गया। रायपुर से रतनपुर (बिलासपुर) को सड़क मार्ग से जोड़ा गया। 1896 ई. में धर्मजयगढ़ एवं खरसिया मार्ग, जशपुर–राँची मार्ग, 1905 में रायपुर जगदलपुर मार्ग एवं बस्तर से भद्राचलम तक मार्ग का निर्माण किया गया।

छत्तीसगढ़ में सड़क यातायात के साथ ही रेल यातायात का भी जाल बिछाया गया। 19वीं शती ईस्वी के प्रारंभ में छत्तीसगढ़ में पहली बार रेल यातायात प्रारंभ किया गया। नागपुर से राजनाँदगाँव तक रेलवे गेज लाईन यात्रियों के लिये 1882 ई. में प्रारंभ की गयी। कालान्तर में नागपुर–बंगाल रेलवे बनाने के लिये इसे बड़ी लाईन में परिवर्तित किया गया। इसे दक्षिण–पूर्वी रेलवे का नाम दिया गया। 9 मई, 1887 ई. को बंगाल–नागपुर रेलवे लाईन बनायी गयी। सन् 1906 ई. में इस रेलवें लाईन को कलकत्ता से जोड़ा गया। अंग्रेजी शासन ने 1890 ई० में बिलासपुर के रेलवे स्टेशन का निर्माण करवाया था। इस प्रकार छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी शासन ने रेलवे से दूरस्थ स्थानों को जोड़कर यातायात को सुगम एवं सुलभ बनाया था। परिणामस्वरूप छत्तीसगढ़ महाराष्ट्र, बंगाल से सीधे जुड़ गया। इससे छत्तीसगढ़ व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया। छत्तीसगढ़ में प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति हुई और छत्तीसगढ़ समृद्धशाली हो गया।

निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि ब्रिटिश काल में छत्तीसगढ़ की उपादेयता, छत्तीसगढ़ का गौरवमय इतिहास बन गया।

सारांश
(छत्तीसगढ़ के इतिहास से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु)

भौगोलिक परिवेश

- विश्व की 12,500 धान की प्रजातियों में से 10,000 प्रजाति केवल छत्तीसगढ़ में ही पायी जाती हैं। इसी कारण से इसे 'धान का कटोरा 'कहते हैं।
- छत्तीसगढ़ 18 अंश उत्तरी अक्षाँश से 24 अंश उत्तरी अक्षाँश तथा 80 अंश पूर्वी देशान्तर से 84 अंश पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।
- छत्तीसगढ़ भू–भाग का कुल क्षेत्रफल 135,194 वर्ग किलोमीटर है।
- यह समशीतोष्ण जलवायु वाला प्रदेश है।
- यहाँ 1200 मिलिमीटर औसतन वार्षिक वर्षा होती है।
- वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या 2,07,95,956 है।
- देश के सम्पूर्ण वनों का 12 प्रतिशत वन छत्तीसगढ़ में है।
- यहाँ तीन राष्ट्रीय उद्यान एवं ग्यारह अभ्यारण्य हैं।
- कुल वन का क्षेत्रफल 69,772 वर्ग किलोमीटर है।
- यहाँ के वनों में 36 प्रतिशत साल वृक्ष के वन हैं।
- यहाँ 28 प्रकार के बहुमूल्य खनिजों का खजाना है।
- छत्तीसगढ़ में मैकल पर्वत श्रेणी सबसे ऊँची पर्वत श्रेणी है।
- यहाँ की सबसे बड़ी नदी महानदी है, जो सिहावा पर्वत से उद्गमित होकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसका प्राचीन नाम पुराणों में चित्रोत्पला मिलता है।
- महानदी छत्तीसगढ़ क्षेत्र और उड़ीसा क्षेत्र से लगातार 825 किलोमीटर प्रवाहित होकर, बंगाल की खाड़ी में गिरती है।
- भौगोलिक एवं प्रकृति की तरह सहज एवं सरलता के कारण छत्तीसगढ़ के निवासियों को भोला–भाला छत्तीसगढ़िया कहा जाता है।

छत्तीसगढ़ का नामकरण

- 36 गढ़ों के कारण इस भू–भाग के छत्तीसगढ़ नामकरण की सर्वमान्यता है।
- इस भू–भाग का नाम 'कोसल' अथवा 'दक्षिण कोसल' प्राचीन नाम मिलता है, जो इसका पौराणिक एवं रामायणकालीन नाम है।
- महाभारतकाल में इसे महाकान्तार क्षेत्र कहा जाता था।
- कलचुरि काल में इसे चेदिसगढ़ कहा जाता था।
- मुगलकाल में इसे गोंडवाना कहा जाता था।

छत्तीसगढ़ का पुरातात्विक इतिहास

- छत्तीसगढ़ के पुरातत्व में पूर्व पाषाणकाल, पाषाण काल एवं उत्तर पाषाण काल के अवशेष मिलते हैं।
- महानदी की घाटी एवं रायगढ़ जिले के सिंधनपुर में पूर्व पाषाणकालीन औजार प्राप्त हुये हैं।
- उत्तर पाषाणकाल के अवशेष महानदी घाटी, दुर्ग जिले के अर्जुनी, रायगढ़ के टेरम से प्राप्त हुये हैं।
- महापाषाणकालीन स्मारकों में दुर्ग जिले में कारकाभाट, करहीभदर, सोरर, मुजगहन, घनौरा, लीलर, कुलिया, चिरचौरी में मिले हैं।
- महापाषाणकालीन स्मारकों में दुर्लभ पाषाणकालीन प्रतिमा कारकाभाट (दुर्ग जिला) में मिली है जो छत्तीसगढ़ में पूर्व हड़प्पाकालीन संस्कृति की परिचायक है।
- प्रागैतिहासिक काल में शैलचित्र रायगढ़ जिले में कबरा पहाड़, सिंधनपुर, बसनाझर, ओगना, बोतलटा, करमागढ़, लेखापाड़ा, रामगढ़, सरगुजा, एवं चितवा डोंगरी से मिले हैं।
- विश्व की प्राचीन नाट्यशाला रामगढ़ सरगुजा में स्थित है। जिसका नाम 'सीताबेंगरा' अर्थात् सीतामढ़ी है। रामगढ़ पहाड़ की पहाड़ी को काटकर नाट्यशाला का रूप दिया गया है।
- प्राचीन नाट्यशाला सीताबेंगरा में उत्कीर्ण ब्राह्मी लिपि के आधार पर इसे दूसरी–तीसरी शती ईस्वी का माना जाता है।
- अशोककालीन ब्राह्मी लिपि सीताबेंगरा में 'सुतनुका' नाम की नर्तकी देवदासी 'रूपदर्शिका' का उल्लेख हुआ है।
- छत्तीसगढ़ में ग्राम सिरकट्टी गरियाबंद में पैरी नदी के तट पर 'नदी–बंदरगाह' (डॉकयार्ड) के अवशेष मिले हैं।
- छत्तीसगढ़ से रोम का व्यापार प्राचीनकाल में नदी मार्ग से होता था जिसकी पुष्टि नदी बंदरगाह के अवशेष मिलने से होती है।
- बुढ़ीखार ग्राम (मल्हार के पास) बिलासपुर से सबसे प्राचीन मूर्ति ''हरिहर'' की मूर्ति मिली है।
- किरारीधोड़ी (बिलासपुर) से दुर्लभ प्राचीन 'काष्ठ स्तंभ लेख' प्राप्त हुआ है।
- लिपि के आधार पर किरारी का काष्ठ स्तंभ लेख दूसरी–तीसरी शती ईस्वी का है।
- गुंजी (ऋषभ तीर्थ) सबसे बड़ा उत्कीर्ण अभिलेख है जो एक मीटर चौड़ा तथा एक मीटर लम्बा है।
- गुंजी अभिलेख ब्राह्मी लिपि में दूसरी–तीसरी शती का सातवाहनकालीन अभिलेख है।
- गुंजी अभिलेख में ऋषभतीर्थ का उल्लेख है। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर को ऋषभदेव का संबंध छत्तीसगढ़ से होने की पुष्टि होती है।

- छत्तीसगढ़ में प्राचीन सिक्के, आहत मुद्राओं के साथ–साथ सोने, चाँदी, ताम्बे आदि के सिक्के मिले हैं।
- छत्तीसगढ़ में ताला ग्राम में विश्व की दुर्लभ प्राचीन मूर्ति 'कालपुरुष' की मिली है जो द्वादश राशियों से निर्मित है।
- ताला की अद्‌भुत प्रतिमा 'कालपुरुष' पाँचवीं शती ईस्वी की है।
- ताला ग्राम प्राचीनकाल में तारादेवी के शक्तिपीठ के रूप में विख्यात था।
- भारत में अब तक ज्ञात शैलाश्रयों में प्रागैतिहासिक मानव (एवमैन) व मृत्साँगना (मरमेड़) चित्र केवल सिधनपुर (रायगढ़) में मिलता है।

आद्यैतिहासिक काल

- उत्तर वैदिककाल से छत्तीसगढ़ आर्यों के सम्पर्क में आ गया था।
- वैदिक काल में अधिकांश भाग दण्डकारण्य क्षेत्र के अंतर्गत था, जो अनार्यों के आधिपत्य में था।
- उत्तर वैदिककाल से ही इस अंचल की पवित्र भूमि में ऋषि–मुनियों का आगमन प्रारंभ हो चुका था।
- ऋषि–मुनियों के अधिकांश आश्रम एवं तपोस्थली महानदी के तट पर निर्मित हुये थे।
- छत्तीसगढ़ का पौराणिक एवं रामायणकालीन नाम दक्षिण कोसल था।
- वाल्मीकि रामायण के अनुसार कोसल के राजा भानुमन्त की पुत्री कौशल्या का विवाह राजा दशरथ से हुआ था।
- कोसल नरेश भानुमन्त की पुत्री का नाम भानुमति था। राजा दशरथ से विवाह के बाद कोसल की राजदुहिता होने के कारण उनका नाम कौशल्या रखा गया।
- दक्षिण कोसल की राजधानी आरंग में होने की जानकारी मिली है।
- पुराणों के अनुसार दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) में 48 इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने राज्य किया था।
- आर्य–संस्कृति के प्रचार–प्रसार के लिये अगस्त्य ऋषि ने उत्तरापथ से दक्षिणापथ जाने के लिये विन्ध्याचल पर्वत को लाँघकर दण्डकारण्य क्षेत्र से होकर दक्षिण में प्रवेश किया था।
- महेन्द्र भले ही महेन्द्र पर्वत कहलाता है, इसे शृंगि ऋषि पर्वत भी कहते हैं।
- शृंगि ऋषि का आश्रम सिहावा पर्वत होने की जनश्रुति प्रबल है। शृंगि ऋषि के नाम पर सिहावा पर्वत का नाम पड़ा।
- सरगुजा स्थित रामगढ़ की पहाड़ी में वशिष्ठ मुनि के नाम पर वशिष्ठ गुफा है।
- तुरतुरिया में महर्षि वाल्मीकि का आश्रम होने की जन मान्यता है।
- ऋषि जमदग्नि की पत्नी का नाम रेणुका था जिसके नाम पर सरगुजा में प्रवाहित होने वाली नदी का नाम रेण अथवा रेड़ नाम मिलता है।

पौराणिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

- दण्डकारण्य क्षेत्र में अनेक ऋषियों के दर्शन करते हुये रामचन्द्र जी ने जिस अंतिम ऋषि के दर्शन किये वे अगस्त्य ऋषि थे।
- गंगा से गोदावरी तक पूरा बेल्ट दण्डकारण्य कहलाता था।
- रामायण के अनुसार रामचंद्रजी ने वनवास के 14 वर्षों में 12 वर्ष दण्डकारण्य (छत्तीसगढ़) में बिताये थे।
- जनश्रुति के अनुसार मारकण्डेय ऋषि का आश्रम अमरकन्टक, लोमस ऋषि का आश्रम राजिम, वाल्मीकि का आश्रम

तुरतुरिया, शरभंग ऋषि का आश्रम ग्राम शरभंजा (मैनपाट), कंक ऋषि का आश्रम काँकेर, मतंग ऋषि का शिवरीनारायण, मचका पर्वत सिहावा से मुचकुन्द ऋषि एवं सिहावा से शृंगि ऋषि के संबंध का उल्लेख मिलता है।

- राजा दण्ड का राज्य दण्डक कहलाता था, जो दैत्यगुरु शुक्राचार्य के श्राप से राजा दण्ड का राज्य आरण्य बदलकर 'दण्डकारण्य' हो गया।
- कोसल राजा भानुमंत अयोध्यापति दशरथ के समकालीन थे।
- कोसल नरेश भानुमंत की पुत्री का नाम भानुमति था, जो राजा दशरथ के साथ ब्याही गयी थी, कोसल की राजकुमारी होने के कारण इनका नाम 'कौशल्या' पड़ा। महाकवि कालिदास ने अपनी कृति 'रघुवंश' में इसका उल्लेख किया है।
- कोसल के संबंध में मल्लार उत्खनन से एक सिक्का ब्राह्मी लिपि में 'मानस कोसलीय' लेखबद्ध प्राप्त हुआ है। छत्तीसगढ़ का प्राचीन नाम कोसल ही था।
- कोसल दो भागों में विभक्त हुआ उत्तर कोसल (अवध) एवं दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) कहलाया।
- उत्तर कोसल की राजधानी अवध (अयोध्या) और श्रावस्ती थी। दक्षिण कोसल के दक्षिणापथ में होने के कारण दक्षिण कोसल नाम पड़ा।
- उत्तर कोसल को कोसल महाजनपद के नाम से संबोधित किया जाता था।

पौराणिक काल

- दण्डकारण्य का प्रवेश द्वार काँकेर था।
- कंक ऋषि के नाम से काँकेर का नाम पड़ा।
- महाकवि कालिदास ने अमरकन्टक को मेघदूत में आम्रकूट कहा है।
- विन्ध्य एवं सतपुड़ा होने के कारण मैकल नाम पड़ा, नर्मदा नदी इस पर्वत से उद्गमित होने के कारण 'मैकलपुरी' भी कहा जाता है।
- छत्तीसगढ़ के प्राचीन सांस्कृतिक नगरों में राजिम, सिरपुर, आरंग, शिवरीनारायण, मल्लार, जाँजगीर आदि प्रमुख थे।
- शिवरीनारायण का उल्लेख 'रामवतार चरित' एवं 'याज्ञवलक्य संहिता' में मिलता है।
- पौराणिक ग्रन्थों में राजिम का उल्लेख 'चद्रमासी नगरी' के रूप में हुआ है। यहाँ परम वैष्णवी राजा चन्द्रसेन था।
- ब्रह्म पुराण में राजिम को 'कमल क्षेत्र' कहा गया है।
- सरगुजा स्थित रामगिरि पर्वत (रामगढ़ पहाड़ी) में महाकवि कालीदास ने 'मेघदूत' अमरकृति की रचना की थी।
- रामायणकाल में सरगुजा का प्राचीन नाम झारखण्ड क्षेत्र मिलता है।
- महाभारतकाल में सरगुजा का नाम डाडौर क्षेत्र मिलता है।
- महाभारतकाल में छत्तीसगढ़ का प्राचीन नाम महाकान्तार क्षेत्र था।
- महाभारतकाल में छत्तीसगढ़ क्षेत्र चेदि जनपद के नाम से प्रसिद्ध होने के कारण चेदिस से चेदिसगढ़ कहलाया।
- महाभारतकालीन शिशुपाल चेदि वंश का महान शासक इस अंचल से है।

- सिरपुर का महाभारतकाल में नाम मणिपुर मिलता है।
- महाभारतकाल में सिरपुर का राजा चित्रवाहन था जिसकी पुत्री का नाम चित्रांगदा था, चित्रांगदा का विवाह अर्जुन से हुआ था।
- सिरपुर का नाम चित्रांगदा के नाम से चित्रांगदापुर प्राचीन नाम पड़ा।
- सिरपुर में अर्जुन के पुत्र वभ्रुवाहन की राजधानी थी।
- चेदि राजा शिशुपाल के नाम से सरईपाली में शिशुपाल पर्वत आज भी विद्यमान है।
- महाभारतकालीन राजकुमारी रुक्मणी विदर्भ से संबंधित थी। वह राजा रुक्म की बहन थी जिसका हरण श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को हराकर किया था।
- आरंग का संबंध महाभारतकालीन महान दानी राजा मोरध्वज से है। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने इनकी दानवीरता की परीक्षा इनके पुत्र को आरे से कटवाकर की थी। तब से इसका आरंग नाम पड़ा।
- उन्हीं दिनों ताम्रध्वज रतनपुर का राजा था, जो महाप्रतापी था।
- महानदी का पौराणिक नाम चित्रोत्पला एवं निलोत्पला बताया गया है।
- शिवनाथ नदी का पौराणिक नाम शिवा एवं शुनी मिलता है।
- खारुन नदी का पौराणिक नाम क्रमा एवं क्रमु मिलता है।
- संकरी नदी का पौराणिक नाम संकुली, मधुवा एवं मुकुण्ड मिलता है।
- माण्ड नदी का पौराणिक नाम मंदगा है।
- अरपा नदी का पौराणिक नाम कृपा, कुपा मिलता है।
- पैरी नदी का नाम पाशिनी एवं पलाशनी मिलता है।
- तेल नदी का पौराणिक नाम उत्पला मिलता है।
- सोण्डुर नदी का पौराणिक नाम सुदामा व सोण्ड मिलता है।

छत्तीसगढ़ के विभिन्न राजवंश

- छत्तीसगढ़ का राजनैतिक इतिहास दूसरी शती ईस्वी पूर्व से मिलता है।
- छठी शती ईस्वी में बौद्ध धर्मानुयायी चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने सिरपुर की यात्रा की थी।
- सिरपुर उन दिनों विश्व के बौद्ध धर्म केन्द्रों में प्रमुख माना जाता है।
- चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने अपनी "यात्रा वृत्तान्त–युवानचाँग" पुस्तक में कहा है कि सिरपुर में लगभग 100 संघाराम एवं 10,000 बौद्ध भिक्षु निवास करते थे।
- सिरपुर उन दिनों बौद्ध धर्म का प्रमुख शिक्षा केन्द्र भी था। जहाँ विभिन्न विषयों पर अध्यापन होता था।
- बोधिसत्व नागार्जुन सिरपुर में रहकर अध्यापन का कार्य किया करते थे। बाद में उन्होंने नालंदा विश्वविद्यालय में जाकर अध्यापन कार्य किया।
- चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने लिखा है कि बौधिसत्व नागार्जुन दक्षिण कोसल की राजधानी के पास सिरपुर में निवास करते थे। अर्थात् दक्षिण कोसल की राजधानी उन दिनों आरंग ही रही होगी, जो सिरपुर से 24 कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

- बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन बौद्ध दर्शन का अध्यापन करते थे किन्तु वे अमृत बनाने में पारंगत माने जाते थे।
- मौर्यकालीन अशोक लाट (सोनहट) सरगुजा से प्राप्त हुई है।
- मौर्यकालीन गुफा सीताबेंगरा और जोगीमारा रामगढ़ पहाड़ी सरगुजा में स्थित है। जिसमें दूसरी तीसरी शती ईस्वी अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि लेखबद्ध लेख है।
- सातवाहनकालीन शिलालेख गुंजी (ऋषभतीर्थ) से प्राप्त हुआ है। जिसमें सातवाहनकालीन शासक कुमारवरदत्त का उल्लेख है।
- गुंजी शिलालेख दूसरी–तीसरी शती ईस्वी का प्राकृत लिपि में लेखबद्ध है।
- बिलासपुर जिले में कुषाण राजाओं के ताम्बे के सिक्के मिले हैं।
- सातवाहनकाल में छत्तीसगढ़ प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के रूप में स्थापित था।
- बिलासपुर जिले में महानदी के तट पर रोम के सिक्के मिले हैं।
- रोम के सिक्के मिलने से छत्तीसगढ़ से रोम से व्यापारिक संबंध होने की पुष्टि होती है।
- गुप्तकालीन सम्राट समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ विजय यात्रा के समय छत्तीसगढ़ में महेन्द्र नामक राजा राज्य करता था।
- दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) का उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में हुआ है।
- किरारीधोड़ी बिलासपुर से प्राप्त काष्ठ स्तंभ लेख में राजकीय अधिकारियों का उल्लेख हुआ है।
- मल्लार के पास ग्राम बुढ़ीखार से प्राप्त प्रथम शती ईस्वी की प्राचीन हरिहर मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसमें प्रजापति नामक स्त्री द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।
- सातवाहनकाल में शातकर्णी नामक शासक हुआ था जिसे गौतमी पुत्र शातकर्णी कहा जाता था।
- माता गौतमी शातकर्णी ने अपने नासिक गुफा अभिलेख में अपने प्रपौत्र वशिष्ठ पुत्र पुलमावि के 19वें राज्य वर्ष में उत्कीर्ण कराया था।
- द्वितीय शती ईस्वी से चौथी शती ईस्वी के मध्य छत्तीसगढ़ में चेदि वंश का विशेष प्रभाव था।
- चेदिवंश में खारवेल नामक महान प्रतापी शासक हुआ।
- चेदिवंश के प्रतापी शासक खारवेल का उल्लेख हाथीगुम्फा अभिलेख में सर्वप्रथम मिलता है।
- खारवेल के दक्षिण कोसल (छत्तीसगढ़) के विजय अभियान के समय छत्तीसगढ़ प्रथम सातकर्णी के प्रभाव क्षेत्र में था।
- चेदिवंश का उल्लेख पुराणों में भी मिलता है।
- महाभारतकाल के आदिपर्व में उल्लेख मिलता है कि प्राचीन चेदि राज्य की राजधानी शुक्ति नदी के तट पर स्थित शुक्तिमतीपुरी थी।
- बस्तर और सिहावा के अधिपति व्याध्रराज ने भी समुद्रगुप्त से अपनी पराजय सवीकार की थी।
- गुप्तवंश के शासक समुद्रगुप्त के पश्चात् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य हुआ।
- छत्तीसगढ़ में क्रमादित्य एवं महेन्द्रादित्य नाम उल्लेख वाले सिक्के, स्थानीय शैली में निर्मित मिलते हैं।
- छत्तीसगढ़ में पाँचवीं शती ई. में राजर्षितुल्य कुलवंश का राज्य था। इस वंश में शूरा नामक प्रतापी शासक हुआ था।

- शूरा नामक राजा के कारण इसे शूरावंश भी कहा जाता है।
- छत्तीसगढ़ में नलवंश एक प्रमुख राजवंश हुआ। जिसके स्वर्ण के सिक्के मिलते हैं।
- नलवंश के अधिकांश स्वर्ण सिक्के बस्तर क्षेत्र से प्राप्त हुये हैं।
- नलवंशी शासक अपने को पौराणिक काल में हुये राजा नल का वंशज बताते थे।
- नलवंश के प्रथम राजा का नाम भवदत्तवर्मा मिलता है।
- नलवंश के दूसरे राजा अर्थपति एव तीसरे राजा स्कन्दवर्मा थे।
- नलवंश में विलासतुंग नामक राजा हुआ जिसमें राजिम में राजिवलोचन मंदिर का निर्माण करवाया था।
- विलासतुंग ने राजिम के मंदिर का निर्माण पाँचवीं शती ईस्वी में कराया था।
- विलासतुंग ने अपने स्वर्गीय पुत्र की पुण्योवृद्धि के लिये उनकी स्मृति में राजिम में विष्णु का मंदिर बनवाया था।
- छत्तीसगढ़ में नलवंश का लगभग पाँच सौ साल तक राज्य था।
- नलवंशीय शासक सिसुक, वाकाटक शासक प्रवरसेन प्रथम के समकालीन था।
- सिसुक की राजधानी पुरिका जिसे पुष्करी भी कहा जाता है, छत्तीसगढ़ में दक्षिण–पूर्वी भाग में स्थित है।
- नलवंश में प्रतापी शासक व्याध्रराज हुआ जो समुद्रगुप्त के समकालीन था।
- नलवंश में वराहराज सबसे शक्तिशाली शासक हुआ था जिसने सोने के सिक्के चलाये थे।
- नलवंशीय शासक भवदत्त वर्मा ने 435 ईस्वी में परम्परागत राजधानी पुस्करी को बदलकर नंदिवर्धन को राजधानी बनाया था।
- नलवंशीय शासक स्कन्दवर्मन ने परम्परा से हटकर कुलधर्म शैव को त्यागकर वैष्णव धर्म अपनाया था।
- नलवंशीय शासक स्तंम्भ ने सोने के सिक्के चलाये थे जिसमें सर्वप्रथम नंदी का अंकन किया था।
- नलवंशीय शासक नंदराज के समय छत्तीसगढ़ के उत्तर एवं मध्य क्षेत्र में शरभपुरीय शासकों का राज्य था।
- चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय ने 635 ईस्वी में कलिंग, कोसल दक्षिणापथपति को पराजित किया था।
- विलासतुंग महाशिवगुप्त बालार्जुन के समकालीन थे।
- विलासतुंग ने शैवधर्म के स्थान पर वैष्णवधर्म को अपनाया था तथा राजिम में विष्णु का मंदिर बनवाया था।
- नलवंशीय शासक पृथ्वीव्याध्र द्वारा 'अश्वमेघ यज्ञ' कराये जाने का अभिलेखीय प्रमाण मिलता है।
- नलवंशीय शासक पाँच सौ वर्षों तक छत्तीसगढ़ में शासन करते रहे।
- शरभपुरीय शासक पाँचवीं शती ईस्वी के आसपास छत्तीसगढ़ में शासन करते थे।
- इस वंश का मूल पुरुष राजा शरभ था, जिसके नाम से शरभ वंश कहलाया।
- राजा शरभ ने शरभपुर नामक नगर की स्थापना कर प्रथम राजधानी स्थापित की थी।
- शरभपुरियों की राजधानी शरभपुर, सिरपुर के आसपास मिलने की जानकारी मिलती है।
- सिरपुर के पार्श्व में स्थित स्थानों के उत्खनन कार्य से शरभपुर के अवशेष प्राप्ति की संभावना है।
- शरभपुरियों का कार्यकाल छत्तीसगढ़ में करीब 150 वर्षों तक रहा।
- बिलासपुर के समीप ताला ग्राम में प्राप्त देवरानी जेठानी मंदिर के अवशेष एवं वहाँ से मिली विश्व की दुर्लभ प्रतिमा 'कालपुरुष' शरभपुरीय राजवंश की अनुपम कलाकृति है।

- कोसल के अमरजकुल (अमरकन्टक) की राजकुमारी का नाम लोकप्रकाशा था।
- राजकुमारी लोकप्रकाशा का विवाह पाण्डुवंशीय शासक भरतबल से हुआ था।
- शरभ के बाद उसका पुत्र नरेन्द्र हुआ जो भागवत धर्म का अनुयायी था।
- पाँचवीं शती ईस्वी में ज्योतिष शास्त्र चर्मोत्कर्ष पर था। भारत एवं विदेशों के प्राचीन विद्यापीठ में इस शास्त्र का अध्ययन किया जाता था। छत्तीसगढ़ भी इस ज्योतिष विद्या से अछूता नहीं रहा।
- ज्योतिष शास्त्र के आधार पर द्वादश राशियों से ताला की कालपुरुष की अद्भुत प्रतिमा का निर्माण हुआ था।
- प्रसन्नमात शरभवंशीय शासक ने प्रसन्नपुर बसाया था।
- शरभपुरीय शासक जयराज (545 से 560 शती ईस्वी) के शासन काल में प्रथम बार 'महा' शब्द का प्रयोग हुआ था। इन्होंने अपने नाम के आगे महा शब्द जोड़कर महाजयराज लिखवाया था तब से महा की महत्ता छत्तीसगढ़ में प्रारंभ होती है। तभी से महा शब्द का प्रचलन चल निकला।
- महाजयराज ने अपनी राजमुद्रा में सर्वप्रथम गजलक्ष्मी का अंकन करवाया था।
- महाजयराज के उत्तराधिकारी सुदेवराज ने भी अपने नाम के आगे महा लिखवाया था।
- शरभपुरीय शासक प्रवरराज के द्वारा अपने तीसरे वर्ष में जारी ताम्रपत्र लेख में 'श्रीपुर' नगर बसाया था, जो सिरपुर के नाम से विख्यात हुआ।
- प्रवरराज के बाद शरभपुरीय राजवंश का उत्तराधिकारी व्याध्रराज हुआ।
- सुदेवराज द्वितीय शरभपुरीय राजवंश का अंतिम शासक था।
- सामन्त इन्द्रबल योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में सिरपुर का स्वतंत्र शासक बन गया।
- पाण्डुवंशी अभिलेख में वंश का नाम पाण्डुवंश एवं सोमवंश मिलता है।
- पाण्डुवंशी अपने को सोमवंशी कहते थे।
- छत्तीसगढ़ के इतिहास में पाण्डुवंशी काल को सोमवंशी काल कहा जाता है।
- सोमवंशियों की राजधानी सिरपुर थी।
- दसवीं शती ईस्वी में छत्तीसगढ़ में त्रिकलिंगाधिपति उपाधि धारण करने वाला सोमवंशियों की एक शाखा मिलती है।
- पाण्डुवंश के प्रथम शासक उदयन का सातवीं शती ई. का अभिलेख मिलता है।
- अमरकन्टक के आसपास के क्षेत्र का प्राचीन नाम मेकल मिलता है।
- पाण्डुवंशी नरेशों में चन्द्रगुप्त का नाम आता है जो महाशिव तीवरदेव का छोटा भाई था।
- पाण्डुवंशी चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र हर्षगुप्त हुआ। हर्षगुप्त की पत्नी का नाम वासटा देवी था।
- रानी वासटा देवी द्वारा अपने पति राजा हर्षगुप्त की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में सिरपुर में लक्ष्मण मंदिर बनवाया गया था।
- मगध के शासक सूर्यवर्मा की पुत्री राजकुमारी वासटा देवी का विवाह पाण्डुवंशी शासक हर्षगुप्त से हुआ था।
- रानी वासटा देवी ने अपने अराध्य देव विष्णु का सनातनधाम सिरपुर में बनवाया था जो बाद में सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर के रूप में विख्यात हुआ।
- सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर सातवीं–आठवीं शती में ईंटों से बनवाया गया है।

- रानी वासटा देवी महाशिवगुप्त बालार्जुन की माता थी।
- हर्ष के पुत्र महाशिवगुप्त को बाल्यकाल में धनुर्विद्या में पारंगत होने के कारण 'बालार्जुन' कहा गया।
- महाशिवगुप्त बालार्जुन की राजधानी सिरपुर थी।
- महाशिवगुप्त बालार्जुन ने सिरपुर में बौद्ध विहार में रहने वाले भिक्षुओं के लिये ग्राम दान दिये थे।
- सोमवंशी साम्राज्य में कोसल कलिंग तथा उत्कल का कुछ भाग आने के कारण इस भू–भाग के अधिपति को 'त्रिकलिंगाधिपति' कहलाते हैं।
- त्रिकलिंगाधिपति सोमवंशी शासकों में प्रथम शासक शिवगुप्त हुआ।
- शिवगुप्त के पुत्र का नाम महाभवगुप्त जनमेजय प्रथम हुआ जिन्होंने अभिलेखों में अपने नाम के आगे परममाहेश्वर, त्रिकलिंगाधिपति उपाधि का प्रयोग किया था।
- महाभवगुप्त जनमेजय प्रथम ने अपने साम्राज्य का केन्द्र पूर्वी–दक्षिण कोसल स्वर्णपुर (सोनपुर) को बनाया था।
- महाशिवगुप्त ययाति प्रथम ने ययातिनगर बसाकर राजधानी स्थापित की थी।
- कलचुरि राजवंश की प्रथम राजधानी माहिष्मती में थी।
- त्रिपुरी के कलचुरि अपने को चंद्रवंश का मानते थे।
- रतनपुर के कलचुरि अपने को सूर्यवंश का होना बताते हैं।
- दोनों ही प्रकार से कलचुरियों का संबंध कृतवीर्य के पुत्र हैहय सहस्रार्जुन से जुड़ता है।
- हैहयवंशी कलचुरी यादववंशी थे।
- त्रिपुरी कलचुरि नरेश कोकल्लदेव प्रथम ने चंदेलवंश की राजकुमारी लट्टादेवी से विवाह किया था।
- कोकल्लदेव प्रथम के पुत्र शंकरगण को मुग्धतुंग और रागविग्रह की उपाधि दी गयी थी।
- त्रिपुरी कलचुरि शासक केयूरहर्ष जिसका नाम युवराजदेव भी मिलता है ने चालुक्य वंश की राजकुमारी नोहला देवी से विवाह किया था।
- रानी नोहला देवी के नाम पर नोहलेश्वर नामक मंदिर बनवाया गया था।
- युवराजदेव ने गोलकी मठ का निर्माण करवाया था जो भेड़ाघाट में चौंसठ योगनी मंदिर के निकट है।
- द्वितीय लक्ष्मणराज ने कोसल के अधिपति को हराकर कालिया नाग की रत्न जड़ी प्रतिमा प्राप्त की थी।
- कालिया नाग की इस प्रतिमा को लक्ष्मणराज ने सोमनाथ मंदिर में अर्पित किया था।
- द्वितीय लक्ष्मणराज ने शैव आचार्य को बैद्यनाथ मठ, उसके शिव अघोर शिव को नोहलेश्वर मठ और आचार्य प्रशान्त शिव को गार्गीमठ सौंपा।
- 1015 ईस्वी में गाँगेयदेव महाप्रतापी शासक हुये थे, जो राजा भोज के समकालीन थे।
- गाँगेयदेव को गंगु तेली कहा जाता था। इनके राजा भोज के समकालीन होने के कारण कहावत में कहाँ राजा भोज कहाँ गंगु तेली का उल्लेख होता है।
- गाँगेय देव समृद्धि एवं सम्पन्नता में राजा भोज से कम न थे।
- गाँगेयदेव ने सोने के सिक्के चलाये थे।
- गाँगेयदेव की मृत्यु के समय इनकी एक सौ रानियाँ चिता में जलकर सती हुई थीं।

- गाँगेयदेव का पुत्र कर्ण कचलुरि वंश का महान शासक हुआ था। कर्ण ने ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँच कर चक्रवर्ती की उपाधि प्राप्त कर राज्याभिषेक कराया था।
- पालवंशी शासक विग्रहपाल से अपनी पुत्री यौवनश्री का विवाह कर्ण ने किया था।
- कर्ण ने कर्णवती नगरी बसायी थी।
- कर्ण की रानी आवल्ल देवी हूण वंश की थी।
- कर्ण की दो पुत्री थीं एक यौवनश्री एवं दूसरी का नाम वीरश्री था।
- प्रयाग एवं काशी में कलचुरियों का शासन था।
- कर्ण के पुत्र गयाकर्ण ने गुहिल वंशी राजा विजयसिंह की बेटी अल्हण देवी से विवाह किया था। अल्हण देवी पाशुपत सम्प्रदाय को मानती थी इसने भेड़ाघाट में बैद्यनाथ मंदिर बनवाया था।
- विजयसिंह त्रिपुरी राजवंश का अंतिम शासक था।
- रतनपुर के कलचुरियों का काल छत्तीसगढ़ में स्वर्णकाल माना जाता है।
- त्रिपुरी से कलचुरियों की एक शाखा अलग होकर छत्तीसगढ़ आयी जिसे लहुरी शाखा कहते हैं।
- छत्तीसगढ़ में कलचुरियों की राजवंश की स्थापना 1000 शती ईस्वी में हुई। इन्हें रतनपुर का कलचुरि कहा जाता है।
- त्रिपुरी से कलचुरियों की लहुरी शाखा अलग होकर सन 1000 ई. में छत्तीसगढ़ में आकर बसी जिसका प्रथम शासन कलिंगराज हुआ। जिसने तुम्माण में राजधानी बसायी थी।
- कलिंगराज के बाद उसका पुत्र कमलराज उत्तराधिकारी बना।
- कमलराज के बाद उसका पुत्र रत्नदेव (रत्नराज) 1045 ईस्वी में कलचुरि राजवंश की गद्दी पर आसीन हुआ।
- रत्नदेव कलचुरि राजवंश का महाप्रतापी शासक हुआ इसके काल में मंदिर, प्रासाद, जलाशय, के निर्माण हुये इनके काल को स्वर्णयुग कहा जाता है।
- राजा रत्नदेव ने रत्नपुर (रतनपुर) में राजधानी स्थापित की। पूर्व में कलचुरियों की राजधानी तुम्माण थी।
- रत्नदेव ने कोरोमंडल के अधिपति राजा वज्जुक या वज्जुवर्मा की बेटी नोनल्ला से विवाह किया था।
- रत्नदेव ने रत्नेश्वर नामक देवालय का निर्णाण करवाया था।
- इनके काल में कलचुरियों की अधिष्ठात्री देवी महामाया देवी की स्थापना हुई थी।
- रत्नदेव ने रत्नपुर में राजधानी स्थापित कर उसे सुन्दर स्वरूप दिया वहाँ बड़े–बड़े जलाशयों का निर्माण भी करवाया।
- रत्नदेव के बाद उसका पुत्र पृथ्वीदेव हुआ जिसने पृथ्वीदेवेश्वर शिव मंदिर की स्थापना की थी।
- पृथ्वीदेवेश्वर मंदिर तुम्माण में बनवाया गया था एवं एक बड़ा जलाशय रतनपुर में बनवाया गया।
- पृथ्वीदेव का पुत्र जाजल्लदेव प्रथम हुआ। जाजल्लदेव प्रथम ने जाजल्लपुर नामक नगर बसाया था।
- जाजल्लपुर ही बाद में जाँजगीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।
- जाजल्लदेव ने जाजल्लपुर में प्रसिद्ध विष्णु का मंदिर बनवाया था।
- जाँजगीर में जाजल्लदेव का प्राचीन विष्णु मंदिर आज भी पुरातात्विक महत्त्व का है।

- पाली के प्राचीन शिवमंदिर का जाजल्लदेव ने जीर्णोद्धार करवाया था ।
- जाजल्लदेव ने सोने के सिक्के चलाये थे। जिसके पीठ पर गजशार्दूल का प्रतीक अंकित था।
- पृथ्वीदेव द्वितीय के समय जगपाल नामक सेनापति हुआ था। राजिम मंदिर में जगपाल की प्रतिमा स्थापित है।
- सेनापति जगपाल ने सरहागढ़ (सारंगढ़), मचका सिहवा (सिहावा) पर विजय प्राप्त की थी।
- जाजल्लदेव द्वितीय के समय मंदिरों का निर्माण हुआ था। गंगाधर के बेटे सोमराज ने मल्लार में शिवमंदिर का निर्माण करवाया था।
- उल्हणदेव ने शिवरीनारायण में चन्द्रचूड़ महादेव का मंदिर बनवाया था।
- कलचुरि राजा प्रतापमल्ल ने ताम्बे के सिक्के चलवाये थे। जिसमें सिंह की आकृति एवं एक कटार अंकित है।
- रतनपुर कलचुरि शासक रामचंद्र का बेटा रत्नदेव (द्वितीय) हुआ। जिसका विवाह गुण्डावी देवी से हुआ था। इसके पुत्र का नाम बाहरेन्द्र था, जो रतनपुर कलचुरियों का अंतिम शासक था।
- राजा बाहरेन्द्र ने अपनी राजधानी रतनपुर से हटाकर कोसंगा (कोसगई) के किले में स्थापित की थी।
- रतनपुर में कलचुरियों ने छत्तीसगढ़ में 1000 ईस्वी से 1740 ईस्वी तक लगभाग साढ़े सात सौ वर्षों तक राज्य किया।
- रायपुर में चौदहवीं शती ईस्वी के आसपास हैहयवंशी कलचुरियों ने अपनी राजधानी स्थापित की।
- हैहयवंशी कलचुरि यदुवंशी थे। इनका संबंध हैहयवंशी यादवों से था।
- कलचुरि वंश की हैहयवंशी शाखा ने रायपुर में अपना राज्य स्थापित किया था।
- कलचुरि हैहयवंशी नरेश रामचंद्र ने रायपुर नगर बसाकर अपनी राजधानी स्थापित की थी।
- हैहयवंशी राजा ब्रह्मदेव 'राय' के नाम से इस स्थान का नाम 'राय' से रायपुर पड़ा।
- राजा ब्रह्मदेव राय के पुरोहित महादेव के नाम पर महादेवघाट बनवाया गया, जहाँ हाटकेश्वर शिव मंदिर स्थापित था।
- सन् 1402 ई. में रायपुर के महादेवघाट में नायक हाजिराज ने हाटकेश्वर शिवमंदिर की स्थापना की थी।
- हैहयवंशी राजा रामचंद्र 18 गढ़ों को जीतने वाला राजा सिंधण का पुत्र था।
- सिंधण को रतनपुर एवं लक्ष्मीदेव को रायपुर का शासक बनाया गया, जो बाद में खल्लारी में स्थापित हुआ।
- रायपुर के हैहयवंशी कलचुरियों की वंशावली केशवदेव से प्रारंभ होती है। इस वंश का अंतिम राजा अमरसिंह देव था।
- खल्लारी में देवपाल मोची द्वारा 1415 ई. में नारायण मंदिर का निर्माण कराया गया था।
- हैहयवंशी राजा अमरसिंह देव की मृत्यु के समय उसका पुत्र शिवराजसिंह तीर्थ यात्रा पर जाने के कारण उसके लौटने के पूर्व ही भोंसले शासक बिम्बाजी भोंसले ने उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में राज्य पर कब्जा कर लिया था।
- इस प्रकार भोंसलों ने कलचुरियों से छत्तीसगढ़ की सत्ता छीनी थी।
- हैहयवंशी कलचुरि राजवंश के अंतिम चिराग शिवराजसिंह को महासमुंद तहसील के ग्राम बड़गाँव को माफी में दे दिया था।

- कलचुरि राजा वाहरेन्द्र (वाहर) के बाद उसका पुत्र कल्याण साय रतनपुर का शासक बन बैठा।
- कल्याणसाय ने कल्याणपुर नगर बसाया था।
- अकबर के दरबार दिल्ली में कल्याणसाय को बुलवाया गया था।
- कल्याणसाय के साथ गोपाल राय मल्ल नामक शूरवीर भी दिल्ली गया था जिसने मल्लयुद्ध में दिल्ली के सुल्तान को प्रसन्न किया था।
- गोपालराय बिझिया देवार जाति का था, देवार जाति के लोग इसे वीर पुरुष मानकर देवार गीत में उल्लेख करते हैं।
- कल्याणसाय के बाद उसका पुत्र तख्तसिंह बैठा जिसने तख्तपुर नगर बसाया था।
- रतनपुर राज्य में कलचुरियों का अंतिम शासक रघुनाथसिंह बना, जिसकी उम्र 60 साल थी।
- भोंसला शासक रघुजी प्रथम ने कलचुरि शासक की वृद्धा अवस्था के कारण कमजोर शासन को हथियाने के लिये नागपुर से सेनापति भास्कर पंत को सेना भेजकर रतनपुर में आक्रमण करवाया था।
- कलचुरि शासक रघुनाथसिंह निसंतान थे।
- वृद्ध राजा रघुनाथसिंह की रानियों ने किले के बुर्ज में चढ़कर संधि के झण्डे लहराकर भोंसले आक्रमणकारियों के लिये दरवाजे खोल दिये थे।
- रघुनाथसिंह ने मराठा प्रतिनिधि के रूप में 1745 ईस्वी तक राज्य किया।
- रघुनाथसिंह की मृत्यु पश्चात् रतनपुर का शासक मोहनसिंह को बनाया गया।
- मोहनसिंह रतनपुर की गद्दी में न बैठकर भोंसला दरबार नागपुर चला गया।
- बाद में भोंसला शासकों ने मोहनसिंह को पुनः रतनपुर का मराठा समर्पित शासक बनाया।
- बस्तर के नागवंशी नरेश छिन्दक कुल के थे और ये चक्रकोट के राजा कहलाते थे।
- बस्तर क्षेत्र का प्राचीन नाम चक्रकोट था जो बाद में चक्रकोट से चित्रकूट हो गया।
- छिन्दक राजवंश के प्रथम शासक नृपतिभूषण 1053 ई. में हुये थे।
- छिन्दक राजा चन्द्रादित्य ने बारसूर में चन्द्रादित्य समुद्र नामक एक बड़ा जलाशय एवं चन्द्रादितेश्वर नामक शिव मंदिर बनवाया था।
- छिन्दक नागवंशी राजा जगदेवभूषण माणिक्य देवी का भक्त था, इसने माणिक्य देवी का भव्य मंदिर दन्तेवाड़ा में बनवाया था।
- माणिक्य देवी दन्तेश्वरी देवी का ही नाम है।
- कवर्धा के फणि नागवंश का विवरण मड़वा महल नामक मंदिर के निकट स्थित शिलालेख में मिलता है। फणि नागवंश के राजा रामचंद्र ने शिवमंदिर का निर्माण करवाया था। रामचंद्र का विवाह हैहयवंशी राजकुमारी अंबिकादेवी से हुआ था।
- छत्तीसगढ़ के शासन करने वाले राजवंशों में काँकेर के सोमवंश का उल्लेख होता है।
- काँकेर के सोमवंश में पम्पराज के पिता सोमराज, सोमराज के पिता बोपदेव का उल्लेख मिलता है।

मराठों का शासन

- मराठा शासकों की सेना ने 1742 ई. में छत्तीसगढ़ में प्रवेश किया था।
- सन् 1742 ई. में मराठा सेनापति भास्कर पंत ने 30 हजार सेना लेकर रतनपुर राज्य में सर्वप्रथम आक्रमण किया था।
- रतनपुर में उन दिनों हैहयवंशी शासक रघुनाथसिंह का शासन था।
- रतनपुर नरेश वृद्ध होने के कारण कमजोर था। उसने आक्रमणकारी मराठों से संधि कर ली।
- मराठा शासन ने रतनपुर में कल्याणगिरी गुसाई को अपना प्रथम प्रतिनिधि नियुक्त किया।
- रघुनाथसिंह के बाद मोहनसिंह ने 1745 से 1785 ई. तक मराठा शासन के अधीन रहकर रतनपुर में राज किया।
- मराठा वीर छत्रपति शिवाजी भोंसले वंश में पैदा हुये थे।
- चित्तौड़गढ़ त्याग देने के बाद सिसौदिया शाखा ने 'भोसे' या भोसवत नामक ग्राम में अपनी बस्ती बसायी थी। अतएव ग्राम नाम भोसे से ये 'भोंसले' कहलाये।
- नागपुर के भोंसलों का इतिहास परसों जी भोंसला से आरंभ होता है।
- मराठों का एकछत्र राज्य स्थापित होने के कारण शिवाजी को 'छत्रपति' की उपाधि दी गयी थी।
- शिवाजी के शासनकाल में 'सेना साहब सूबा' सबसे बड़ा पद अथवा उपाधि मानी जाती थी।
- शिवाजी द्वारा साबाजी को 'सेना साहब सूबा' की उपाधि प्रदान की गयी थी।
- मुगलों एवं मराठों की वैमनस्यता साँप और नेवले के समान थी।
- औरंगजेब ने शिवाजी की मृत्यु के बाद उसके पुत्र संभाजी को मरवा डाला।
- मुगलों द्वारा संभाजी के पुत्र शाहू जी को कैद कर लिया गया। सन् 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद शाहू जी को स्वराज का अधिकार प्राप्त हुआ।
- सन् 1715 ई. में परसोंजी के निधन के बाद भोंसला परिवार तीन शाखाओं में बँट गया था।
- छत्रपति शाहू जी ने रघुजी प्रथम को 'सेना साहब सूबा' का पद प्रदान किया था।
- रघुजी प्रथम की इस नियुक्ति के समय नागपुर में गोड़ों का राज्य था।
- सन् 1741 में रघुजी प्रथम नागपुर राज्य का वैधानिक शासक बना।
- भोंसले शासक ने उड़ीसा और बंगाल में आक्रमण हेतू छत्तीसगढ़ से होकर प्रवेश किया था।
- रघुजी भोंसले मराठा शासन का बड़ा निपुण और अग्रसोची शासक था।
- मराठाकालीन समकालीन हैहयवंशी कलचुरि (लहुरी शाखा) रायपुर के वंशज अमरसिंह अंतिम शासक थे।
- कलचुरि शासक अमरसिंह की मृत्यु 1753 ई. में हुई थी, उस समय उसका पुत्र शिवराजसिंह तीर्थ यात्रा पर गया था।
- शिवराजसिंह की अनुपस्थिति एवं उत्तराधिकारी के अभाव में मराठा शासकों ने कलचुरियों की सत्ता हथिया ली।
- कलचुरियों का शासन छत्तीसगढ़ में लगभग 700 वर्षों तक रहा।
- मराठाकालीन शासक बिम्बाजी भोंसले ने छत्तीसगढ़ में 1757 से 1787 ई. तक 30 वर्षों तक शासन किया।

- बिम्बाजी ने छत्तीसगढ़ में उच्च पदों पर कुशल संचालन के लिये मराठों की नियुक्ति की थी।
- बिम्बाजी और भोंसले ने छत्तीसगढ़ के प्रशासन का मराठाकरण किया था।
- बिम्बाजी ने रतनपुर के पहाड़ी पर राममंदिर बनवाया था जिसे रामटेकड़ी भी कहा जाता है।
- बिम्बाजी ने कोरबा, छुरी जमींदारी को नियंत्रण करने के लिये अरपा नदी (बिलासपुर) के तट पर एक किला बनवाया था जो अधूरा रह गया।
- सिरपुर जमींदारी के विद्रोह करने पर तरेंगा के जमींदार अग्रवाल दाऊ को सिरपुर जमींदारी भेंटकर ताहुतदार का पद प्रदान किया था।
- बिम्बाजी की दो रानियाँ थीं आनंदीबाई और उमाबाई।
- बिम्बाजी की मृत्यु 1787 ई. में रतनपुर में हुई थी।
- बिम्बाजी निःसंतान थे, मृत्युपरान्त उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था।
- बिम्बाजी की चिता में उनकी छोटी रानी उमाबाई जलकर सती हो गयी थी।
- बड़ी रानी आनंदीबाई ने राज काज सम्भाला।
- आनंदीबाई ने अपने भतीजे चिमना बापू (खंडोजी) को गोद लेकर उसे 'सेना धुरंधर' के पद से अलंकृत किया।
- आनंदीबाई की सेना ने यशवंत कालू को रतनपुर पहुँचने के पहले ही रास्ते में परास्त कर दिया।
- मराठा शासन ने आनंदीबाई के विश्वासपात्र महीपत दिनकर को 'सूबा' बनाकर भेजा।
- आनंदीबाई ने अपने पति बिम्बाजी की मृत्यु के बाद रतनपुर में छोटा सा मंदिर बनवाकर काले पत्थर की प्रतिमा स्थापित की।
- आनंदीबाई ने खारुन नदी के तट पर खुँटाघाट के पास संगमेश्वर शिव मंदिर एवं रतनपुर में लक्ष्मीनारायण का मंदिर बनवाया था।
- सन् 1801 ई. में आनंदीबाई की मृत्यु हुई।
- रघुजी द्वितीय ने अपने पिता मुधोजी तथा चाचा बिम्बाजी की मृत्यु के बाद 'सेना साहब सूबा' का पद ग्रहण कर सत्ता सम्भाली थी।
- रतनपुर में सूबा के अधीन कमाविशदार रहा करते थे।
- मराठा काल में सन् 1766 ई. को याटू नामक एक विदेशी हीरे की खान की खोज में सम्बलपुर पहुँचा था।
- मराठा शासकों ने अकेले रायपुर जिले के धमतरी तहसील में 200 से ऊपर पुराने गौटियों को बेदखल कर ये पद मराठों को दिये थे।
- बिम्बाजी ने अपने साले हनुमंतराव को 84 गाँवों की जमींदारी बिलासपुर जिले में दी थी।
- राजिम के राजीवलोचन मंदिर के खर्च के लिये एक गाँव भेंट में दिया था।
- रायपुर के दुधाधारी मठ को 1799 ई. में कुछ गाँवों को दान दिया गया था, इस दानपत्र पर कामदार नारायण राव विट्ठल के हस्ताक्षर हैं।
- मराठा शासकों ने रत्नपुर को छत्तीसगढ़ की राजधानी बनाया था।
- पुराने गढ़ों अर्थात् 36 गढ़ों को परगनों में बदल दिया गया।

- प्रत्येक परगनो का प्रभारी कमाविशदार था।
- कमाविशदार का कार्य लगान वसूल करना था।
- 12 गाँवों के समूह को 'बरहों' कहा जाता था।
- मराठाकाल में पूर्व में प्रचलित बरहों के नाम को बदलकर 'तालुका' कर दिया गया।
- तालुका का प्रभारी तालुकादार कहलाता था।
- गाँव के अधिकारी 'गौटिया' कहलाते थे।
- गाँव के प्रभारी को मालगुजार भी कहा जाता था।
- मराठाकाल में पूर्व में प्रचलित कमाविशदार प्रथा समाप्त कर 'ताहुतदारी' प्रथा कायम की गयी।
- छत्तीसगढ़ में कमाविशदार के पद को ताहुतदारी नाम दिया गया।
- छत्तीसगढ़ में ऐसे ताहुतदार तरेंगा, लवन, सिरपुर, खल्लारी, सिहावा, लोरमी आदि स्थानों में थे।
- अंग्रेजों के तालुका जिन क्षेत्रों में स्थित थे यदि वे मराठा राज्य के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आते थे वे खालसा कहलाते थे। जो अमीनदारी के नाम से उल्लेखित होते थे।

छत्तीसगढ़ की रियासतें एवं जमींदारियाँ

- 18वीं शती ईस्वी के उत्तरार्ध में मराठों से अंग्रेजी शासन ने बागडोर सम्भाली थी, तब उस समय 19 प्रमुख रियासत छत्तीसगढ़ में थीं।
- छत्तीसगढ़ में ये रियासतें बढ़कर 27 हो गयी थीं।
- छत्तीसगढ़ में बस्तर रियासत सबसे बड़ी रियासत थी जिसका कुल क्षेत्रफल 39 हजार वर्ग कि.मी. था।
- बस्तर राज्य में नींव डालने वालों को प्रायः बाँस के तले निवास करना पड़ता था उसे बाँसतर अर्थात् बाँस के नीचे कहने के कारण 'बास्तर' का अपभ्रंश 'बस्तर' हो गया।
- बस्तर के वासियों को आदिम युग प्रतिनिधित्व करने के कारण आदिवासी कहा जाता है।
- प्राचीनकाल में बस्तर को चक्रकोट (चित्रकूट), भ्रमरकोट, भ्रमरभद्र के नाम से संबोधित किया जाता था।
- बस्तर में नलवंश, छिन्दक, नागवंश, तथा काकतीय वंशी राजाओं का राज्य था।
- काकतीय और दुर्गा पर्यायवाची नाम हैं। काकतीय वंश के शासक बस्तर में शासन करते थे।
- आंध्रप्रदेश में काकतीय देवी का प्रसिद्ध मंदिर है।
- काकतीय वंश में अन्नमदेव महाप्रतापी शासक हुआ था। सन् 1313 ई. में बस्तर में काकतीय वंश की नींव डाली थी।
- काकतीय वंश के अंतिम शासक के रूप में प्रवीरचन्द्र भंजदेव का नाम उल्लेखनीय है।
- भोपालदेव ने भोपालपटनम नामक बस्ती बसायी थी।
- काकतीय वंश ने आंध्रप्रदेश से बस्तर में प्रवेश किया था। इस वंश का आदि पुरुष प्रतापरुद्र था।
- वारंगल के आक्रमणकारियों से बचने के लिये 1323 में प्रतापरुद्र बस्तर भाग कर आये थे।
- अंग्रेजी शासन ने बस्तर स्टेट में पैर जमाया और बस्तर रियासत के दीवान पद पर परम्परा से हटकर गोपीनाथ कापड़दार को दीवान नियुक्त किया जो यादव जाति का था।

- बस्तर स्थित दन्तेवाड़ा में प्रसिद्ध आदिवासियों की कुल देवी दन्तेश्वरी माता का प्रसिद्ध मंदिर है।
- बस्तर का दशहरा पर्व पूरे देश में विख्यात है।
- काँकेर का राजवंश सोमवंशी क्षत्रिय था।
- प्राचीनकाल में काँकेर कंकण कहलाता था।
- रुद्रप्रताप नामक राजा ने धमतरी में महानदी के किनारे रुद्रेश्वर शिवमंदिर की स्थापना की थी।
- हरपालदेव नामक राजा ने अपनी कन्या का विवाह बस्तर नरेश से किया था और सिहावा क्षेत्र दहेज में दे दिया।
- पाण्डादह के बैरागी महन्त अपनी गद्‌दी उठाकर नाँदगाँव ले आये, नाँदगाँव राजमार्ग से जुड़ने के कारण राजनाँदगाँव कहलाया।
- राजनाँदगाँव की रियासत के राजाओं में महन्त घासीदास, महन्त सर्वेश्वरदास एवं बलरामदास, महन्त दानी राजा हुये थे। महन्त घासीदास ने रायपुर में महन्त घासीदास संग्रहालय के लिये, महन्त सर्वेश्वर दास ने सर्वेश्वर दास ग्रन्थालय के लिये, तथा बलरामदास ने रायपुर में जलप्रदाय योजना के लिये दान राशि देकर स्थापना की थी।
- इस राजवंश का अंतिम शासक दिग्विजय सिंह हुआ जिसके नाम पर राजनाँदगाँव में एक स्टेडियम एवं एक महाविद्यालय है।
- खैरागढ़ के राजवंश छोटा नागपुर के राजवंशी राजपूत राजा संभासिंह के वंशज थे।
- खैरागढ़ के राजा महिपालसिंह की आकस्मिक मृत्यु के बाद उसके पुत्र लाल फतहसिंह को गद्‌दी मिली। तब से खैरागढ़ का राजपरिवार अपने नाम के आगे 'लाल' जोड़ता है।
- कवर्धा का प्राचीन नाम कबीरधाम था जो बोलचाल में कवर्धा हो गया।
- कवर्धा के नागवंशी शासकों ने छपरी गाँव में मंडवा महल एवं भोरमदेव मंदिर का निर्माण करवाया था।
- सक्ती रियायत हरि एवं गुजर नामक दो भाइयों के शक्ति एवं पराक्रम के कारण नाम पड़ा।
- ये दोनों भाई इतने वीर थे कि इन्होंने काठ की तलवार से दशहरा पर्व के समय देवी माँ के सामने भैंसा का सिर काटकर बलि दी थी। ऐसी जनश्रुति है।
- सक्ती में दशहरा पर्व में तब से काठ की तलवार की पूजा किए जाने का प्रचलन है।
- रायगढ़ में गोड़ राजवंशों का शासन था।
- 1854 में रायगढ़ रियासत अंग्रेजी राज्य के अंतर्गत आ गयी थी।
- रायगढ़ राजवंश चाँदा राजवंश के प्राचीन गोड़ वंश से संबंध रखते थे।
- सारंगढ़ राजवंश के पूर्व पुरुष भण्डारा जिले के लाँजी नामक स्थान से आये थे।
- सन् 1778 ई. में बंगाल के गर्वनर जनरल एलेक्जेन्डर इलियट नागपुर जा रहे थे। रास्ते में (छत्तीसगढ़) उनकी मृत्यु हो गयी थी।
- इस अंग्रेज के शव को गाड़ने के लिये कोई भी जमींदार भूमि देने के लिये तैयार नहीं हुआ तब सारंगढ़ के जमींदार विश्वनाथ साय ने ग्राम सेमरा में भूमि दी। जहाँ इलियट की समाधि बनी है।
- सरगुजा का शाब्दिक अर्थ है स्वर्ग–जा अर्थात् स्वर्ग की तनुजा याने स्वर्ग की पुत्री।
- सरगुजा का रामायणकालीन नाम डाडौर क्षेत्र मिलता है।

- सरगुजा रियासत सबसे प्राचीन रियासत मानी जाती है। 194 ईस्वी में इस रियासत की उत्पत्ति के ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं।
- 194 ईस्वी में सीमावर्ती पलामु में कुंडरी ग्राम के एक रक्सेल राजपूत ने आक्रमण कर इस रियासत को हथिया लिया था।
- रक्सेल वंश के राजा विष्णु प्रतापसिंह हुये। विष्णुप्रतापसिंह से लेकर महाराजा रामानुजशरण सिंह देव तक का 114 पीढ़ियों तक के इस वंश के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं।
- सरगुजा 1751 ई. वर्ष तक एक ही राजवंश के अधीन था।
- चाँगभखार रियासत कोरिया रियासत का एक हिस्सा है।
- उदयपुर रियासत को 194 ईस्वी में आक्रमण कर अपने अधीन कर लिया था।
- 1818 ई. में सरगुजा रियासत नागपुर के भोंसले राजा मुधोजी से संधि कर अंग्रेजी सरकार के अधीन हो गयी थी।
- कोरिया रियासत की राजधानी कोरियागढ़ में स्थित थी जो चिरमिरी से 9 कि.मी. दूरी पर स्थित है।
  जशपुर रियासत 1905 ई. तक बंगाल प्रान्त के अंतर्गत छोटा नागपुर की रियासत में शामिल थी।
- छत्तीसगढ़ में बिलासपुर जिले में सबसे बड़ी जमींदारी कोरबा जमींदारी थी।
- छुरी से 7 किलोमीटर दूर कोसगई नामक पहाड़ी है जहाँ पर एक किला है। जिसे 16वीं शती ईस्वी में राजा बाहरसाय ने बनवाया था।
- लाफा जमींदारी एक प्राचीन जमींदारी है। यहाँ पहाड़ी पर बहुत ऊँचाई में चितुरगढ़ का अभेद्य किला है।
- पंडरिया जमींदारी के अंतर्गत कामठी अति प्राचीन ग्राम है जहाँ अवशेष बिखरे हुये हैं।
- स्वेत गंगा ग्राम में स्वेत गंगा नामक प्राचीन मंदिर है।
- बिलईगढ़ जमींदारी का संबंध धमतरी की बिलईमाता से है ये उनकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है।
- कौड़िया जमींदार के निःसंतान होने के कारण उसकी मृत्यु के बाद रानी विष्णुप्रिया देवी ने इस जमींदारी को सम्भाला था।
- सुअरमाल जमींदार का नाम सुअरमार इसलिये पड़ा कि इसके प्रथम जमींदार पुरनराम ने एक उपद्रवी सुअर को एक ही वार से मार गिराया था।
- खुज्जी जमींदारी रघुजी भोंसले द्वारा भोंसला राज्य को सहायता पहुँचाने के कारण मुसलमान सैनिक को भेंट में दी गयी थी।
- बस्तर राजा द्वारा किये गये आक्रमण के विरुद्ध रतनपुर को सहायता पहुँचाने के कारण इस जमींदारी को भेंट में दिया गया।
- सहसपुर लोहारा की जमींदारी के संबंध में जनश्रुति है कि इसे हैहयवंशी राजाओं के आदिपुरुष सहस्रार्जुन के नाम पर बसाया गया।
- सहसपुर लोहारा में एक पाषाण प्रतिमा मिली है जिसमें रानी लक्ष्मीदेवी एवं कुमारी जसल्लादेवी के नाम उत्कीर्ण हैं।

- 16वीं शती ईस्वी में रतनपुर के हैहयवंशी राजाओं की सूची में इस गोड़ जमींदारी फिंगेश्वर का नाम मिलता है।
- देवरी जमींदारी बिंझवार जाति के हाथों में थी जो सोनाखान के जमींदार के संबंधी थे।
- बिन्द्रानवागढ़ का पूर्व नाम नवागढ़ था। किन्तु एक और गढ़ इसी नाम से होने के कारण एवं इस गढ़ में बेंदरा (बंदरों) की बहुतायत होने के कारण इस गढ़ के आगे बेन्दरा शब्द जोड़कर इसे बेन्द्रानवागढ़ कहा गया जो बोलचाल में बिन्द्रानवागढ़ हो गया।
- कटंगी जमींदारी रतनपुर के हैहयवंशी राजा द्वारा माँझी भैरवार को इस शर्त पर दी गयी थी कि इस जमींदारी से होकर जाने वाले जगन्नाथपुरी के तीर्थयात्रियों की जानमाल की रक्षा करें।
- नर्रा जमींदारी को खरियार जमींदार ने अपनी पुत्री को दहेज में दिया था।

ब्रिटिश काल

- छत्तीसगढ़ क्षेत्र मराठाकाल में ही ब्रिटिश शासन के नियंत्रण में सन् 1818 ई. में आ गया था।
- मराठाकाल के अंतिम शासक अप्पाराव 1818 ई. में सीताबर्डी (नागपुर) युद्ध में अंग्रेजों से परास्त हुये थे।
- अप्पाराव को हराकर पुरुषा जी की विधवा दुर्गाबाई ने रघुजी द्वितीय की पुत्री भानुबाई के 10 वर्षीय पुत्र बाजीवा को गोद लिया था।
- इस उत्तराधिकारी का नाम रघुजी बापू साहब रखा गया जो बाद में रघुजी तृतीय कहलाया।
- अंग्रेजी शासन ने रेजीडेन्स जेनकिंग को रघुजी तृतीय का संरक्षक (नागपुर राज्य का संरक्षक) नियुक्त किया गया।
- छत्तीसगढ़ में ब्रिटिश प्रशासन हेतु अलग से अधीक्षक नियुक्त किया गया।
- ब्रिटिश शासन ने छत्तीसगढ़ में विभिन्न अवधि में 6 ब्रिटिश सुप्रिन्टेन्डेन्ट नियुक्त किये।
- छत्तीसगढ़ में 1818 ईस्वी में प्रथम ब्रिटिश सुप्रिन्टेन्डेन्ट एडमण्ड नियुक्त हुये थे।
- एडमण्ड का कार्यकाल अल्पकाल का था। इन्होंने डोंगरगढ़ के जमींदार के विद्रोह का दमन किया था।
- कर्नल एगन्यू का कार्यकाल छत्तीसगढ़ में 1818 ई. से 1825 ई. के मध्य रहा।
- कर्नल एगन्यू कुशल प्रशासक थे जिनकी प्रशासनिक क्षमता से गर्वनर जनरल हेस्टिंग बहुत प्रभावित थे।
- कर्नल एगन्यू ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये। छत्तीसगढ़ की राजधानी सुविधा की दृष्टि से रायपुर को बनाया।
- 1818 ई. में ब्रिटिश अधीक्षक का मुख्यालय रायपुर को घोषित किया गया।
- रायपुर के कलेक्टर बंगला को ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट अर्थात् अधीक्षक का बंगला बनाया गया था।
- छत्तीसगढ़ के परगनों का पुनर्गठन कराया। 27 परगनों को 8 परगनों में पुनर्गठित किया था।
- प्रत्येक परगने में नियुक्ति परगना अधिकारी को कमाविशदार कहा जाता था।
- जल प्रबंध की पूर्ण व्यवस्था की। जलशोधन केन्द्र रायपुर के भाटागाँव में स्थापित कर नलघर छोटपारा में बनवाया था।
- कर्नल एगन्यू ने सिंचाई की उत्तम व्यवस्था कर भू-राजस्व में सुधार कर राजस्व आय में वृद्धि की।
- छत्तीसगढ़ में भू-राजस्व का निर्धारण भूमि की स्थिति के अनुसार आंकलन कर किया गया।

- परगनों में अमीन तथा 25–30 गाँवों के लिये पण्डया नामक राजस्व अधिकारी की नियुक्ति की गयी।
- राजस्व भुगतान का सरलीकरण कर तीन किस्तों में अदा करने की छूट दी गयी।
- कर्नल एगन्यू ने मराठाकाल में प्रचलित 'पटेल' के पद को समाप्त कर गाँव में गौटिया पद कायम किया।
- भू–राजस्व (लगान) गाँव के गौटिया को वसूल करने का अधिकार दिया गया।
- कर्नल एगन्यू ने आर्थिक क्षेत्र में किसान एवं प्रशासन के मध्य तालमेल रखने के लिये विभिन्न सुधार कार्य किये।
- इनके कार्यकाल में सोनाखान के जमींदार का विद्रोह एवं परलकोट जमींदारी का विद्रोह का दमन किया था।
- परलकोट जमींदार गेंदसिंह को विद्रोह करने के आरोप में 20 जनवरी, 1825 को फाँसी दी गयी थी।
- कर्नल एगन्यू ने इस घटना से द्रवित होकर अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।
- कैप्टन हंटर का कार्यकाल अल्पकाल का था।
- कैप्टन सैंडिस छत्तीसगढ़ में अधीक्षक के पद पर 1825 से 1828 ई. तक पदस्थ रहे।
- कैप्टन सैंडिस ने सर्वप्रथम 'अंग्रेजी भाषा' को 1826 ईस्वी में सरकारी कामकाज का माध्यम बनाया।
- इसके पूर्व छत्तीसगढ़ में सरकारी कामकाज स्थानीय भाषा में होता था।
- कैप्टन सैंडिस ने छत्तीसगढ़ के भू–भाग पर 1826 ई. में सर्वप्रथम अंग्रेजी वर्ष की मान्यता दी।
- कैप्टन बिलकिंसन को 1828 ई. को छत्तीसगढ़ का अधीक्षक नियुक्त किया गया।
- कैप्टन क्राफर्ड 1828–1829 ई. तक छत्तीसगढ़ में अधीक्षक नियुक्त हुये।
- अंग्रेजी शासन एवं भोंसले शासन के मध्य 27 दिसम्बर, 1829 को रघुजी तृतीय के नेतृत्व में समझौता हुआ।
- इस समझौते के अनुसार नागपुर व उसके अधीनस्थ भू–भागों का प्रशासन रघुजी को सौंप दिया गया।
- 11 दिसम्बर, 1853 को रघुजी तृतीय की आकस्मिक मृत्यु हो गयी।
- रघुजी तृतीय निसंतान थे। रघुजी द्वारा बार–बार गोद लेने की अनुमति को अंग्रेज कुटनीति से टालते रहे। मृत्यु के पूर्व तक इन्हें अनुमति नहीं दी गयी।
- 11 दिसम्बर, 1853 को रघुजी तृतीय की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के अभाव में हड़प–नीति के पोषक गर्वनर जनरल लार्ड डलहौजी ने 28 जनवरी, 1854 को घोषणा की कि नागपुर का तख्त उनके अधिकार में आ गया है।
- 28 जनवरी, 1854 की घोषणा के बाद नागपुर राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया।
- 13 मार्च, 1854 के दिन से नागपुर के साथ–साथ छत्तीसगढ़ भी ब्रिटिश शासन में शामिल हो गया।
- एक फरवरी, 1855 को अंतिम जिलेदार गोपालराव ने अंग्रेजी शासन के प्रतिनिधि को छत्तीसगढ़ का शासन सौंप दिया।
- छत्तीसगढ़ का प्रथम डिप्टी कमिश्नर कैप्टन चार्ल्स इलियट को नियुक्त किया गया।
- 1854 ई. में नागपुर एवं उसके अधीनस्थ क्षेत्र छत्तीसगढ़ को अंग्रेजी साम्राज्य में पूर्णतः मिला दिया गया।
- छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी शासन की स्थापना हुई और स्वतंत्रता के पूर्व तक, 14 अगस्त, 1947 तक छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी शासन कायम रहा।

ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था

- 13 मार्च, 1854 को छत्तीसगढ़ में अँग्रेजी शासन की विधिवत् घोषणा की गयी।
- एक फरवरी, 1855 को मराठा शासक गोपालराव ने अंग्रेजी शासन के प्रतिनिधि को छत्तीसगढ़ का प्रशासन सौंपा– छत्तीसगढ़ के प्रथम डिप्टी कमिश्नर चार्ल्स इलियट ने प्रशासनिक सुधार किये।
- डिप्टी कमिश्नर का मुख्यालय रायपुर में रखा गया।
- अतिरिक्त कमिश्नर के पद बिलासपुर और रायपुर के लिये निर्मित किये गये।
- मराठाकालीन अंतिम जिलेदार गोपालराव को बिलासपुर का अतिरिक्त कमिश्नर एवं मोहिबुल हसन को रायपुर का अतिरिक्त कमिश्नर नियुक्ति किया गया।
- रायपुर, धमतरी, रतनपुर, नवागढ़ एवं धमधा को तहसील घोषित किया गया।
- जुलाई 1857 को धमधा के स्थान पर दुर्ग को तहसील घोषित किया गया।
- परगनों के कमाविशदार के उपर नायब तहसीलदार की नियुक्ति की गयी।
- 2 नवम्बर, 1861 को ईस्ट इंडिया कंपनी शासन ने मध्य प्रान्त (सेन्ट्रल प्रोविन्स) राज्य गठन करने की घोषणा की।
- नागपुर में चीफ कमिश्नर का पद बनाया गया।
- 2 नवम्बर, 1861 से डिप्टी कमिश्नर चार्ल्स इलियट नागपुर के चीफ कमिश्नर के अधीनस्थ हो गये।
- सन् 1862 ई. से छत्तीसगढ़ को एक संभाग बनाकर, संभाग का मुख्यालय रायपुर में रखा गया।
- 1862 से 1905 तक प्रशासन की दिशा में छत्तीसगढ़ में कोई परिवर्तन नहीं किया।
- मध्यप्रान्त के गठन के बाद छत्तीसगढ़ को दो जिलों में विभक्त किया गया–रायपुर और बिलासपुर।
- दोनों जिले छत्तीसगढ़ संभाग कमिश्नर के अंतर्गत थे।
- रायपुर और बिलासपुर में एक–एक डिप्टी कमिश्नर नियुक्त किया गया।
- सन 1905 ई. सम्बलपुर जिला और उड़ीसा की 5 रियासतें–कालाहण्डी, पटना, रेडाखोल, बामड़ा और सोनपुर को बंगाल प्रान्त में शामिल किया गया।
- छोटा नागपुर, झारखंड की पाँच रियासतें सरगुजा, उदयपुर, कोरिया, जशपुर और चाँगभखार को बंगाल से अलग कर मध्य प्रान्त में मिला दिया गया।
- दुर्ग को 1905 से 1906 ई. के मध्य जिले का दर्जा दिया गया।
- 1854 ई. में भू–राजस्व संहिता तैयार कर तीन साला बन्दोबस्त आरंभ किया गया।
- इस बन्दोबस्त के अनुसार भू–राजस्व पटाने वाले को भू–स्वामित्वाधिकार प्रदान किये गये।
- गाँव के गौटिया एवं मालगुजार को भू–स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हुआ।
- बिलासपुर जिले का पहला बन्दोबस्त 1868 ई. में चीजम साहब ने किया।
- रायपुर जिले में 1861–62 ई. में बन्दोबस्त प्रारंभ हुआ।
- 1889 ई. में रायपुर जिले में दूसरा बन्दोबस्त मिस्टर फूलर ने किया।

- सन 1880 ई. में आई. एस. बेरी ने तीस वर्षों के लिये बिलासपुर में दूसरा बन्दोबस्त किया।
- सन 1856 ई. में राजस्व विभाग में नौ नये पद सृजित किये।
- मराठाकालीन मुद्राओं को तत्कालीन रूप से 31 दिसम्बर, 1854 से बन्द कर दिया गया।
- एक मई, 1855 को ईस्ट इंडिया कंपनी का नया सिक्का जारी किया गया।
- एक मई, 1855 को रुपये को कानूनी तौर पर मान्यता दी गयी।
- 1855 ई. में छत्तीसगढ़ भू–भाग में पुलिस विभाग में मात्र 149 कर्मचारी थे।
- एक सितम्बर, 1856 को सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ को चार भागों में बाँटा गया–रायपुर सदर, रायपुर तहसील, धमतरी तहसील और रतनपुर।
- प्रत्येक भाग में 15–15 पुलिस थाने बनाये गये।
- 1857 ई. में धमधा और नवागढ़ को तहसील का दर्ज दिया गया।
- सन 1858 ई. में पंजाब पुलिस मैन्युअल को छत्तीसगढ़ पुलिस में लागू किया गया।
- पंजाब पुलिस मैनुअल के अनुसार छत्तीसगढ़ में पोषाक, हथियार, ड्रील और अनुशासन संबंधी नियम बनाये गये।
- 1862 ई. में पुलिस विभाग में जिलों में पुलिस अधीक्षक, सहायक अधीक्षक, प्रत्येक थानों में निरीक्षक, उपनिरीक्षक, मुख्य आरक्षक, एवं आरक्षक के पद निर्माण किये गये।
- ब्रिटिश शासन ने कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर को प्रशासन के साथ न्यायिक अधिकारी भी दिये।
- दीवानी मामलों की सुनवाई तहसीलदार किया करते थे।
- दीवानी मामलों की अपील सुनने का अधिकार कमिश्नर को दिया गया।
- फौजदारी प्रकरणों में डिप्टी कमिश्नर एवं तहसीलदार के फैसले देने का अधिकार दिया।
- कमिश्नर को आजीवन कारावास देने का अधिकार प्राप्त था किन्तु मुत्युदण्ड देने के लिये गर्वनर जनरल की अनुमति लेनी आवश्यक थी।
- 1854 ई. के पूर्व छत्तीसगढ़ में कैदियों को जेल में रखने की कोई व्यवस्था नहीं थी।
- रायपुर में छोटा कारागार 1854 में बनाया गया जिसमें 200 कैदियों को रखा गया।
- डिप्टी कमिश्नर इलियट ने जेल में राशन देने के स्थान पर मैस प्रारंभ किया।
- 1885–86 ई. में बिलासपुर में जेल की स्थापना की थी।
- 1861 ई. में रायपुर में केन्द्रीय जेल बनवायी गयी, जो 700 कैदियों के लिये थी।
- कैदियों के स्वास्थ्य परीक्षण के लिये सिविल सर्जन की नियुक्ति की गयी।
- अंग्रेजी शासन ने पैदल, डाकिया, हरकारे के लिये घोड़ी पर डाक बाँटने की व्यवस्था की।
- रायपुर में डाकघर की स्थापना की गयी।
- 1857 ई. में लेफ्टिनेन्ट स्मिथ को रायपुर डाकघर का प्रथम पोस्टमास्टर नियुक्त किया गया।
- डाक मुहरों में ब्रिटिश शासिका महारानी विक्टोरिया की चित्रयुक्त मुहर 1857 में लगाना प्रारंभ हुआ।

- सन 1818 ई. से 1830 ई. में ब्रिटिश संरक्षण काल में नागपुर से कलकत्ता को जोड़ने वाले राजमार्ग जी.ई. रोड (ग्रेट इस्टर्न रोड) को बनवाया गया।
- ग्रेट इस्टर्न रोड का कार्य कर्नल एगन्यू के कार्यकाल में प्रारंभ हुआ था।
- छत्तीसगढ़ में 1825 ई. को लोक निर्माण विभाग की स्थापना की गयी।
- 1905 ई. रायपुर से जगदलपुर रोड अर्थात् बस्तर से भद्राचलम राजमार्ग तैयार किया गया।
- 1905 ई. को रायपुर से रतनपुर (बिलासपुर) को सड़क मार्ग से जोड़ा गया।
- 1896 ई. में धर्मजयगढ़ – खरसिया एवं जशपुर, रांची मार्ग को जोड़ा गया।
- 19वीं शती ईस्वी के प्रारंभ में छत्तीसगढ़ में रेल यातायात प्रारंभ किया गया।
- सन 1882 ई. में नागपुर से राजनाँदगाँव तक रेलवे गेजलाईन यात्रियों के लिये प्रारंभ की गयी।
- बाद में नागपुर से बंगाल बड़ी लाईन में परिवर्तित की गयी।
- इस क्षेत्र की रेलवे को दक्षिण–पूर्वी रेलवे का नाम दिया गया।
- रेलवे का मुख्यालय कलकत्ता को रखा गया।
- 9 मई, 1857 को बंगाल नागपुर रेलवे लाईन बनायी गयी। 1906 ई. को इस लाईन को कलकत्ता से जोड़ा गया।
- 1890 ई. को बिलासपुर में रेलवे स्टेशन का निर्माण किया गया।

कुछ नवीनतम बिन्दु

- महेशपुर (जिला अंबिकापुर) में आदिनाथ प्राचीन जैन मंदिर के अवशेष मिले।
- बुढ़ीखार (मल्हार के पास) स्थित ग्राम में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की 8 प्रतिमायें एक ही स्थान में मिली।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ एवं अनुवाद

अग्नि पुराण	:	आनंद आश्रम सीरिज, पूना, 1960, कलकत्ता, 1901.
ऋग्वेद	:	वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, 1935, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1962.
बृहत्संहिता	:	सम्पादन अवध बिहारी, वैंक्टेश्वर प्रेस, बम्बई, 1973.
मत्स्यपुराण	:	सम्पादक जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता, 1876.
रघुवंश	:	कालिदास ग्रन्थावली, सम्पादक सीताराम चतुर्वेदी, बनारस, 1950.
मेघदूत	:	कालिदास ग्रन्थावली, सम्पादक सीताराम चतुर्वेदी, बनारस, 1950.
रामायण	:	गीताप्रेस गोरखपुर : दो भाग में : तृतीय संस्करण एन. एन. दत्ता द्वारा सम्पादित कलकत्ता 1892–94.
महाभारत	:	चित्रशाला प्रेस, पूना, 1942, भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टी. पूना, 1947.
ब्रह्मपुराण	:	आनंद आश्रम प्रेस, पूना, 1895, खेमराज कृष्णदास बम्बई।
वायुपुराण	:	आनंद आश्रम प्रेस, पूना, 1905, सम्पादक श्रीराम शर्मा आचार्य, बरेली।
शिवपुराण	:	सम्पादक जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता, 1876.
मार्कण्डेय पुराण	:	अनुवादक – इ. एफ. पार्जिटर, वाराणसी, पुनर्मुद्रित 1961.
ऐतरेय ब्राह्मण	:	अनुवादक गंगाप्रसाद उपाध्याय।

सहायक आधुनिक ग्रन्थ

प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख	:	परमेश्वरीलाल गुप्त, वाराणसी, 1988.
प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल	:	बी. सी. लाहा : अनुवादक–रामकृष्ण द्विवेदी, लखनऊ, 1972.
प्राचीन छत्तीसगढ़	:	प्यारे लाल गुप्त, रायपुर, 1973.
प्राचीन भारतीय सिक्के और मुहरों पर ब्राह्मण देवी–देवता और उनका प्रतीक	:	माधुरी अग्रवाल, दिल्ली, 1977.
भारतीय प्राचीन लिपिमाला	:	गौरीशंकर हीरानंद ओझा, तृतीय संस्करण, दिल्ली, 1977.
भारतीय अभिलेख संग्रह	:	फ्लीट जे. एफ. : हिन्दी अनुवाद : विदुला।
भारतीय इतिहास का मध्य–प्रस्तर युग	:	जायसवाल।
कलचुरि नरेश और इनका काल	:	व्ही. व्ही. मिराशी, वाराणसी, 1964
वाकाटक राजवंश का इतिहास तथा उनके अभिलेख	:	
उत्कीर्ण लेख	:	बालचंद जैन रायपुर, 1961.
त्रिपुरा	:	अजय मिश्र शास्त्री, भोपाल, 1971.
दक्षिण कोसल की कला	:	डॉ. हेमू यदु, नई दिल्ली, 1990.
दक्षिण कोसल का इतिहास	:	डॉ. दिनेश नंदिनी परिहार, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.
छत्तीसगढ़ का पुरातात्विक वैभव	:	डॉ. हेमू यदु, नई दिल्ली, 2002.
छत्तीसगढ़ का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास	:	डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र, रायपुर, 1998.
मराठाकालीन छत्तीसगढ़	:	डॉ. प्रभुलाल मिश्र, रायपुर।
राजिम	:	विष्णुसिंह ठाकुर, भोपाल, 1971.
म. प्र. के पुरातत्व की रूपरेखा	:	एम. जी. दीक्षित, सागर, 1954.

गजेटियर

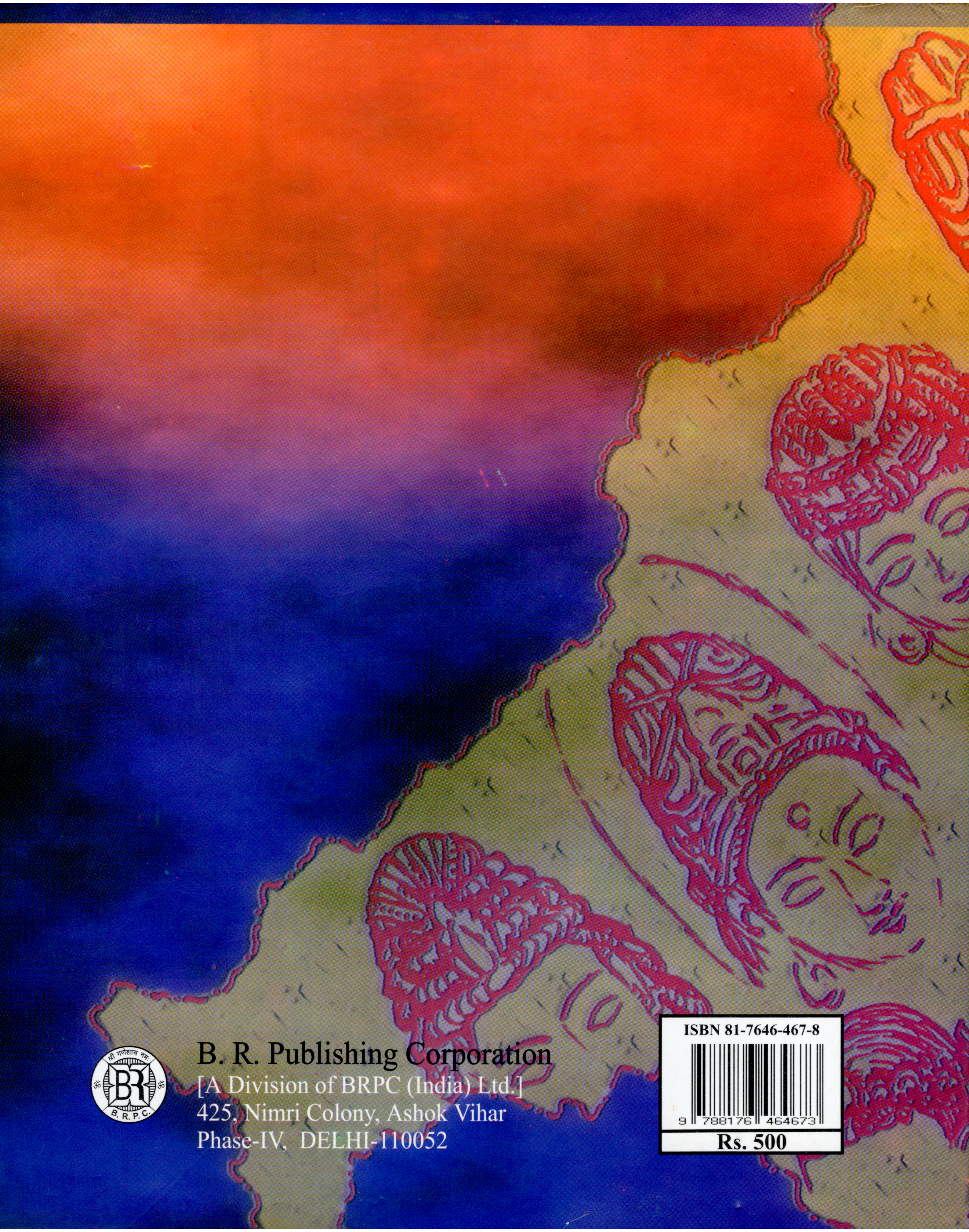
रायपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर	:	नेल्सन द्वारा संपादित, 1909.
बिलासपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर	:	नेल्सन द्वारा संपादित, 1909.
दुर्ग डिस्ट्रिक्ट गजेटियर	:	नेल्सन द्वारा संपादित, 1910.
भण्डारकर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर	:	आर. बी. रसेल द्वारा सम्पादित, 1908.
दी सेन्ट्रल प्रॉविंसेस गजेटियर		
दी छत्तीसगढ़ फ्युडेटरी स्टेट्स बंगाल गजेटियर्स	:	ई. एडी. क्रेट द्वारा सम्पादित, 1909.
फ्युडेटरी स्टेट ऑफ उडीसा	:	एल. ई. बी. वेगवडेन रामसे द्वारा संपादित।

बीता हुआ हर क्षण इतिहास है। अतीत कितना ही कष्टमय क्यों न हो उसकी स्मृति बड़ी मधुर होती है। अतीत का वह हर क्षण जो स्मृति पटल को प्रतिम्बित करता है, वही इतिहास हैं युग-युगान्तर तक छत्तीसगढ़ की पावन शस्य-श्यामला भूमि में अनेक संस्कृतियों का उद्भव विकास, संघर्ष एवं पतन की आर्य-अनार्य के संघर्ष की गौरवमय गाथा मिलती है। इन संस्कृतियों के प्राचीन धरोहर, अभिलेख, सिक्के एवं जनश्रुतियाँ इनका गौरवमय ऐतिहासिक दस्तावेज है।

छत्तीसगढ़ धर्म क्षेत्र, पुण्य क्षेत्र, धन्य-धान्य शान्त क्षेत्र, एवं धर्म सहिष्णु क्षेत्र के रूप में विख्यात है। यहाँ शैव-वैष्णव, शाक्य, एवं जैन एवं बौद्ध की देव प्रतिमायें, देवालय एवं उनकी प्राचीन कलाकृतियाँ तथा सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रवृतियों की उपादेयता गौरवमय इतिहास का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। इस अंचल की पावन धारा में प्रागैतिहासिक काल, वैदिक काल, रामायणकाल, महाभारत काल, मौर्यकाल, सातवाहनकाल, गुप्त वंश, राजर्षितुल्य वंश, नलवंश, शरभयपुरीय, पाण्डुवंशीय, सोमवंश, नागवंशी, माण्डलिक, कलचुरि राजवंश, हैहयवंश, मराठा कालीन, भोसलेवंश से लेकर ब्रिटीशकाल तक का क्रमबद्ध गौरवमय इतिहास, इस कृति की उपादेयता है।

छत्तीसगढ़ प्राचीनकाल से ब्रिटीशकाल का क्रमबद्ध इतिहास प्रथम बार लेखन कर सतत प्रयास अंचल के प्रबुद्धजन, इतिहासकार, विद्वान एवं अध्येताओं तथा प्रतियोगी परीक्षा में भाग लेने वाले छात्र-छात्राओं के लिये बहुपयोगी सिद्ध होगा।

2006; x+114; 29cm.
ISBN 81-7646-467-8 Rs. 500



B. R. Publishing Corporation
[A Division of BRPC (India) Ltd.]
425, Nimri Colony, Ashok Vihar
Phase-IV, DELHI-110052

ISBN 81-7646-467-8

Rs. 500